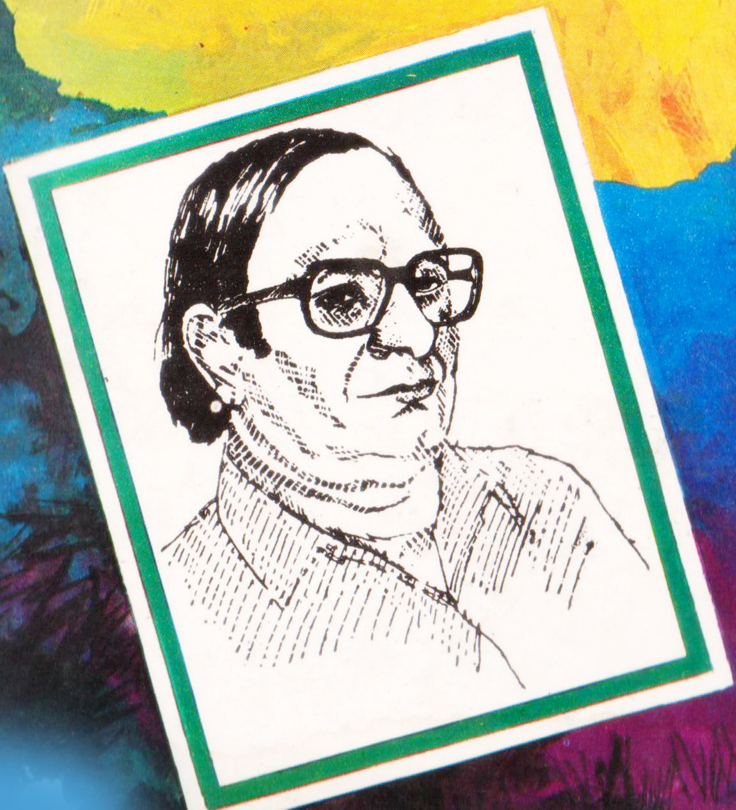
चर्चित कहानियाँ

राजेन्द्र अवस्थी



चर्चित कहानियां : राजेन्द्र अवस्थी

बीसवीं शताब्दी के भारतीय साहित्य में कहानी की केंद्रीय भूमिका सर्वमान्य है। कथाकारों ने प्रचलित कथा-मानों से प्रयाण कर कुछ ऐसी कथाओं का सृजन किया है, जिन्हें विश्व-कथा-साहित्य की अमूल्य निधि कहा जा सकता है। स्वाधीनता के उपरांत कहानी लेखन में जो गुणात्मक परिवर्तन आया उसने साहित्य के प्रति असंख्य पाठकों को आकर्षित किया। हिंदी में ऐसी शिखर कहानियां नई-नई प्रवृत्तियों की सूचक रही हैं।

कथा-रचना का यह क्रम आज भी अबाध गति से चल रहा है। कहानियों ने जहां साहित्य की केंद्रीय विधा के रूप में एक नई पहचान बनाई वहीं आलोचकों को भी प्रेरित किया कि वे इन नए तेवरों की समीक्षा के लिए नए आलोचना-मानों का विकास करें।

स्वाधीनता के उपरांत कहानी की यह यात्रा अत्यंत महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत करती है। साहित्य के अत्यंत सक्रिय, गतिवान, गहमागहमी-भरे वातावरण के निर्माण में हिन्दी कहानी का निर्विवाद रूप से महत्त्वपूर्ण योगदान है। इससे भारतीय भाषाओं की कहानी-साहित्य को भी प्रेरणाप्रद गति मिलती रही है।

हिन्दी के प्रतिष्ठित 32 कहानीकारों की चर्चित कहानियों के संकलनों का प्रकाशन हमने किया है। सामयिक प्रकाशन ने इस शृंखला में हिन्दी के साथ ही कई भारतीय भाषाओं के शीर्षस्थ कथाकारों की कहानियों के हिन्दी रूपांतरण भी प्रकाशित किए हैं।

इस शृंखला में प्रस्तुत है यहां हिंदी के मूर्धन्य कथाकार राजेन्द्र अवस्थी की 'चर्चित कहानियां'।

चर्चित कहानियाँ

राजेन्द्र अवस्थी

ISBN : 81-7138-030-1

मूल्य : सौ रुपये

प्रकाशक : जगदीश भारद्वाज
सामयिक प्रकाशन
3320-21 जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली—110002 (भारत)

संस्करण 2006

कलापक्ष : सत्यसेवक मुखर्जी

शब्द-संयोजक : कल्याणी कम्प्यूटर सर्विसेज़
जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-2

मुद्रक : नवप्रभात प्रिंटिंग प्रेस
शाहदरा, दिल्ली—110032

CHARCHIT KAHANIYAN (*Selected Short Stories*)
by Rajendra Awasthi Price : Rs. 100.00

Published By : **SAMAYIK PRAKASHAN**
3320-21 Jatwara, Netaji Subhash Marg, Daryaganj,
New Delhi - 110002 (INDIA)
Tel.: (011) 2328 2733, *Fax:* (011) 2327 0715, *Mob.:* 09811607086

कहानियों से पहले

कहानी लेखन से मेरा रिश्ता तीन दशक से अधिक पुराना है। सच पूछा जाए तो आजादी के बाद जो पीढ़ी आई उसके मन में व्यतीत के प्रति विद्रोह और नए परिवर्तन से बँधी आशाएँ थीं। यह सिलसिला कुछ वर्षों तक चलता रहा और सन् 50 और 60 के बीच हिंदी कहानी में एकदम नया परिवर्तन आया; 'नई कहानी' के नाम से एक नई विधा को जन्म मिला।

मुझे स्मरण है, उस समय कहा जाता था कि हिंदी की कहानी अचानक कहीं रुक गई है, उसमें गत्यावरोध आ गया है। यह गत्यावरोध 'नई कहानी' के आंदोलन से टूटा। यह आंदोलन ग्रामीण अंचलों से लेकर विकसित होता हुआ नगरों और महानगरों की समस्याओं तक संबद्ध था। उससे हिंदी कहानी में इतना बड़ा परिवर्तन आया, कि वह प्रेमचंद के युग की कहानियों से एकदम अलग थी। इसके कई कारण हैं; एक तो आजादी के बाद युवा वर्ग के सपनों का अचानक टूटना, समाज में होते हुए परिवर्तनों में अवरोध और पुरातन तथा नई के बीच का संघर्ष। यह बात स्मरण रखने योग्य है कि यह हिंदी कहानी का वह काल था जब एक ओर पुरानी पीढ़ी पूरी तरह संयम और निष्ठा से लेखन कर रही थी तो दूसरी ओर नई पीढ़ी अपनी पहचान बनाने के लिए अपने लेखन में एकदम नए परिवर्तन और प्रयोग करने के लिए तत्पर थी। इस नए की तलाश में एक बात स्पष्ट रूप से सामने आती है—वह यह कि एक लेखक अपनी ही कहानी को निरंतर बदलता रहा है। प्रेमचंद के बाद यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर आदि लेखकों की कहानियों को उनकी शैली और कथानक से ही पहचाना जा सकता था। उन दिनों यशपाल ने विभाजन की विभीषिका को मूल रूप से अपना विषय बनाया। वह प्रगतिवादी आंदोलन से जुड़े थे। अमृतलाल नागर के लेखन में बहुमुखी प्रतिभा थी। लेखकीय अंदाज में तीतर, बटेर की लड़ाई से लेकर लखनऊ का चौक, चौक और उसके बाहर सुंदरियों के प्रेमालापों और हास-विलास तथा आगे चलकर सूर और तुलसी जैसे महाकवियों के जीवन-तथ्यों पर कथानक को बटोरने का उन्होंने प्रयत्न किया। भगवतीचरण वर्मा लगभग पाठ्य-पुस्तकों के लेखक थे, भले ही यह कटु सत्य सहज ही कई लोगों के गले से कम उतरता है।

मेरे साथ तत्कालीन कहानी को लेकर चलने वाले लेखकों में फणीश्वरनाथ रेणु, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, शेखर जोशी, गंगाप्रसाद विमल और ऐसे अनेक नाम हैं जो नए कथानक की तलाश में, नई भावभूमि और नई भाषा शैली के लिए संघर्षरत रहे।

एक लेखक एक कहानी लिखने के बाद असंतोष का अनुभव करते हुए फिर नए विषय का चुनाव करके उसे नई भाषा, नई शैली में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। यह तृष्णा वास्तव में उसकी वह खोज है जो उसे कभी संतुष्ट नहीं कर पाती। संतोष किसी भी कहानीकार के लेखन का अंत है।

इस संग्रह में जितनी भी कहानियाँ हैं उन कहानियों का सृजन-काल 1960 के आसपास से लेकर लगभग आज तक का है। कुछ कहानियाँ तो बहुत ताजी हैं। ये सारी कहानियाँ प्रकाशित होते ही पर्याप्त रूप से चर्चित हुईं और इनके अनुवाद न केवल भारतीय भाषाओं में बल्कि विश्व की अनेक अन्य भाषाओं में भी हुए। इन कहानियों का अपना कथानक है जो एक-दूसरे से इतना भिन्न है कि पाठक के लिए यह समझ पाना सहज नहीं है कि ये एक ही लेखक की कहानियाँ हैं। वास्तव में लेखक की कथानक, भाषा और शिल्प शैली में नए-नए प्रयोग करने की इच्छा इतनी बलवती रही है और आज भी है कि स्वयं मुझे भी अपने आप पर आश्चर्य होता है। असल में यह इस युग की भटकन और तलाश है जहाँ लेखक चाहकर भी अपने आपको कहीं-न-कहीं अवश और विवश पाता है।

भारत के रचनात्मक पटल पर जिस तरह परिवर्तन होते रहे, उसका अनुभव इन कहानियों में किया जा सकता है—चाहे वह 'बँगला नम्बर दस' हो, या 'प्रतीक्षा' हो। इन सभी कहानियों में आज की नकारात्मक राजनीति और उससे उजागर होने वाले चेहरे सहज ही बेनकाब हो जाते हैं। मेरे लेखन में जहाँ ग्रामीण विस्तार रहा है वहाँ बम्बई और दिल्ली जैसे महानगरों की परस्पर विरोधी समस्याएँ और अवधारणाएँ भी साथ-साथ चलती रही हैं। महानगरों की जिंदगी के बावजूद मेरी कहानियों में वह ग्रामीण और आदिवासियों का अंचल भी है जहाँ से मैंने अपना लेखन शुरू किया था और 'लमसेना' जैसी अत्यधिक चर्चित कहानी का सृजन हुआ।

एक कहानीकार के नाते महानगरों की विभीषिका को बहुत गहराई से देखने, परखने, समझने और उसमें डूबने और तैरने तक का अवसर मुझे मिला। बम्बई की भीड़-भाड़ के बीच किसी स्टेशन पर खड़े होकर लोकल ट्रेन का इंतजार करना अपने आप में अनेक कहानियों का ही नहीं बल्कि उपन्यासों का विषय है। भीड़ बढ़ती जा रही है और लगता है कि धीरे-धीरे वह धँस जाएगी। इसी भीड़ में वह यात्री भी खड़ा है जो एक कारखाने में मजदूरी करता है और जिसे ओवर-टाइम का पैसा मिला है। इस ओवर-टाइम को खर्च करने के लिए वह न जाने कितने मनसूबे बनाता है। जब अचानक लोकल ट्रेन आ जाती है तो जल्दी में वह जिस डिब्बे में चढ़ जाता है वह उसके लिए एकदम अनजाना और अनचिन्हा है। मुझे लगता है कि शायद इस सदी की त्रासदी यह है कि हम चाहे यात्रा कर रहे हों या कहीं बैठकर काम कर रहे हों, कहीं-न-कहीं भयभीत हैं कि दुर्घटना न हो जाय। सच बात तो यह है कि दुर्घटना जीवन में एक ही बार होती है लेकिन बहुत लम्बे समय तक दुर्घटना की कल्पना में ही जीते रहना भ्रम की एक थाती को पालना है। 'भूचाल' ऐसी ही

अत्यधिक चर्चित कहानी है जो हमारे जीवन के भय को हर क्षण उजागर करती है।

इस संग्रह की प्रत्येक कहानी पर अलग लिखने की अपेक्षा मैं सोचने-समझने का दायित्व अपने पाठकों पर छोड़ता हूँ। उनकी प्रतिक्रियाओं की मैं प्रतीक्षा करूँगा। एक-दो कहानियों की ओर अवश्य इंगित करना चाहूँगा—उदाहरण के लिए 'अपना शहर' कहानी है। यह कहानी संभवतः लेखक की ही नहीं, किसी एक व्यक्ति की भी नहीं शायद हर उस व्यक्ति की कहानी है जो कुएँ में बंद मेढ़क की तरह उछलकर बाहर आ जाता है और उसका शहर उससे छूट जाता है। जब कभी वह अपने शहर के रास्ते से गुजरता है तो अनेक शंकाओं से भयभीत हो उठता है। आखिर कुएँ का यह मेढ़क उछलकर बाहर कैसे आ गया ? उसके पास तब कोई और रास्ता नहीं, इसके सिवाय कि वह शुतुरमुर्ग की तरह रेलवे कम्पार्टमेंट की सीट में दुबक जाए और तब तक दुबका रहे जब तक वह शहर का हिस्सा दूर न छूट जाए।

'अपनी मुक्ति' कहानी में पुरुष और स्त्री के संबंधों के सहज और स्वाभाविक मानदंडों का चित्रण करने का मैंने प्रयत्न किया है। स्त्री जहाँ सहज रूप से हर क्षण प्यार की आकांक्षा करती है, पुरुष उसे पाते ही स्वस्थ निर्विकार और निश्चिंत हो जाता है। यह स्वाभाविक युक्ति है और मैंने नए ढंग से इस सहजता और स्वाभाविकता को इसी तरह प्रस्तुत किया है।

'पीढ़ियाँ' कहानी मुझे इसलिए नहीं भूलती क्योंकि इस कहानी को लिखने के कई वर्षों बाद लगभग वही स्थिति मुझे स्वयं अपने घर में देखने को मिली।

इसी तरह एक कहानी और है। कथा नायक दिल्ली में बैठकर निरंतर अमेरिका के सपने देखता है और अंतत इस स्थिति में रह जाता है—'वह एक अकेला'।

इन कहानियों की इतनी अधिक चर्चा हुई है कि इनमें से एक भी कहानी ऐसी नहीं है कि जिसके मात्र शीर्षक से मेरे पाठक यह न कह सकें कि हम इसके कथानक से भली भाँति परिचित नहीं हैं।

स्वभाव से मैं अग्रगामी, चेतनशील, प्राप्ति के प्रति असंतुष्ट और जो कुछ अभी तक मिला है उससे बेचैन हूँ। मेरी यह बेचैनी बीसवीं सदी की बेचैनी है। यह बेचैनी नगरों और महानगरों की बेचैनी है। मैं यह भी कह सकता हूँ कि यह बेचैनी महानगरों-भर की नहीं आज के बदलते गाँवों और कस्बों की भी बेचैनी है। इसलिए मेरी इन सभी चर्चित कहानियों में कथानक में विभिन्नता के साथ-साथ भाषा, भाव और शैली में परिवर्तन मिलेगा। मैंने प्रयत्न किया है कि हर कहानी अपने आप में नई लगे। मेरे पाठक मुझसे भली भाँति परिचित हैं और कथानक तथा शिल्प-शैली के चुनाव में कहानियों के बीच मेरे कथा-साहित्य की चर्चा अलग होती है। ये सभी चर्चित कहानियाँ हैं परन्तु समग्र ढंग से इस रूप में पाठकों के समक्ष पहली बार आ रही हैं। इसके लिए मैं इस संग्रह के प्रकाशक को धन्यवाद देना चाहूँगा और अपने पाठकों की प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा करूँगा।

—राजेन्द्र अवस्थी

क्रम

सारी रात वह सो नहीं सका। न जाने ऐसा क्यों हुआ कि पूरे समय वह केवल करवटें ही लेता रहा। उस छोटे-से डिब्बे के और यात्री बेसुध पड़े रहे। आखिर उनमें कोई ऐसा भी नहीं था, जिसके लिए आँखें खुली रहना चाहें। डिब्बे के भीतर बैठते ही उसने अपने तीन सहयात्रियों पर नजर डाली। फिर ताजा अखबार उठाकर पढ़ने लगा था, लेकिन वह अच्छी तरह जानता था कि यह पढ़ना केवल शब्दों के शून्य में बगूलों की तरह चक्कर काटना है।

खिड़की के बाहर जंगल थमता हुआ नजर आने लगा था। अँधेरे में पहले जैसे वहाँ कुछ था ही नहीं। सन्नाटे में सीटियाँ मारती रेलगाड़ी और टकराते बर्तनों के-से बेतरतीब स्वर। घिसता हुआ लोहा अगर देखा जाए तो वह चिनगारी पैदा करता है और सुना जाए तो अतीत को ठोकरें मारता-सा आघात पहुँचाता है। सारा डिब्बा पवन-चक्की की तरह रात-भर डोलता रहा। उसे हर आवाज याद है, चाहे वह भागती हुई रेलगाड़ी की हो या थमे हुए उन स्टेशनों की जिनमें गति को विराम देने वाला चुम्बक लगा होता है।

यह रास्ता उसके लिए नया नहीं है, न ही यह रेलगाड़ी, न उसकी आवाजें और उसके बाहर का फैला हुआ सैलाब! लेकिन जब अतीत अचानक वर्तमान के दरवाजे पर आकर दस्तक देने लगता है तो उन क्षणों को भोगते हुए व्यक्ति अनायास अयाचित संभावनाओं से काँप उठते हैं। हलके धुँधलके के बीच स्टेशन का नाम पढ़कर उसे जोर का धक्का लगा था। कोई अचानक आवाज दे गया जैसे :

"अरे, इसे पहचानता है तू?"

"नहीं माँ, कौन है यह?"

"जरा थमकर देख। तू ही नहीं पहचानेगा?"

शर्म और लज्जा के साथ खिंचते हुए गाल। झुकी हुई आँखों को जैसे कोई जबरन बाँध रहा है। ऊपर को गठी हुई नाक में नकली मोती और अधखिले होंठ, तरतीब से [illegible] हुए बालों के पीछे से झाँकता हुआ गेंदे का फूल! कानों में अर्धचन्द्र बालियाँ और भरी हुई सीधी माँग! कहीं से बच्चे के रोने की आवाज और हर आवाज के साथ देह का सिहर उठना! खिंचती-बैठती साँस कई अनकही बातें कहती गई!

"माँ, तुम तो पहेलियाँ बुझा रही हो!"

अचानक उबलती हुई थाप का एक धक्का-सा लगा जैसे, अपनी गरदन को एक झटका देकर वह भीतर चली गई।

"वह गुस्सा हो गई। तू दिल्ली क्या चला गया, सब कुछ भूल गया! वह रामरती है, रामरती!"

किसी ने जैसे जोर से आवाज लगाई—रामरती। वह मदनमहल के किले के चारों ओर चक्कर काटकर लौटने लगी। वह प्रतिध्वनि उसके समूचे अन्तर को विचलित कर गई—"देख, ऐसे चोटी नहीं पकड़ा करते, मेरी चीख निकल जाए तो!'

"तो क्या?"

"चल, हट! लुका-छिपी खेलता है या..."

और तभी जोर की एक तैरती आवाज—"सुनीता पकड़ ली गई है, सब आ जाओ, उसकी आँखों पर पट्टी बँधेगी।"

"हम फिर यहीं आकर छिपेंगे।"

"क्यों भला, मैं यहाँ नहीं आऊँगा।"

इसके बावजूद मदनमहल का वही कोना, वहाँ से गहरी खाइयों को घूरता हुआ समय। आम और सीताफल के बेतरतीब वृक्षों की आड़ में पलाश के झाड़ों पर लाख़ बनाते कीड़ों को पकड़ना, मध्यम-उड़ती हवा के साथ मिलकर गाना और दम तोड़ते सूरज के साथ दफनाई हुई आत्माओं के श्मशान से उठता भय का अतिरेक।

ऐसी ही किसी लुका-छिपी में रामरती की चोटी उसने कैंची से काट दी थी। वह और करता क्या, कोई बात न माने तो?...फिर आना-जाना बन्द, लड़ाई-झगड़े और...लेकिन इसके बावजूद हर अकेले मोड़ पर एक-दूसरे का चिढ़ाना और जीभ दिखाकर ठेंगा मारना!

एक लम्बा अन्तराल! रास्ते की धूल पर किसी ने कोलतार बिछा दिया, भला वह रामरती को कैसे पहचानता! और जब नए सिरे से उसने उसे पहचाना तो उलाहने और उपालम्भ! वह इतना बड़ा अफसर हो गया है। उसके लिए नए 'विग' तक खरीदकर नहीं ला सका। दिल्ली में साड़ियों की कमी नहीं है। चप्पलें कई रंगों में मिलती हैं और वहाँ तो रोज फैशन बदलता है। वहाँ का फैशन ही उठाकर ला सकता था। उसी फैशन में उसे मदनमहल नहीं ले जा सकता?

"न ...." दोनों के लिए यह एक विवशता है।

उसे फुरसत भी कहाँ मिलती है! मिलने वालों का ताँता और पिता की आवाजें—"अरे, सुन तो, देख ये कौन आए हैं? जब तू छोटा था न, इन्हीं के यहाँ बना रहता था। हम बुलाते थे, पर तू आता ही नहीं था। इनके पैर पड़।"

वह कैसे बताए कि समय के उस अतीत से अब वह बहुत दूर है। जब वह बच्चा था, तब उसे सिर झुकाने में कष्ट होता था, अब वह विरोध करता है। किसी के सामने सिर नहीं झुकाया जा सकता। आदमी के पास और है ही क्या? सिर के सिवाय और तो सब कुछ अपने-आप दिन-रात में कितनी बार नहीं झुकता!

यह भी एक विडम्बंना है, वे सब लोग उसे अब भी एक मामूली लड़का समझते हैं।

उसकी प्रशंसा वे भले करें, उनके मन में कुछ और होता है। उनके चेहरे पर उभरी हुई रेखाएँ पढ़ना कठिन है। उनकी नजरों के पीछे शिकायतों की एक प्रतिध्वनि होती है। वैसी ही प्रतिध्वनि उसने अपने पिता में देखी है। वे नया घर बनाना चाहते हैं और पुरखों की पृष्ठभूमि में एक ऐसा महल खड़ा करेंगे कि पड़ोसी देखते रह जाएँगे। जब-जब वह घर गया है, हर बार उसने घर का नया नक्शा बना देखा है। पिता ने हमेशा चाहा है कि कागजी नक्शों को रूप देने के लिए नोटों की गड्डियाँ उनके पास छोड़ी जाएँ। एक बार वह ऐसा कुछ भी करके देख चुका है। उसने कर्ज लेकर एक हजार रुपए पिताजी को दिए थे। उस समय तो उन्होंने रुपए चुपचाप रख लिए, परन्तु शाम को उसकी माँ से कह रहे थे— "देखा, मैंने कहा था न, उसके पास बहुत रुपए हैं। अच्छी-खासी आमदनी है। हमें ही वह नहीं देना चाहता।"

"····क्यों नहीं देगा हमें, आखिर है वह किसके लिए ?"

"हमारे लिए नहीं !" पिता ने जोर देकर कहा था, "एक हजार रुपयों में क्या होता है ? उसके लिए तो एक हाथ का मैल है, जो हर महीने जमा हो जाता है।

उसने वह सब अचानक सुन लिया था और सुनते ही सन्न रह गया था। वह पछताने लगा था कि उसने रुपए लिए ही क्यों। कितनी बड़ी उलझन है यह—वह न दे तो परेशानी और पिता की शान्ति के लिए दे दे, तो यह तुर्रा ! उसका विरोधी मन तभी विद्रोह कर उठा था।

कितना भी विद्रोह हो, पिता का आखिर कुछ अस्तित्व होता ही है। जिस दिन वह अस्तित्व टूटा वह दुःख से कातर हो उठा था। वह उन्हें अन्तिम बार देख भी नहीं सका। एक तो यह दर्द और उनके देह की भस्मी ! उसे हाथ में लेकर गंगा जाते हुए उसका मन कितनी बार नहीं टूटा। वह एक सच्चाई को अपने हाथों में ढो रहा था। यही आदमी की नियति है, और यहाँ तक पहुँचने के पहले वह क्या नहीं करता। इतिहास में बदलती बीते हुए क्षणों की सन्धिरेखा ही आदमी की वास्तविकता की पहचान का एक दायरा है। उसका मन हुआ, वह चिल्लाकर आवाज दे और अपने पिता की राख से पूछ—"तुम्हारा घर तो बन गया, फिर उसे अपने साथ क्यों नहीं ले गए !"

वह सोच भी नहीं सकता कि मृत्यु-बोझ से लदे हुए एक आदमी का अस्तित्व दूसरे के लिए एक मामूली व्यापार हो सकता है। अपने पिता को लाल रंग की पोटली में बन्द गंगा-किनारे ले जाते हुए, साइकिल-सवार पंडे उसका पीछा करें, उसे बर्दाश्त नहीं। वे सब मरे हुए माँस के पीछे लगे हुए कुत्तों की तरह चिपट जाते हैं। वह तब भी जबरन मुसकराने का प्रयत्न करता है और कहता है, "पीछा मत करो, हम चुपचाप किनारे पर घूमने जा रहे हैं।" वह उत्तर पाता है, "क्यों झूठ बोलते हो, बाबू, तुम्हारे चेहरे से साफ नजर आता है, तुम दुःखी हो····अरे, हम कम पैसों में ही श्राद्ध करा देंगे—अरे हाँ, आप कहाँ से आए हैं ?"···· और इसके बाद जाने-अनजाने नामों की शृंखला, व्यर्थ की बातें और चोट पहुँचाने वाले वे

सारे आयाम जो खीझकर किसी को यह कहने के लिए विवश कर दें, 'अच्छा भाई, चल, तू ही श्राद्ध करा दे।'

उसका मन प्रतिध्वनित होता है। उसके दुःखी चेहरे को देखकर वह पंडा अपना व्यापार खड़ा करता है। उसका दुःख, उसके लिए महज एक मजाक है। वह अपने मृत पिता के साथ कुछ मौन क्षण भी नहीं गुजार सकता! वह उन्हें यह भी नहीं बता सकता कि 'जो कुछ बटोरकर तुम अपने समाज को दिलाना चाहते थे, वह समाज वास्तव में केवल तुम्हारा तमाशा देखने का इच्छुक था। वह सुविधा पर टिका मौकापरस्त लोगों का एक समूह है। उसका लक्ष्य नितान्त वैयक्तिक आत्मलिप्सा के सिवाय और कुछ नहीं है। वे सब लोग उस कुत्ते से अलग नहीं हैं, जो बार-बार लात मारने पर भी पैरों के पास दुम दबाकर लौट जाता है। लेकिन नहीं... उसके पिता यदि जीते-जी यह नहीं समझ सके तो अब मरकर क्या समझेंगे! कितनी बार उसे नहीं लगा कि वह उस राख को वहीं हवा में उड़ाकर वापस लौट जाए। लेकिन जो समझौता वह नहीं करता रहा, उसे करना पड़ा; इस दर्द को वह आज भी अपने भीतर पाले हुए है। वहीं और वैसा ही सब कुछ चावलों के गोल-पिंड, कुशा और अक्षत के साथ मंत्रों का उच्चारण, हाल ही पहने हुए यज्ञोपवीत के साथ ऐसा व्यवहार जैसे वह हमेशा ही पहनता हो। श्रद्धा से पंडे के सामने नतमस्तक। अपनी पूरी वंशावली और वंश-परम्परा का स्मरण, सब कुछ ठीक वैसा ही जैसे विवाह के समय पति-पत्नी एक-दूसरे की देह को खरीदने का नाटक करते हैं। सारे नाटक के बाद 'दक्षिणा' देने का क्षण आता है और तब लगता है कि समूचा परिवेश केवल इसी एक क्षण के लिए ठहरा हुआ था!

•

किसी थियेटर के एक कोने से उभरते हुए प्रकाश की तरह सूरज हल्का-सा बाहर झाँकने लगा था। उसने देखा, अब वह डिब्बा शान्त नहीं है। उसके तीनों सहयात्री उठ-बैठ रहे हैं। वे अपनी ही आवाजों से जैसे बातें करते हैं। कभी कोई गए हुए स्टेशन का नाम पूछता है तो कोई आने वाले स्टेशन को रेलवे टाइम टेबल में ढूँढ़ता है। बाहर की सारी दुनिया उस छोटे-से डिब्बे में बन्द हो गई है। बँधे हुए पानी की तरह सवेरा जैसे सड़ने लगा है। उसने खिड़की खोलकर बाहर देखा तो ताजी हवा के तार उसे छू गए। भागता हुआ जंगल खरगोशों की तरह छलाँगें भरने लगा।

वह इस समय भूल गया था कि उसका गंतव्य क्या है। डिब्बे के सहयात्री अपनी शेष-यात्रा का लेखा-जोखा करने लगे थे। लेकिन वह वहाँ होकर भी शायद वहाँ नहीं था। कितने दिनों से उसकी बहन उलाहना दे रही है। पिता की मृत्यु के बाद वह अपने शहर गया ही नहीं। श्राद्ध के अगले वर्ष का सारा संस्कार उसके छोटे भाई ने किया। इस बीच छः-सात सावन आए और चले गए। बहन राखी बाँधना चाहती है! हर साल वह आँसुओं में भीगा पत्र लिखती है—वह पिता की याद दिलाती है। वे होते तो क्या वह इतनी बेगानी होती! कोई पूछता ही नहीं उसे। सात भानजे और भानजियाँ हैं, सभी तो उसे याद करते हैं। कोई

तो यह भी नहीं जानते कि उनका अपना बड़ा मामा भी है। बहन को याद है कि बचपन में राखी बाँधने में एक रुपया मिलता था। अब... ?

उसकी आँखें भर आती हैं। बचपन में बहन और भाई किस तरह झगड़ते थे। किस तरह भाई के हिस्से का दूध बहन पी जाती थी और उसमें पानी मिला देती थी। पता लगने पर उसे मार पड़ती थी और तभी उसे अनुभव होता था कि लड़के और लड़की होने में कितना अन्तर है। उसे भाई की कमीजें रोज धोनी पड़ती थीं। वह रोज गन्दा कर ले आता था। वह न धोती तो भाई चोटी पकड़कर पीटता था, परन्तु जब घर में माँ न होती तो दोनों में मजबूत सुलह हो जाती !

सुलह के पीछे का समय कुछ और खिसक जाता, तो दोनों बरामदे में 'घर-घर' खेलते नजर आते। तब बहन अपने ही भाई की पत्नी बन जाती और फिर दोनों मिलकर वे सारे किस्से दोहराते जो वास्तविक दुनिया से उड़कर वहाँ तक आए हैं और एक नाटक की शक्ल में बदल गए हैं। माँ-बाप से लड़ने-झगड़ने से लेकर प्यार-मोहब्बत तक सारे प्रतीक उन दोनों के बीच फैले हुए नजर आते। उनके साथ कपड़े की गुड़िया और उनसे भरी-पूरी जिन्दगी। सब कुछ सजीव-सा, लेकिन अब कितना बेमानी। उसे इसीलिए तो चिढ़ है—क्यों बचपन से आदमी को गलत रास्ते में डाला जाता है। शादी-ब्याह, प्यार-मोहब्बत कितना कुछ उलझा हुआ है। ये सब उस जिन्दगी को गिद्ध की तरह नोंचकर तब तक खाते रहते हैं, जब तक वह राख बनकर पोटली में बन्द नहीं हो जाती।

इसी रेलगाड़ी की तरह वे सारे पड़ाव छूटते चले गए और अपनी बहन का चेहरा उसके सामने आकर अटक गया। वह चेहरा उसे गमले में उगाए गए कुकुरमुत्ते की तरह दिखाई दिया, जिसके आस-पास सात नए अंकुर और फूट आए हैं और पहला कुकुरमुत्ता ऊपर उठा हुआ गर्व के साथ नए अंकुरों को घूर रहा है। जब वह उस घर में पहुँचेगा तब उसका स्वागत इतने सारे लोग एक साथ करेंगे। इनके साथ ही सबके चेहरे पर एक ही प्रश्न होगा—"भइया बड़ा अफसर हो गया है, मामा के पास नोट छापने वाली मशीन है। उसकी टेरेलीन की बुश्शर्ट जैसे हमारे ही लिए सिली है। पैंट तो एकदम फिट होती है। मामा को क्या जरूरत है कि वह तीन-तीन फाउंटेनपेन रखे। भाई अजीब है जो सूटकेश में दिन-रात ताला लगाए रहता है। अरे, घर में भी कोई ताला लगाता है। सिफॉन की बँधनी साड़ी का चलन इन दिनों कितना बढ़ गया है। भइया तो लेकर आए ही होंगे, आखिर पाँच-छः रक्षाबन्धनों का कर्जा है, एक का नहीं।'

वह जानता है कि निर्लिप्त जीजाजी कितनी रहस्यमय बातें करते हैं। उन्हें इस बात का पूरा एहसास है कि सब एक ही गड्ढे के मेढक होते हुए भी उनमें से एक ऊपर उछलकर अलग क्यों हो गया और यदि हो गया है तो निरन्तर हरजाना देते रहना उसका धर्म है।

उसने अनायास उठकर अटैची खोली और टाइम-टेबल लेकर उसके पन्ने पलटने

लगा। पन्ने पलटते हुए वह भूल ही गया कि वह क्या देखना चाहता था। उसे उन पृष्ठों पर अपने साथियों की आँखें चिपकी हुई दिखाई देने लगीं। वह एक साथ सारी आँखों को देख गया। शेखर की आँख दफ्तर की फाइलों में अटकी है। शेखर एक स्कूल में मास्टर हो गया है। हरि ओवरसियर है। देशमुख पुलिस में दरोगा है। सविता···उसने ठहरकर उसे ध्यान से देखना चाहा, कुछ भी पता नहीं चला। उस एक आँख की भाषा जैसे न्यूजप्रिंट में छपे उस टाइम-टेबल ने ही सोख ली है। उसने अपने मस्तिष्क पर जोर दिया, सविता उसे कहीं नहीं मिली। उसकी याद के साथ उसे अपनी याद जरूर हो आई, वह इन सबसे कहाँ अलग था! शायद नहीं··· ! फिर आई० ए० एस० में उसने बैठने का इरादा क्यों किया था? किसने बैठाया था उसे? और पास भी किसने किया? वह अचानक एक बड़े महकमे का डायरेक्टर बन गया। आखिर क्यों? कैसे?

परेशानियों का एक सैलाब उसके चारों तरफ बिखर गया। सब कुछ परम्पराओं से होता है, परम्पराओं के जंगल में बिजली का फूल किसने खिलने दिया!

भागती हुई गाड़ी की गति धीमी होने लगी थी। शायद कोई स्टेशन आ रहा है। उसने टाइम-टेबल वैसे ही उल्टाकर अपनी सीट के पास रख दिया और बिना प्रयोजन उस डिब्बे में यहाँ-वहाँ देखने लगा। सामने की सीट पर दो यात्री बैठे थे—एक सुबह का अखबार पढ़ रहा था और दूसरा उसकी ओर देख रहा था। चारों ओर देखते हुए उसकी नजर जब दूसरे आदमी पर पड़कर टकराई तो नीचे झुककर वह तुरन्त वापस लौट आई।

उसने शीशे की खिड़की के बाहर देखा, रेलगाड़ी और धीमी होती जा रही थी। बाहर सूखे खेतों में कटी हुई फसल के डंठल खड़े थे। यहाँ-वहाँ से जमीन फट गई थी और किसी निहायत बूढ़े आदमी के चेहरे पर पड़ी झुर्रियों की तरह वह नजर आ रही थी। पटरी से लगे हुए पलाश के झाड़ों में लाल रंग के फूलों का गुच्छे लटक रहे थे। उसे ये फूल बचपन से ही पसन्द रहे हैं। फासफोरस की तरह वे जलते हैं और सूखे और नंगे जंगल में ताजगी का आभास देते हैं। बचपन में वह इन फूलों को तोड़कर लाया करता था। उनका रंग निकालकर वह उसी से होली खेलता था। बाद में ये ही फूल हल्के लाल रंग के चौपट रुपयों की शकल के फूलों में बदल जाते हैं और उसे अच्छी तरह याद है, उन्हीं रुपयों से वह अपने साथियों के साथ खेलता था। उस समय वे खेल की दुनिया में मुद्रा का काम करते थे और यहीं से उसने मुद्रा की पहचान सीखी थी। सामने देखते हुए वह अनायास कई बरस पीछे पहुँच गया था, परन्तु वहाँ वह ठहर नहीं पाया। तीसरे यात्री ने टावल से अपना मुँह पोंछते हुए पूछा—"साहब, कोई स्टेशन आ रहा है?"

उसे लगा, यह प्रश्न उससे ही पूछा गया है। वह सतर्क होकर बैठ गया और बोला—"जी हाँ, नरसिंहपुर आ रहा है।"

"यहाँ गाड़ी कितनी देर तक रुकती है?"

"यही कोई पाँच मिनट।"

"कोई बड़ा स्टेशन आगे नहीं है ?"

"एक-डेढ़ घंटे की देर है, जबलपुर आएगा।" एक दूसरे यात्री ने बीच में जवाब दिया, "वहाँ गाड़ी बहुत देर रुकती है। क्या कीजिएगा आप ?"

"कुछ नहीं, यूँ ही नीचे उतरकर चहल-कदमी करेंगे। यहाँ-वहाँ देखेंगे। चाय पिएँगे और···" और बहुत निश्चिंत और सैलानी ढंग से वह कहता गया। वह डिब्बे में यहाँ-वहाँ घूमने लगा, 'हम ठहरे मिलिटरी के आदमी, ज्यादा देर एक जगह बैठ जाएँ तो देह काटने लगती है···क्या ख्याल हैं आपके ?"

जो आदमी अभी थोड़ी देर पहले अखबार पढ़ रहा था, उसने इस प्रश्न को झेलते हुए कहा—"मुझे तो जबलपुर ही उतरना है।"

यह उत्तर सुनकर उसका मन अचानक विचलित हो गया। उस शहर का नाम जैसे ही उसके कानों में पड़ा, तैसे ही जैसे पेड़ की फुनगी पर लगा कोई पत्ता काँप उठा। उसने अपने को संयत किया और डिब्बे के फर्श की ओर नितांत रीती हुई आँखों से देखने लगा।

"सुना है यहीं मार्बल रॉक्स हैं, बड़ी खूबसूरत जगह है ?" वह फौजी आदमी जिन्दादिल और निहायत सामाजिक लगा। उसके बोलने के लहजे से ही पता लगता था जैसे उससे डायलॉग हो सकता है, परन्तु उसने उस चर्चा में भाग लेना ठीक नहीं समझा। वह लगातार नीचे के गन्दे फर्श को देखता रहा। अपनी जन्मभूमि का नाम सुनकर आदमी का मन सचेत हो उठता है। उसे लगता है जैसे आदमियों से भरे जंगल में किसी ने उसे पहला नाम लेकर पुकारा है। अब यह नाम एक सपना है। अब सभी लोग उसे 'तिवारी साहब' कहकर बुलाते हैं और इसके पहले का 'शरद' नाम जैसे कहीं अँधेरे में गुम गया है। भेड़ाघाट के मार्बल रॉक में ही उसने कितने क्षण नहीं बिताए। चौंसठ जोगिनी के मन्दिर में रखी हुई मिथुन मूर्तियों को देखकर उसे कितनी सन्तुष्टि नहीं मिली। इसी मन्दिर के बाहर कितनी बार उसने दाल-बाटियों का मजा नहीं लिया। यहीं कई बार कैम्प फायर की रात बिताई है और उस समय के चेहरे, जब भी उसे अवकाश मिलता है, उसके आस-पास घूमने लगते हैं। इसलिए कि आदमी अतीत में रहने का आदी है, वह वर्तमान के साथ नहीं रह पाता।

उसने जोर से साँस ली, कितनी बड़ी विडम्बना है यह, वह वर्तमान में न जीकर किस तरह समय से हट जाता है। परन्तु वर्तमान में जीए कैसे ? उसे अनायास लगा जैसे जबलपुर उतरने वाला यात्री उसे अच्छी तरह पहचानता है। वह सबको बता सकता है कि शरद साहब सीधे इलाहाबाद चले गए और जबलपुर नहीं उतरे। तब ?

तब चम्पू कितनी गालियाँ देगा उसे ? चम्पू यानी सेठ रतनलाल जैन। पुस्तकों की उसकी दूकान है। एक बार उसने लिखा था—"तुम राजधानी में हो और बड़े अफसर हो गए हो, हमें एकाध लायसेंस दिलवा दो तो यहीं कोई कारखाना लगा लें।" उसने इस खत का जवाब नहीं दिया था, क्योंकि उसके मन में कहीं कोई बात अटकी नहीं हुई थी। वह जब

एम० ए० कर रहा था और चम्पू की दूकान से दो पुस्तकें उधार लेने गया था तो चम्पू ने पुस्तकें तो दे दी थीं, परन्तु परोक्ष रूप से यह भी कह दिया था कि "मैं पुस्तकें बेचता हूँ, पुस्तकालय नहीं चलाता !" वह जानता है कि चम्पू का कहना गलत नहीं था, परन्तु तब वह पुस्तकें खरीद भी नहीं सकता था।

उसके सामने चम्पू का चेहरा स्पष्ट था—खुशमिजाज और रुपयों की गरमी की एक हलकी परत से चमकता हुआ। पीपल के झाड़ के नीचे पिता का श्राद्ध कराते वक्त चम्पू ने कहा था—"शरद भाई, तुम्हारे पिता ने तुम्हारे लिए क्या नहीं किया। महापात्र को सोने की अँगूठी तो देनी ही चाहिए।"

वह तिलमिला उठा था। उसके पिता ने उसे एक सामान्य क्लर्क ही बनने के लिए छोड़ दिया था। मैट्रिक पास करने के बाद उसे यहाँ-वहाँ ट्यूशन करना पड़ता था, ताकि आगे की पढ़ाई के लिए वह अपने पिता से रुपए न माँग सके। उसने एक बार चम्पू की तरफ देखा था और तुरन्त हाथ की अँगूठी निकालकर महापात्र को दे दी थी। उसने अँगूठी देते हुए दाँत पीसे थे। इसके बाद सुबह से शाम तक तीन-सौ आदमियों को उसने भोजन कराया था और इस पूरी प्रक्रिया में उसकी कमर अकड़कर रह गई थी। जो कुछ वह नहीं करना चाहता था, वही सब कुछ उसे करना पड़ा था।

अचानक उसके सामने अँधेरा-सा छा गया। उसने आँखें बन्द कर लीं तो वह कई आवाजों से घिर गया। ये आवाजें साफ नहीं थीं। खोमचे वालों से लेकर उसके रिश्तेदारों तक की आवाजें थीं वे। उसके फूफा हमेशा उलाहना देने के आदी हैं। फुआ तो जेब से रुपए ही निकल लेती हैं। मामी सारी तलाशी लेती हैं और जो-जो कपड़े मामा के काम के हैं, वह जबरन छीन लेती हैं। ऊपर से प्रश्न—"सुना है, वहाँ तो ऊपर की आमदनी बहुत है।"

"यह भी कोई पूछने की बात है। अरे, हमारा भानजा अफसर है, अफसर। सारे सेठ-व्यापारी पतंगों की तरह चक्कर काटते हैं और फलों की टोकरी में नोट की गड्डियाँ छिपाकर दे जाते हैं। वे जब अपनी कारों में टोकरी लेकर आते हैं तो हमारा भानजा उन्हें हिकारत से देखता हुआ कहता है—वहाँ रख दो। वे चुपचाप हाथ जोड़कर चले जाते हैं।"

मामा सब कुछ ऐसा कह गए जैसे ऊपर की आमदनी उन्हें ही इस तरह होती है। इसलिए उनकी बात सुनकर वह कितना तिलमिला उठा था। उसने कभी घूस नहीं ली, कभी गलत काम नहीं किया, इसीलिए उसकी इज्जत है। उसे लगा, जैसे किसी निर्दोष आदमी को जबरन चोर करार देकर चिढ़ाया जा रहा है। वह जानता है, इन सबका कोई अर्थ नहीं है। मामा के संवाद एक ही अर्थ की ओर संकेत करते हैं और उसकी सीमा 'अर्थ' के घेरे के बाहर नहीं है।

वह प्रश्नों के चक्रव्यूह में अभिमन्यु की तरह फँसता गया। उस क्षण उसे यह भी पता नहीं रहा कि वह एक रेलगाड़ी में यात्रा कर रहा है। उसे तब न पीछे छूटते हुए स्टेशन की आवाजें सुनाई दे रही थीं और न हथौड़े की तरह चोट करते लोहे की। उसके सामने सब

कुछ पानी की परतों की तरह हिल रहा था। लायसेंस से लेकर कपड़े और रुपए तक जिन्हें छीनना है वे भले छीन लें, परन्तु यूँ तो नहीं जैसे सब-कुछ एकदम आसानी से आ गया है और उसे पाना उनका वैधानिक अधिकार है। अर्थ को निरर्थक बना देना, शब्दों के साथ कितना बड़ा छल है। उसे लगा कि बचपन से लेकर अब तक वह जिन आदर्शों के लिए झगड़ता रहा है, अब वही सब मिलकर उसका मजाक उड़ा रहे हैं।

उसे एक धक्का लगा। रेलगाड़ी अचानक रुक गई और उस धक्के से उसकी सारी तन्द्रा टूट गई। सोचने का सूत्र अचानक कहीं छूट गया। डिब्बे में हलचल हुई, कोई एक्सीडेंट तो नहीं हो गया? किसी ने चेन तो नहीं खींच दी?

"क्या हुआ, भाई?"

"पता नहीं।"

"लगता है, कोई शहर आ रहा है।"

उसने फिर बाहर झाँककर देखा। गाड़ी सिगनल के पास खड़ी थी। वह उस सिगनल को अच्छी तरह पहचानता है। उसके दाएँ-बाएँ खड़े निर्जीव रेल के डिब्बे भी उससे अनजाने नहीं हैं। उनके ऊपर का खुला हुआ नीला आकाश जैसे आवाजें कस रहा है। आकाश के नीचे पटरियों के बाहर दोनों ओर फैला हुआ शहर दोनों बाँहें फैलाए उसे जबरन बाहर खींच रहा है। वे हाथ उसके साथ उस समूचे डिब्बे का सामान भी बाहर खींच रहे हैं, वह यहाँ से आगे कैसे जा सकता है? उसका मन विकल हो उठा। अचानक भय के बाद भीतर की जो स्थिति होती है, वही स्थिति उसकी हो गई। उसे लगा, समूचे शरीर के भीतर खोखली हवा चक्कर काटने लगी है। पेट में संग्रहणी के रोगी की तरह हलचल होने लगी है। उसने सामने के यात्री को देखा जो अपना सामान इकट्ठा कर रहा था। उसे देखकर उसने फिर आँखें बन्द कर लीं जैसे कोई कबूतर बिल्ली को देखकर आँखें बन्द कर लेता है और वहीं बैठा रहता है। आँखें बन्द किए ही वह उस सीट पर सीधा पसर गया और ऊपर से उसने एक चादर ओढ़ ली। अपने सहयात्रियों से कटकर उनके विपरीत करवट लेते हुए उसने अपना हाथ पूरे चेहरे पर रख लिया, जैसे किसी रेगिस्तान में तूफान का संकेत मिलते ही शुतुरमुर्ग अपनी गर्दन छिपा लेता है।

पीढ़ियाँ

नौकर बाहर 'नेमप्लेट' की सफाई कर रहा था। 'ब्रासो' के पाउडर से वह पीतल को रगड़-रगड़कर ऐसी चमक दे रहा था, जैसे वह वाकई सोना बन जाएगा। घण्टे-भर से सफाई ही कर रहा है वह! उसे यूँ समय नहीं बिताना चाहिए। हर काम का तरीका होता है। हर काम के लिए उचित समय बँधा है। वह भूल जाता है—उसके मालिक हैं सरदार सुरजीतसिंह! आर्मी के मेजर! छोटी-बड़ी कई लड़ाइयाँ लड़ी हैं उन्होंने। अब आराम के दिन बिता रहे हैं।

सरदार 'केक्टस-पार्क' से बाहर निकले और गेट पर आकर खड़े हो गए। नौकर को देखते ही चिल्ला पड़े, "क्या कर रहा है, घण्टों से?"

"नेमप्लेट··· !"

"इस तरह सफाई होती है?"

"जी··· !"

सरदार के हाथ में एक डण्डा था। उन्होंने उसकी पीठ पर एक डण्डा जड़ दिया। नौकर जोर-से चिल्लाया और बाहर भाग गया। सरदार गुस्से में काँपने लगे। 'डेलिया-पार्क' की ओर से हवा में हिलते हुए तार की तरह वह सहन तक आए और आकर खड़े हो गए। कमर में दर्द हो गया था और आँखें जलने लगी थीं।

"कोई नहीं सुनता!···हरामजादे सभी आजाद हैं।···और वह··· !" उन्हें अपनी बेटी की याद हो आई। उन्होंने आसपास देखा, जैसे उनकी बेटी वहीं कहीं छिपी हुई है। उन्होंने सहन से बाहर देखा। लताओं के गुल्मों को घूरा। डेलिया के फूलों की पंखुरियों को अपनी साँसों से हिलाया। तीन सौ किस्म के नंगे केक्टस की परतें छीलीं। उनकी बेटी कहीं नहीं थी।

सरदार भीतर चले गए। सोने का कमरा शान्त था। पंखे के ऊपर चिड़ियों ने एक घोंसला बना लिया था। कितनी बार उस घोंसले को उजाड़ा, कमबख्त चिड़ियों ने अपना हठ नहीं छोड़ा। कमरे में केवल चिड़ियों का शोरगुल था। लेकिन सरदार के लिए वह भी भारी था। वह अपने-आप बुदबुदाए—"चूहों को मारने की दवा है। खटमल और मक्खियों के लिए छिड़काव होता है। झींगुरों के लिए पम्प निकले हैं, इन चिड़ियों के लिए··· ! कुछ भी नहीं···कुछ भी नहीं··· !"

सरदार बुदबुदाते रहे। चिड़ियाँ उसी तरह शोर करती रहीं। घोंसले से उनके बच्चे

निकल-निकलकर अपनी नन्ही चोंचों से चारा भीतर खींचते रहे। सरदार को यह सब भारी लगा, निहायत दबा हुआ और बेमानी।

वह दूसरे कमरे में गए—सब कुछ फैला हुआ। बेतरतीब और बिखरा हुआ। यह उनकी बेटी का कमरा था, उसके पढ़ने का कमरा। एक भी किताब ठीक जगह पर नहीं। एक भी कापी सही नहीं। सरदार झुककर नीचे बैठ गए और कापी तथा किताबों को समेटकर देखने लगे। एक-एक कापी उन्होंने देखी। एक-एक किताब के पन्ने लौटाए। फिर अपने-आप बोल पड़े—"बेचारी, नादान··· नाजुक··· नाहक भ्रम किया। मैं भी कितना बेवकूफ हूँ।"

इसके साथ ही सरदार सुरजीतसिंह अपनी जगह लौट आए। उनका क्रोध शान्त हो गया। घर का कोना-कोना उन्हें खींचने लगा। नौकर पर दया आई। वहीं से उन्होंने आवाज दी, "हरिया···ओ हरिया!"

हरिया तब तक पीछे रसोईघर में पहुँच चुका था और चाय बना रहा था। सरदार की आवाज सुनी तो एक कप चाय लेकर दौड़ा आया। उत्तर देने के बदले उसने चाय का भरा हुआ कप सरदार की ओर बढ़ा दिया। सरदार जी मुस्कराए और आरामकुर्सी पर बैठकर चाय की चुस्कियाँ लेने लगे। वे भूल गए कि हरिया कामचोर है। अभी उसी पर बरसे थे! बोले—"बेटा, साग-भाजी ले आया?···जसवीर आती होगी!"

हरिया ने सिर हिला दिया। उसका अर्थ था कि साग-भाजी है। सरदार का चेहरा खुशी से भर गया। उनकी आँखें ठण्डी हो गईं। आँखों से झाँकती बारीक सफेद बरौनियाँ नायलोन के रेशों की तरह चमकने लगीं। चाय पीकर उन्होंने कप हरिया को दिया और दाढ़ी पर हाथ फेरने लगे। अपने ही बाल उन्हें निहायत मुलायम और चिकने-से लगे। इतनी कोमल तो जसवीर की चोटियाँ भी नहीं हैं, जिन्हें वह रोज शिकाकाई से धोती है और आँवले के तेल से रगड़ती है। सरदार मन-ही-मन खुश हुए। समय की बात है। वरना दाढ़ी तो वही है और वही अँगुलियाँ हैं। यही दाढ़ी है, जिस पर रह-रहकर उन्हें रोष आता रहा है। कम्बख्त जब खुजाना शुरू कर देती है, तो लगता है किसी ने किमाच के बीज पीसकर उसमें डाल दिए हैं। जब वह गड़ती है तो अपने ही हाथों में काँटे चुभते हैं। आईने में कभी अपनी शक्ल देखते हैं, तो घबरा जाते हैं। यही कम्बख्त दाढ़ी है, जिसने सिर से पैर तक उन्हें एक-सा बना दिया है। उन्हें लगता है कि अस्पताल की पट्टियाँ उनके चेहरे से लटक रही हैं और वे घबरा जाते हैं। वे सबसे ज्यादा अस्पताल से घबराते हैं। उस अस्पताल से··· !

खट्··· खट्···खट्!

फट्ट··· फट्ट··· फट्ट··· !

"आ गई। जसवीर, ओ जसवीर!" सरदार वहीं से चिल्लाए, आ गई, बेटी?"

"हाँ पापा।"

जसवीर दौड़कर आई और सरदार के गले से लग गई। सरदार ने उसे अपनी गोद में

उठा लिया, जैसे वह अब भी पाँच बरस की गुड़िया हो। गोद में उठाकर वह आगे बढ़ने लगे तो जसवीर कसमसाई— "पा···पा !"

सरदार हँस पड़े। जसवीर को उन्होंने नीचे उतार दिया। वह अपनी सलवार की शिकनें ठीक करने लगी ! उसी समय नौकर ने खबर दी कि नाश्ता तैयार है। सरदार भी नाश्ता करेंगे। इसके बीच एक-दो बार चाय। सूखी चाय, बस !

चाय की टेबल पर दोनों नाश्ता करने लगे। सरदार ने पूछा, "आज कॉलेज में क्या हुआ, बेटी ?"

"आज डिबेट थी, पापा।"

"क्या विषय था ?"

"विषय मजेदार था, पापा,"—जसवीर जोर से हँसने लगी। हँसते हुए ही उसने कहा, "विषय था—आज की दुनिया में कौन बड़ा है : पुरुष या स्त्री ?"

सरदार भी अपनी हँसी नहीं रोक सके, बोले, "बड़ी तो दुनिया है, आज की हो या कल की !"

"एकदम बण्डल," जसवीर बोली, "तुम्हें कुछ नहीं मालूम, पापा। आज की दुनिया में केवल स्त्री बड़ी है।" और वह खड़ी हो गई। खड़े होकर भाषण देने लगी। एक लम्बा भाषण··· !

सरदार सुरजीत सिंह पाँच मिनट तक सुनते रहे। फिर उन्होंने उसे टोक दिया। बोले, "बहुत खूब, तुम तो अच्छा भाषण दे लेती हो।" उन्होंने विवाद करने की अपेक्षा यहीं बात का अन्त करना ठीक समझा।

"हाँ, पापा।" जसवीर ने कहा, "मुझे फर्स्ट प्राइज मिला है। आज 'इण्टर-कॉलेज डिबेट कॉम्पीटिशन' था।"

"बधाई··· बहुत··· !"

सरदार सुरजीत सिंह की बधाइयाँ हवा में ही डूब गईं। जसवीर बेहद खुश थी। उसी के कारण कॉलेज ने शील्ड जीता था। उसने अपनी करारी दलीलों से विरोधियों को मात दी थी।

"वह अपने को क्या समझता है ?" जसवीर के मुँह से अपने-आप निकल गया।

"वह कौन, बेटी ?"—जसवीर हिचकिचाकर रह गई। परन्तु वह रुकी नहीं। बोली, "वह···पापा, वह सतविरन्दर ! मेरे साथ पढ़ता है। अपने को न जाने क्या समझता है। कहता था दुनिया में पुरुष बड़ा है, हर दुनिया में वह बड़ा है। आज की हो या कल की ! मूर्ख··· बेवकूफ···मैंने वो करारे जवाब दिए कि बेटा बगलें झाँकने लगा। अब हिम्मत नहीं कर सकता !" जसवीर के चेहरे पर क्षोभ, खीझ और विरोध-भरी हल्की-सी गर्मी तैर गई ! पापा ने ये परिवर्तन गौर से देखे और खुश हुए। उठकर उन्होंने जसवीर की पीठ ठोंकी और बाहर चले गए।

सूरज ढल रहा था। उसकी आखिरी किरनों में डेलिया के फूल अपना रंग बदलते-से नजर आ रहे थे। सरदार की देह में अब काफी गर्मी थी और वे खुश थे।

•

जसवीर !

उस दोपहर को अकेले बैठे हुए सरदार सुरजीतसिंह के सामने यह नाम बार-बार झूलता रहा। जसवीर··· ! उनकी ही बेटी का नाम है यह। पर···पर आज यह नया-सा लग रहा है। वह बार-बार वही नाम गुनगुनाते रहे, जैसे वह नाम न हो, गुरुग्रन्थ साहब की पोथी का कोई फिकरा हो।

वह अक्सर गुरुग्रन्थ साहब का पाठ करते हैं। अकेले जब घबरा जाते हैं, तो पाठ करने लगते हैं। उससे उनका एकान्त टूटता है और वह थोड़ी देर के लिए अपने को भूल जाते हैं। यही एक सहारा है, वरना··· !

जसवीर 11 बजे कॉलेज चली जाती है। चार बजे लौटती है। लौटती भी है तो उनके लिए क्या है ? चाय पीकर वह फिर चम्पत ! उसकी सहेलियाँ आ जाती हैं और वह उनके साथ खेलने चल देती है टेनिस··· बिलियर्ड··· पिंग-पोंग··· । शाम को वह लौटकर आती है। खाना और फिर···वह फिर अपने पढ़ने के कमरे में चली जाती है। न जाए तो क्या करे ! सरदार इस सच्चाई को महसूस करते हैं। वह बूढ़े हैं, जमाना अब भी वही है। उन्हें लगा, वह वहीं रहता है—हमेशा जवान और मुसकराता हुआ। कमजोर आदमी है। यूँ ही बूढ़ा हो जाया करता है। क्यों बुढ़ाता है वह··· ? सरदार प्रश्न पर अधिक देर नहीं रुक सके। रुकना उन्होंने व्यर्थ समझा। इसका मर्म बुद्ध नहीं पा सके। वह तो बहुत छोटे आदमो हैं। पर चाहते जरूर हैं कि नए लड़के-लड़कियाँ उनके बँगले में आएँ और उनसे बातें करें। इसलिए जब जसवीर की सहेलियाँ आती हैं तो सरदार उनके पास चले जाते हैं और बातें करने लगते हैं। परन्तु उनकी बातें इतनी फीकी क्यों होती हैं, उनमें क्या कमी है, जो लड़कियाँ हर बार हँस देती हैं और फिर चली जाती हैं। "अच्छा, पापा··· टा··· टा··· !"

"टा··· ! टा··· !" तब सरदार अपने ही दाँत पीसते हैं। एक जमाना था, जब जवान लड़कियाँ उनके चक्कर काटती थीं। वह उन सबको दुतकारते थे। इसलिए वे और-और पसन्द किए जाते थे। लड़कियाँ अक्सर उनकी बातें किया करती थीं।

सरदार के सामने एकसाथ न जाने कितनी शक्लें झूल गईं। उन्हें लगा, मेहनत से बनाए बगीचे में फूल नहीं लड़कियों के चेहरे हैं। उन बीती हुई लड़कियों के जो समय के थपेड़ों में पड़कर न जाने अब कैसी होंगी ! कहाँ होंगी ! इन्हीं चेहरों में एक चेहरा था··· ! वह खूबसूरत और शोख चेहरा··· !

सरदार काँप उठे। उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर लीं। लेकिन आँखें बन्द करते ही उन्हें लगा, जैसे ये सारे चेहरे एक ही चेहरे में डूब गए हैं और वह चेहरा उनके चारों ओर चक्कर काट रहा है। "ओफ··· !" सरदार ने आँखें खोलीं। एक हल्का-सा धुँधलका फैल

गया। वह डगमगाते कदमों से चले और पलँग पर जाकर धम्म से गिर पड़े। थोड़ी देर के बाद उन्हें होश आया तो सिरहाने लगी तसवीर को उन्होंने देखा और देखते-देखते वह अपने आप रो दिए।··· अब नहीं रही वह !—उन्हें छोड़कर चली गई। एक निहायत मासूम और बेमौसम तनहाई। अँधेरे से भी गहरा सूनापन !—न कोई प्रतीक्षा, न कोई संबल और न कोई विश्वास! उन्हें लगा वे एक आस्थाहीन और असहाय जिन्दगी जी रहे हैं। यह अकेलापन उन्हें कभी नहीं छोड़ेगा। इतना बड़ा बँगला और इतना भरा-पूरा बाग सब बेजान है। सब बेमानी है। ये सब उन्हें घेरे हुए हैं, जैसे अँधेरा हर समय उजाले को घेरे रहता है और फिर समय पाकर उसे निगल जाता है। अँधेरे को कोई नहीं निगल सकता।

सरदार सुरजीतसिंह घबरा उठे। एक दिन ये सब उन्हें निगल जाएँगे। ये सब उनके दुश्मन हैं··· ।

वह वहाँ से उठे। उठकर उन्होंने लाइट जलाई। लाइट के जलते ही वह अपने-आप हँस पड़े। घड़ी की ओर देखा, दो बजे थे। दिन के दो। उनके पागल होने में कतई सन्देह नहीं है। उन्होंने फिर लाइट बुझा दी। ड्राइंग रूम में जाकर मसनद के सहारे वह टिककर बैठ गए। सोचने लगे, ऐसी गलती उन्हें नहीं करनी थी। फिर शादी कर लेते तो कितना अच्छा होता। यह अकेलापन और मनहूस दोपहरें उन्हें यूँ न काटतीं। वे इस तरह भटकते हुए नजर न आते।

लेकिन··· ! उनकी आँखें एकबारगी चमक उठीं। उन्होंने कोई गलती नहीं की। वे शादी फिर कर सकते थे। उनका घर फिर बस जाता। परन्तु, जसवीर··· ।

जसवीर का ध्यान आते ही उनके चेहरे की रही-सही खुशी भी गायब हो गई। जसवीर की खातिर उन्होंने गलत नहीं किया।

उन्हें विश्वास हो गया कि उनसे कभी गलती नहीं हो सकती। वे और हैं, जो गलती करते हैं।

उनकी बेटी सयानी हो रही है। इस साल फर्स्ट ईयर में है··· । उन्होंने हिसाब लगाया। हिसाब लगाकर अपने-आप बोले—अठारह बरस। ···बस! अभी बेचारी की उमर ही क्या है! खेलने-खाने के दिन हैं। फिर तो··· !

उन्होंने फिर कुछ हिसाब लगाया। हिसाब लगाते-लगाते नौकर को आवाज दी—"हरिया··· ओ हरिया।"

नौकर दौड़ता हुआ घबराया-सा आया। वह जोर से हाँफ रहा था। सरदार ने पूछा—"तीन बरस और··· । कितने हुए?"

नौकर क्या समझता? वह घबराया-सा सरदार को देखता रहा। सरदार जोर से चीखे। बोले—"18 और 3 कितने हुए?" नौकर परेशान! काँपते हुए उसके मुँह से निकला—"बीस··· !"

"ठीक है, जाओ"—जोर से बोलकर वह अपने-आप हँसने लगे—"मुझे इत्ता-सा भी

हिसाब नहीं आता। अठारह और तीन, बीस ही तो हुए!" उन्होंने अपने को पूरा विश्वास दिलाया कि उनका गणित सही है और उनके हिसाब में कहीं गड़बड़ी नहीं रह गई।

वह अपने आप ताने-बाने बुनने लगे। बीच में वह एम० ए० कर लेगी। ठीक है! तभी एक लड़का खोजा जाना चाहिए। सीधा हो और खुशमिजाज। घर का खाता-पीता और पैसे वाला। पैसेवाला न हुआ तो उसे तमीज भी नहीं होगी। बदतमीज लड़का उन्हें कतई पसन्द नहीं।

"लड़का खोजना कठिन नहीं है।"—वे अपने-आपसे बातें करते रहे—इतना भारी महल और ये आलीशान बाग··· ! रुपए-पैसे, हुण्डियाँ सबका मालिक वही तो होगा! कौन नहीं होना चाहेगा!" वे आश्वस्त हुए। लड़का जब वे चाहेंगे, तुरन्त मिल जाएगा। शान से शादी होगी। ऐसी शादी आज तक किसी ने नहीं देखी। जैसे वाकई नहीं देखी, उन्हें एक आत्मसन्तोष हुआ। मैसूर के हाथी आएँगे। अजमेर से ऊँटों का रिसाला पहुँचेगा। पंजाब के घोड़े होंगे और सोने की पालकी बनवाई जाएगी। उसमें उनकी बेटी बैठेगी। वे एक लम्बा तुर्रा बाँधेंगे—सख्त कलगी लगा सीधा सा साफा। ताव के साथ वह बारात का स्वागत करेंगे।

उनके होठों पर विजय-भरी मुस्कान उतर आई। उन्हें लगा, जितने बाराती आएँगे, सब उनसे छोटे होंगे—सब उनके सामने झुकेंगे।

"झुकेंगे क्यों नहीं, उन्होंने दुहराया, "इतनी खूबसूरत बेटी और इतना आलीशान बँगला!"···वही तो स्वामी है! उनके ही हाथ में सब कुछ है। वह जो चाहें कर सकते हैं। सरदार बेहद खुश हुए। उन्होंने अनुभव किया, उनकी उमर दस साल नीचे उतर आई है। दुनिया भरी-पूरी है और कहीं अकेलापन नहीं। उन्हें चिड़ियों के बच्चों पर भी दया हो आई। उन्होंने थोड़े से चावल निकाले और घोंसले के सामने रख दिए। उनका मन अपने-आप हल्का हो गया—अब तक वे एक लम्बी उदासी और कभी खत्म न होनेवाला अँधेरा अपने चारों ओर फैलाए थे। सब टूट गया। हर जगह डेलिया के खुशनुमा फूल हैं और फूलों से खूबसूरत कैक्टस!··· वे कैक्टस जो वे पेरिस से लाए थे···आज से पन्द्रह बरस पहले।

टन्··· टन्···टन्···टन्!

घड़ी ने चार बजाए। हरिया ने खबर दी कि चाय तैयार है। सरदार ने पता लगाया। मालूम हुआ जसवीर अब तक नहीं आई। अब तक तो वह आ जाती थी। उन्होंने दाँत पीसे··· ! फिर एकाएक ध्यान आया। वह सिनेमा गई होगी। कह रही थी 'रिवोली' में कोई नई पिक्चर लगी है। वह देखना चाहती है। उसकी सहेलियाँ भी देखने जा रही हैं। उन्होंने उसे 'परमीशन' दी थी।

उन्होंने मुसकराकर हरिया से कहा, "नाश्ता लगाओ।"

वह अकेले नाश्ता करने लगे। ऐसा वक्त कम आया है। अक्सर नाश्ता उन्होंने

जसवीर के ही साथ किया है, लेकिन कुछ दिनों से उन्हें अकेले भी कई बार नाश्ता करना पड़ा है। जसवीर अब कालेज में पढ़ती है। कभी उसकी एक्स्ट्रा क्लास होती है। कभी पिकनिक। कभी पार्टी। कभी कालेज डे। फिर भाषण। भाषण देने में वह बहुत तेज है।

"उसे इन सबमें भाग लेना ही चाहिए", सरदार खुश हुए। "अच्छा हुआ वह सिनेमा चली गई। मन तो बहलेगा— वह बोले, "वरना वैसे ही आदमी का दम घुट जाए। वह बँधे हुए पानी की तरह सड़ जाए।···उसे क्लब भी जाना चाहिए। नाच-गाने में मन लगाना चाहिए!"

नाश्ता करके वह उठ खड़े हुए। जसवीर को आते ही सारी बातें समझाएँगे। उसे समय के साथ चलना चाहिए। वरना यह सूनापन उसे भी खा जाएगा। बेचारी··· ! माँ का प्यार तक उसने नहीं जाना।

सरदार का मन करुणा से भर आया। अपनी बेटी के प्रति हमदर्दी का एक चिराग उनके मन में जल उठा। उसकी रोशनी उनकी आँखों से निकलकर बाहर फैल गई।

शाम को वह घूमकर लौटे तो सीधे अपने बेडरूम में चले गए। उन्हें बार-बार अपनी बेटी से पूछताछ नहीं करनी चाहिए। उन्होंने दरवाजा बन्द कर लिया और 'पेरी मेसन' उठाकर पढ़ने लगे।

पढ़ते-पढ़ते सरदार कब सो गए, उन्हें पता ही नहीं। थोड़ी देर में खर्राटे भी लेने लगे और हरिया दरवाजे पर खड़ा उनकी सोती हुई जागती साँस के उतार-चढ़ाव को देखता रहा। उसकी हिम्मत नहीं हुई कि वह सरदार को जगा दे। उनसे कहे कि खाना तैयार है और बेबी अभी तक नहीं आई। बेबी का ध्यान आते ही हरिया की आँखों में भी एक सपना तैर गया। जसबीर उससे भी कई बार मजाक कर लेती है। तब वह अक्सर खड़े-खड़े जसवीर को घूरा करता है। उसका मन होता है, वह भी हवा में झूलती हुई उसकी दो मुलायम चोटियों को खींचे। सरदार जब कभी उसकी चोटियाँ खींचते हैं, तो जिस तरह से वह 'सी-ई-ई-ई' करती है और खीझते हुए अँगड़ाई लेती है और अँगड़ाई लेते समय उसकी छातियाँ जिस तरह हवा में तैर जाती हैं, हरिया के मन को सब काट-काट जाता है। वह अपने को निहायत गिरा हुआ और बेजान आदमी समझने लगता है।

हरिया दरवाजे पर खड़ा-खड़ा सोच ही रहा था कि सरदार एकाएक चौंककर उठ बैठे। सामने का बूस्टर पम्प चल रहा था और उसकी आवाज उस कमरे तक आ रही थी। जरूर इसी आवाज ने उनकी नींद तोड़ी है और समय होता तो वे हरिया का दम तोड़ देते। आज कुछ नहीं बोले। उसे देखते हुए नर्म शब्दों में उन्होंने पूछा, "खाना तैयार है ?"

"जीऽऽ।"

"तो लगाओ··· !" सरदार पलँग से उठे। हरिया अब भी वहीं खड़ा था। उन्होंने फ़िर जोर देकर कहा—"खाना लगाओ··· !"

हरिया ने दबे हुए स्वर में जवाब दिया—"बेबी नहीं आई, अब तक !"

"क्या !" सरदार एकदम चौंके, "कितने बजे हैं ?"

"साढ़े दस !"

"और वह अभी तक नहीं आई !" वे उसी पलँग पर धम्म से बैठ गए। हरिया भीतर चला गया। सरदार अपने-आप कुछ बुदबुदाने लगे। पलँग के दूसरे कोने की ओर खिसककर उन्होंने खिड़की का पर्दा खोला। चाँदनी रात थी। तब भी धुएँ की तरह हल्का अँधेरा तैर रहा था। आसमान में बादल आ गए थे। उन्होंने बादलों को देखा। वे भारी थे। "पानी न गिरने लगे"—उन्होंने अपने से कहा।

उसी समय फुसफुसाने के से स्वर उन्हें सुनाई दिए। उन्होंने एमल्डग्रीन पर्दे को पूरा खोल दिया। खिड़की के दूसरे कोने से देखा, शहतूत के नीचे दो छात्राएँ खड़ी हैं। उन्होंने चश्मा लगाया। लाल कार्डिगन चमक उठा। यह तो उनकी बेटी है !···जसवीर ! उन्होंने दो-तीन बार देखा—"हाँ, अरे, ये तो जसवीर है !" आगे बिना कुछ सोचे वे चिल्ला पड़े, "जसवीर··· !"

"जी"—लड़की एकदम चौंकी और जरा भी ठहरे बिना खरगोश के बच्चे की तरह भागती हुई अन्दर आ गई। सरदार ने इस बीच देखा, दूसरी छाया किसी लड़के की थी। उनका मस्तिष्क कौंध गया और वे भीतर-बाहर से हिल उठे।

जसवीर भीतर आई तो सरदार ने अपनी तेज निगाहों से उसे घूरकर पूछा—"वह कौन है ?"

"एक लड़का, पापा।"

"लड़का···ल ···ड़"—सरदार लड़खड़ाते हुए अपने बिस्तर से उठे। उठकर अब जसवीर की मरम्मत किए बगैर नहीं रहेंगे। हिलते हुए वे पास आए, बोले, "यही सिनेमा है···यही भाषण···पिकनिक···· !"

"नहीं पा···पा····" जसवीर विचलित हुई।

सरदार ने पास आकर उसकी चोटियाँ जोर से पकड़ लीं। उन्हें एक झटके के साथ खींचते हुए बोले, "बता, कौन है, वह ?"

"सतविरन्दर।"

"क्यों आया है यहाँ ?"

"मेरे साथ है !"

"क्यों है··· ? बोल··· !" सरदार ने अपना बायाँ हाथ ऊपर उठाया, परन्तु उठकर तेजी के साथ हवा में झूलता हुआ वह अकेला नीचे जा गिरा। उनका स्वर नर्म पड़ा। बोले, "बता, क्यों आया है, वह ?"

जसवीर सरदार के सीने से चिपक गई। अपना मुँह छिपाते हुए उसने कहा, "हमने शादी कर ली है।"

सरदार चौंक पड़े—"क्या ···शादी··· ?"

जसवीर ने दोनों हथेलियों से अपना चेहरा ढँक लिया और मजबूती से वह वहीं खड़ी रही।

"कब··· ?"— सरदार के शब्द काँप रहे थे।

"एक महीना पहले।"

"कहाँ ?"

"कोर्ट में··· ।"

"कोर्ट में !" —सरदार एकबारगी चीख उठे, "तुमने कोर्ट में जाकर शादी की है। भाग···जा यहाँ से। चली जा इस घर से···चली जा इसी दम।"

जसवीर वहाँ खड़ी नहीं रह सकी। सरदार के पूरे शरीर में खून उतर आया। उन्होंने खिड़की से बाहर झाँक कर देखा। वह लड़का अब भी वहीं खड़ा था। वे वहीं से चिल्लाए, "भाग···भागता है या··· ।"

लड़का शहतूत की झाड़ से पीठ टिकाए उसी तरह खड़ा रहा। हवा नर्म हो गई और पानी की हल्की-सी बौछारें आने लगीं। सरदार फिर चिल्लाए, "भाग जा··· !" उन्होंने खिड़की बन्द कर दी और पर्दों को नीचे डाल दिया। उनकी साँस धीमी पड़ गई। कमरे की लाइट बुझाकर वे पलँग पर लेट गए। उन्होंने अपने दोनों कान बन्द कर लिए। आँखें वैसे ही बन्द थीं। वे जड़ और चेतनाहीन पड़े रहे। परन्तु यह स्थिति मुश्किल से दो मिनट चली। तीसरे ही मिनट उन्होंने हरिया को आवाज दी। वह भागता हुआ आया तो उसी स्थिति में उन्होंने गुर्राए गले से कहा—"खाना लगा···तीन थालियाँ··· ? हरिया चला गया तो उन्होंने फिर आवाज दी, "ज—स—वी—र !"

जसवीर की हिम्मत नहीं हुई कि वह पापा के सामने आ जाए। दरवाजे की आड़ में छिपे हुए ही उसने कहा, "पा···पा··· !" सरदार जी का गला काँप रहा था। उन्होंने ताकत के साथ उसे काबू में किया। वे पलँग से उठे, उठकर बैठ गए। बोले—"जा, उसे भीतर बुला ले बेटी। पानी पड़ रहा है !"

वह लम्बे डग भरता और झपटता हुआ डाक बँगले में दाखिल हुआ। सहसा गेट के अन्दर जाते ही उसके पैर रुक गए—वह किसी गलत जगह तो नहीं आ गया।

"आइए, टंडन साहब, आइए।"

"अरे, टंडन साहब के लिए कोक लाओ।"

कारीडोर में रखी कुरसियाँ खाली हो गईं। सबने खड़े होकर टंडन का अभिवादन किया। एक कुरसी पर बैठते हुए उसने रुमाल से पसीना पोंछा और लम्बी साँस ली। कलेक्टर ने कोक की बोतल अपने हाथ में लेकर टंडन साहब की ओर बढ़ा दी तो अपने बिना स्ट्रा के ही सीधी बोतल अपने गले में उतार दी। रुमाल निकालकर उसने अपना पूरा चेहरा रगड़-रगड़कर पोंछा और इस तरह पोंछते हुए उसके चेहरे पर जैसे खून उतर आया। कलेक्टर ने वह चेहरा देखते हुए कहा—"आप तो एक सप्ताह से दौड़-भाग में लगे हैं।"

"टंडन साहब कल सारी रात नहीं सोए।" कुरसी पर बैठे एक आदमी ने रोककर कहा।

"मुसीबत उसी की होती है जिसके सिर पर पहाड़ टूटता है। पब्लिक-सेवा करना मजाक नहीं है ! पब्लिक चाहती है, आदमी साबुन की तरह अपने को मिटा दे और फिर वह मिटते हुए साबुन की झाग में इन्द्रधनुष देखने की कोशिश करती है," एक तीसरे आदमी ने बहुत गम्भीर होकर कहा। उसने टंडन की सेवाओं की लम्बी फेहरिस्त पेश कर डाली। अपनी तारीफ सुनकर टंडन का चेहरा लाल हो गया। उसने डाक बंगले के आसपास नजर दौड़ाई। शायद वह डाक बँगला नहीं था...नहीं तो, यह तो वही डाक बँगला है लेकिन कैसे ? रात-भर में नक्शा ही बदल गया। बाहरी दीवारों पर सिल्क पापलीन-सी सफेदी उभर आई थी। फटे हुए परदे बदल गए थे। फरनीचर पर नया रंग-रोगन किया जा चुका था। कारीडोर के नीचे सीढ़ियों पर सदाबहार हरियाली वाले गमले रख दिए गए थे। लॉन में बदरपुर की मिट्टी यूँ बिछा दी गई थी, जैसे कोई कालीन बिछाया गया हो। बाग के पौधे पानी से सराबोर थे और खुश नजर आ रहे थे। कहीं सूखापन नहीं था। लगता था पूरा डाक बँगला एक ही रात में बनाकर खड़ा कर दिया गया है।

बाहर दरवाजे पर तोरण लगाए जा रहे थे और लाल कपड़ों पर सुनहरे अक्षरों में कोई नारा लिखा था। पीछे से केवल 'जय' शब्द ही पढ़ा जाता था और टंडन के लिए महत्त्व भी उसी शब्द का था। 'जय' और 'जयकार' के नारे वह तब से लगा रहा है, जब वह एक

मामूली स्वयंसेवक था···लेकिन तब भी एक काम जरूर करता था। स्टेज के पीछे फूल-मालाओं के गुच्छे लेकर खड़े रहने में उसे हमेशा मजा आया है। उसके बाद जब वह थोड़ा बढ़ा तो वह स्टेज पर जाने लगा था। फिर वह माइक पकड़ने लगा था और जब अतिथि के आने में देर होती तो कभी माइक टेस्ट करता—'हेलो-हेलो', कभी उद्घोष करता—"हमारे माननीय अतिथि बस अभी घर से चलने ही वाले हैं। आप सब शांत बैठिए।" इसके बाद वह एक बात दोहराना कभी न भूलता—"भाइयो, बोलो, भारत माता की जय; गाँधी की जय" अपने साथ तीन बार ये नारे जनता के मुँह से दोहराकर वह अनुभव करता कि उसका वजन दुगुना हो गया है और उसके गले में सरस्वती उतर आई है।

इसके बाद जमाना बदला और टंडन स्टेज पर यूँ चक्कर काटने वाला आदमी नहीं रहा। वह एम० एल० ए० हो गया था। किस तरह उसने यह पद पाया और किन-किन लोगों की उसने किस तरह सेवा की, टंडन उन्हें दोहराकर याद नहीं करना चाहता। अब वह पब्लिक सर्वेन्ट है। हमेशा हँसता-मुसकराता लोगों से मिलता है। उसकी चाल में एक अनोखापन आ गया है। उसने लम्बे-लम्बे बाल रख लिए हैं। दाढ़ी कभी भरी होती है, कभी खीलों से भरी और कभी एकदम सपाट। उसके सिर और दाढ़ी के अधिकांश बाल सफेद हो गए हैं। चेहरे पर सुरखी उतर आई है। लेकिन वह सख्त भी दिखाई देने लगा है।

टंडन ने कलेक्टर की ओर देखकर पूछा—"शर्मा साहब, क्या टाइम हुआ है?"

"पाँच बज गया।"

"पाँच! अरे!" टंडन कुरसी छोड़कर खड़ा हुआ। गेट के बाहर लड़कियों की कोलाहल भरी आवाजें सुनाई दीं। कलेक्टर के साथ वह बाहर गया। स्कूल मास्टर पचास लड़कियों को लेकर आया था। उनके हाथ में कागज के छोटे-छोटे झंडे थे। वे सब सफेद कपड़े पहने थीं। टंडन उन्हें देखकर खुश हो गया। उसने किसी लड़की के सिर पर हाथ रखा तो किसी से उसका नाम पूछा, किसी के बाल ठीक किए और किसी का स्कार्फ सुधारा। कुल मिलाकर उसने वह सब कुछ कर डाला, जिसे देखकर जनता धन्य हो सकती थी और सोच सकती थी कि उनके आदरणीय नेता कितने महान और उदार गुणों से परिपूर्ण हैं।

टंडन ने मास्टर की ओर देखकर अँगुलियों से कुछ इशारा किया और मास्टर के लिए उतना ही काफी था। उसने लड़कियों को वर्गों में बाँटकर डाक बँगले के बाहर दो पंक्तियों में खड़ा कर दिया। उनके बीच खड़े होकर उसने उन्हें समझाया कि कब, किस तरह के नारे लगाए जाएँगे और उनके बदले में क्या जवाब देना है। मंत्रीजी जब कार से उतरेंगे तब लड़कियाँ किस तरह से सैनिक की-सी मुद्रा में खड़ी हो जाएँगी। फिर झंडे ऊपर करेंगी और फिर उनमें से एक लड़की किस तरह नारे बोलेगी और बाकी किस तरह उन नारों को दोहराएँगी। यही क्रम तब तक होगा जब मंत्री जी डाक बँगले से निकलकर बाहर आएँगे और सभा-मैदान की ओर बढ़ेंगे।

"सब ठीक है," टंडन ने संतोष की साँस लेते हुए कलेक्टर की ओर देखा और फिर जब दोनों गेट से अन्दर की ओर बढ़े तो पुलिस इन्सपेक्टर की आवाज आई, "सर, फोन है आपके लिए।"

टंडन तेज कदमों से आगे बढ़ गए। उसने फोन को हाथ में पकड़कर कान से लगाया और आवाज सुनते ही फिर उसके चेहरे पर एक नई सुरखी तैर गई। फोन मिनिस्टर साहब के पी० ए० का था। उसने कहा था कि साहब पार्लियामेंट से अभी तक नहीं आए, इसलिए उन्हें आने में थोड़ी देर होगी।

"कितनी ?" बहुत अदब से टंडन ने जब पूछा तो उसे पता लगा था कि छः बजे तक पहुँच जाएँगे।

"बहुत ठीक, साहब से कह दीजिएगा कि यहाँ फर्स्ट क्लास इन्तजाम है। बेशुमार भीड़ उनके दर्शनों के लिए आतुर है।" टंडन ने फोन रख दिया। मिनिस्टर साहब पाँच बजे आने वाले थे, अब छः बजे आएँगे, ठीक है। पाँच और छः में अन्तर ही कितना है।

"मैं पंडाल से होकर अभी आता हूँ।"—कलेक्टर और अपने कुछ स्वयंसेवकों से कहते हुए टंडन लम्बे डग भरता हुआ बाहर चला गया। उसके जाते ही पुलिस सिपाहियों ने अपनी टोपियाँ और पगड़ियाँ उतारकर टेबल पर रख दीं और कुछ फर्श पर और कुछ कुरसी पर बैठकर सुस्ताने लगे।

शामियाने के पास पहुँचते ही टंडन की खुशियाँ और बढ़ गईं। उसे आता देखकर ठेकेदार हरवंशसिंह कुछ ऐसी मुद्रा से उसकी ओर बढ़ा जैसे उसके लिए टंडन ही सबसे बड़ा मिनिस्टर है।

"आ गए ठाकुर साहब ?" टंडन ने उससे हाथ मिलाते हुए पूछा। उसने पहले दोनों तरफ इशारा किया। शामियाने के बाहर ढेर से किसान एक पंक्ति बनाकर खड़े थे। ठेकेदार ने उसे बताया कि जिस तरह टंडन चाहता है, ये किसान उसी तरह पंक्ति बनाकर शामियाने के बाहर खड़े रहेंगे और मिनिस्टर साहब के आते ही नारे लगाएँगे—'किसानों की शुभचिन्तक सरकार की जय हो !गांधी महाराज की जय हो ! जय भारत !" इसके बाद एक किसान मिनिस्टर साहब को फूल-माला पहनाएगा और फिर उन्हें मेमोरेंडम देगा। मेमोरेंडम कल टंडन के घर पर बैठकर बना लिया गया था। उसमें पहले आस-पास के गाँवों और किसान सरपंचों के नाम थे। इनके नीचे सिर्फ इतना ही लिखा था—"ये गाँव और इन गाँवों के किसान इस पावन-पुनीत धरती पर, इस युग के महान् नेता, भू-रक्षक, किसान-हितैषी, कृषि-प्रेमी, उदार, महामना मंत्री महोदय का अपनी आँखों की पलकों में बैठाकर स्वागत करते हैं। हमारी आपसे कोई माँग नहीं हैं। आप हमारे दरवाजे आए, हमारे भाग्य धन्य हुए।"

टंडन ने ठेकेदार के हाथ से मेमोरेंडम लेकर एक बार फिर पढ़ा और बहुत खुश होकर किसानों की ओर देखते हुए उसने भाषण-जैसी मुद्रा में कहा—"किसान भाइयो, आप नहीं

जानते, आज आप कितना बड़ा त्याग करने जा रहे हैं। यह मेमोरेंडम देकर आप यह प्रकट करेंगे कि देश के किसान सारी मुसीबतें सहकर भी अपने आदरणीय अतिथि का स्वागत किस प्रकार, किन शब्दों में करते हैं। भाइयों, हम सब जानते हैं कि ओलों से और गेरुआ लग जाने से गेहूँ की फसल चौपट हो गई है। हमें अकाल की उभरती छाया दिखाई देने लगी है। हमें सरकारी अफसर किस तरह परेशान करते हैं; किस तरह पटवारी लम्बरदार, रेवेन्यू इंस्पेक्टर, तहसीलदार हमारे ऊपर हावी होते हैं, लेकिन इन सबके बावजूद हम खुश हैं, क्योंकि इस महान देश की जनता के महान प्रतिनिधि हमारे बीच आए हैं तो वे हमारे मान्य अतिथि हैं और अपने अतिथि के लिए अपना सिर भी कटा देना भारत देश की जनता जानती है।"

टंडन ने गर्व के साथ जैसे ही भाषण समाप्त किया, ठेकेदार ने वैसे ही हाथ उठाकर उसकी जय-जयकार के नारे लगवा दिए। नारों की आवाज सुनकर शामियाने में बैठी जनता सर्तक हो गई। फुसफुसाती-सी आवाजें आने लगीं। स्वयंसेवक सीधे खड़े हो गए। उन सबने सोचा की शायद मिनिस्टर साहब आ गए हैं, लेकिन जैसे ही टंडन और ठेकेदार शामियाने के बीच पहुँचे तो पहले वहाँ एकदम खामोशी छा गई और फिर कोलाहल बढ़ गया। टंडन ने अपनी गरदन ऊँची करके पूरे शामियाने पर नजर दौड़ाई। शामियाना खूब भरा था। जहाँ-जहाँ भी उसकी नजर जाती लोग उसका अभिवादन करते, लेकिन इतने सारे लोगों के अभिवादन का जवाब देना एक अकेले आदमी के लिए किस तरह मुमकिन है! उसने केवल गरदन हिलाकर नजरें हटा लीं। पूरे शामियाने को देखने के बाद अजब-सी फुरती के साथ वह उचककर स्टेज पर जा पहुँचा। अपने बाएँ हाथ से उसने माइक को सँभाला और फिर गरदन झुकाकर दो बार माइक पर फूँक मारी। फिर उसने कहा—"हलो, हलो, भाइयो, अभी-अभी मिनिस्टर साहब का फोन मुझे मिला है। वे इस समय राष्ट्रीय-हित और विशेषकर किसान भाइयों तथा गरीब जनता के हित में एक महत्त्वपूर्ण बिल को पार्लियामेंट में पेश कर रहे हैं। उन्होंने पार्लियामेंट की मीटिंग छोड़कर स्वयं मुझे फोन किया है और कहा है कि मैं यहाँ भी जनता की कद्र करता हूँ और शीघ्र ही उसकी सेवा में पहुँच रहा हूँ। भाइयो, बस आधा घंटे में वे यहाँ आ जाएँगे। तब तक आप···" उसने स्टेज के एक कोने पर खड़े एक काले-कलूटे दयनीय-से दिखने वाले व्यक्ति की ओर इशारा किया। वह तेजी से झपटा और उसने जल्दी से एक रिकार्ड लगा दिया। पहले कुछ गुनगुनाती-सी आवाज आई, लेकिन जैसे ही टंडन स्टेज से नीचे उतरा कि एक सुन्दर कंठ जोर-जोर से गाने लगा—'पतली कमर है, तिरछी नजर है···'

टंडन को जैसे बिजली का तार छू गया। उसी पैर वापस लौटकर बाज की तरह वह ग्रामोफोन पर झपट पड़ा। इस तरह झपटते देखकर कई लोग वहाँ दौड़े आए। उनमें ठेकेदार हरवंशसिंह भी था। उसकी ओर देखते हुए टंडन बोला—"क्या मखौल है? कहीं मिनिस्टर साहब आ गए और उन्होंने यह गाना दूर से ही सुन लिया तो?"

ठेकेदार रिकार्ड लगाने वाले आदमी पर जैसे टूट पड़ा। एक बार तो ऐसा भी लगा कि वह उसके गालों को गर्म किए बिना नहीं रहेगा। इस बीच टंडन वहाँ से चला गया तो ठेकेदार ने एक रिकार्ड छाँटकर लगा दिया—'ऐ मेरे वतन के लोगों, जरा आँख में भर लो पानी, जो शहीद हुए हैं उनकी, जरा याद करो कुरबानी।' रिकार्ड लगाते ही ठेकेदार हरवंशसिंह झूमने लगा। फिर उसने रिकार्ड लगाने वाले आदमी को साफ-साफ शब्दों में इंस्ट्रक्शन दिए कि रिकार्ड तलाश करने में उसे सावधानी रखनी चाहिए। यहाँ केवल राष्ट्रीय गीत ही बजना चाहिए, क्योंकि यह पता नहीं मन्त्री महोदय किस क्षण आ धमकें। हाँ, यदि उसे पता लगे कि मन्त्री जी अभी देर से आएँगे तो वह दूसरे रिकार्ड जरूर लगा सकता है। फिर उसने अपनी पसन्द के एक-दो रिकार्ड भी बताए थे।

टंडन बाहर आकर खड़ा हुआ तो कई लोगों ने उसे घेर लिया। उनसे वह तरह-तरह की बातें करने लगा। सारी बातें मन्त्री महोदय के दायरे से घिरी थीं। वे टंडन को कितना चाहते हैं। उन्होंने कभी भी उसकी बात नहीं टाली। वह उनसे मिलने जाता है तो वे सारे काम छोड़कर उससे मिलने बाहर चले आते हैं। फिर उसके साथ बैठकर चाय पीते हैं और घण्टों गप्प मारते हैं।

उससे मिनिस्टर साहब का कोई 'सीकरेट' नहीं छिपा। उसने फिर यह भी बताया कि जब वे यहाँ आएँगे और भाषण देंगे तो कम-से-कम तीन बार उसका नाम जरूर लेंगे। उसने जोर देकर कहा था—"आप देख लीजिए, मिनिस्टर साहब बिना तीन बार मेरा नाम लिए मानते ही नहीं।"

टंडन की बातों में रस था। सभी बड़े ध्यान से उसकी बातें सुन रहे थे। उसी समय एक पुलिसवाला मोटर साइकिल पर सवार होकर उनकी ओर आता दिखाई दिया तो वह सतर्क हो गया और लोगों ने उसे देखा तो बिजली-सी दौड़ गई। शामियाने में बैठी जनता में फुसफुसाहट हो गई—"मन्त्री जी आ रहे हैं।" किसान अटेंशन मुद्रा में खड़े हो गए। ठेकेदार टंडन के पास आ गया।

टंडन ने पूछा, "फूलमालाएँ आ गई हैं न? कम-से-कम दो दर्जन आर्गनाइजेशन्स और संस्थाओं की ओर से मालाएँ पहनानी हैं।"

"मैं तीस मालाएँ लाया हूँ, टंडन साहब! उनमें दो तो चन्दन की मालाएँ हैं, दस विदेशी गुलाब के फूलों की और बाकी देशी गुलाब, मोंगरा और चमेली की। देखिए तो सही, स्टेज पर क्या खुशबू फैलती है। उनके ऊपर मैंने केवड़ा भी छिड़कवा दिया है।" टंडन की ओर देखते हुए उसने कहा, "आपने काम ठेकेदार हरवंशसिंह को सौंपा है, ऐरे-गैरे को नहीं।" इसके बाद अपना मुँह उसके कान के पास लाते हुए उसने धीरे से कहा था—"लेकिन, टंडन साहब, मेरी बात न भूल जाइए। मुझे आभार-प्रदर्शन करना है।"

"क्यों नहीं, वह तो तुम्हारा अपना अधिकार है।"

"और बाद में आप उनसे मेरी तारीफ कर देंगे, मुझे अलग से मिला देंगे और एक बात

जरूर कह दीजिए, मेरा टेंडर।"

पुलिस इंस्पेक्टर ने पास आकर मोटर साइकिल रोक दी। उसने सैल्यूट मारकर टंडन को बताया कि कलेक्टर साहब उसको याद कर रहे हैं। उसने कलाई में बँधी घड़ी देखी—छः बजकर दस मिनट। जरूर मिनिस्टर साहब का फोन होगा। वे पहुँच ही रहे होंगे।

"आप चलिए, मैं अभी आया।" टंडन ने इंस्पेक्टर को विदाकर वहाँ के कार्यकर्त्ताओं को एतिहातिन रूप से सावधान रहने के लिए एक और भाषण दे दिया। ठेकेदार को इस बात की सावधानी रखने के लिए विशेष निर्देश दिया गया कि रिकार्डों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया जाए।

टंडन डाक बँगले की ओर बढ़ा। उसे लगता था, उसके पंख होते तो कितना अच्छा था। सामने सीधी और सपाट सड़क थी। उसकी आँखें उसी सड़क के अन्तिम छोर को छू रही थीं। हर आने वाली कार के साथ उसकी धड़कन बढ़ती गई और उसके पैर तेज होते गए।

डाक बँगले पर लड़कियाँ पैर पटककर कवायत कर रही थीं और हाथों के इशारों के साथ गाना गा रही थीं—"आज हिमालय की चोटी से हमने ललकारा है, दूर हटो ए दुनियावालो हिन्दोस्तान हमारा है"। टंडन के होठों पर एक मुसकान सहसा ही तैर गई। उसने गर्व के साथ इस देश की उभरती पीढ़ी को देखा और फिर साँप की सरपट चाल से गेट के अन्दर चला गया। उसके पहुँचते ही पुलिस के सिपाही और अफसर अटेंशन की मुद्रा में खड़े हो गए।

किसी की ओर देखे बिना टंडन सीधे अन्दर के कमरे में चला गया। कलेक्टर आराम से टेबल पर पैर रखे कुरसी पर बैठे थे।

"आइए, टंडन साहब!"

"अरे, आप तो आराम कर रहे हैं, मिनिस्टर साहब के आने का वक्त हो गया। वे आ ही रहे होंगे..."

टंडन की आवाज को बीच में काटते हुए कलेक्टर ने आवाज लगाई—"दो कोक लाना!"

सीधे बैठते हुए कलेक्टर ने कहा—"साहब का फिर फोन आया था, अब वे साढ़े सात बजे के लगभग पहुँचेंगे।"

"साढ़े सात बजे।"

"हाँ, टंडन साहब, उनके पी० ए० ने कहा था कि साहब इस समय पार्लियामेंट में भाषण दे रहे हैं।"

"पार्लियामेंट में?"

"हाँ, पार्लियामेंट आज आठ बजे तक चलेगा। मिनिस्टर साहब के मंत्रालय की कुछ

माँगें हैं और उन्हें कोई स्टेटमेंट भी देना है।"

टंडन की देह ठंडी हो गई। जिस तरह पहले कलेक्टर यहाँ बैठा था, टंडन भी उसी तरह बैठ गया। थोड़ी देर तक खामोशी छाई रही। टंडन कुछ भी नहीं सोच सकता था। इसी बीच जब कोकाकोला की दो बोतलें लाकर टेबल पर रखी गईं तो वह उठ खड़ा हुआ और बिना कोक पिए बाहर आ गया। कलेक्टर साहब ने एक सिगार निकालकर सुलगाया और फिर कुरसी के साथ आराम की मुद्रा में टिककर धुएँ के छल्ले छोड़ने लगे।

बाहर अँधेरा होता जा रहा था। डाक बँगले की बत्तियाँ जल उठी थीं। बाहर गेट से आकर मास्टर ने पूछा—"मिनिस्टर साहब कब तक आ रहे हैं?"

टंडन ने चुप होकर भरी नजरों से मास्टर की ओर देखा तो उसे पसीना आ गया। उसने सम्हलते हुए कहा—"इन बच्चियों के लिए पूछ रहा हूँ, टंडन साहब। सब थक गई हैं।"

"बस थोड़ी देर में मिनिस्टर साहब आने वाले हैं।" टंडन ने यह बात मास्टर से नहीं जैसे आसमान से कही हो। उसी तरह ऊपर देखते हुए उसके पैर शामियाने की ओर बढ़ गए।

सड़क पर धुआँदार अन्धेरा उतर आया था। आने-जाने वाली कारों के जलते हुए हैडलाइट टंडन के मन में भय पैदा कर रहे थे। डाक बँगले पर लगा बोर्ड मिनिस्टर साहब कैसे पढ़ पाएँगे? खड़ी हुई थकी लड़कियाँ कब तक खड़ी रहेंगी? और खड़ी भी रहीं तो उनके गले से गीत कैसे निकलेंगे? उसने सोचा, ठेकेदार से दूध के इन्तजाम के लिए कह देना था। बच्चियों को एक-एक गिलास दूध मिल जाता तो उन्हें अधिकारपूर्वक खड़ा रखा जा सकता था।

शामियाने की ओर बढ़ते हुए उसके पैर अब कमजोर और शिथिल थे। उसका दिमाग भारी था और रह-रहकर वह बीता हुआ दिन याद आ रहा था, जब मिनिस्टर साहब को यहाँ आने के लिए राजी करने में उसे एड़ी-चोटी का पसीना बहाना पड़ा था। पहले तो दो-तीन बार मिनिस्टर साहब उससे मिले ही नहीं, क्योंकि यह उसकी कांस्टेन्सी नहीं थी और वे उसे नहीं जानते थे। टंडन के लिए मजबूरी यही थी कि वह अपने को किसानों का नेता कहता था और यदि किसी तरह उनकी भलाई का वह काम करा दिया तो उसकी धाक वहाँ जम जाएगी। इसके लिए दो-तीन एम० पी० के घरों के चक्कर काटे थे। कई बार चक्कर काटने पर वे मिले थे और उसमें से दो ने तो मदद देने से साफ इनकार कर दिया था। तीसरे ने मिनिस्टर साहब को फोन किया था और उसे मदद देने का पूरा वचन दिया था।

इसके बाद जब वह मिनिस्टर साहब के बँगले पर पहुँचा था तो उसने अपनी तरह के ढेर सारे लोगों की प्रतीक्षा करते देखा था। सभी मिनिस्टर साहब के गुणगान कर रहे थे। उनकी महानता के किस्से वहाँ दोहराए जा रहे थे और उनके साथ अपने परिचय की दुहाई सभी लोग बढ़ा-चढ़ाकर दे रहे थे। वहीं उसे पता लगा था कि मिनिस्टर साहब समय के

बहुत पाबंद हैं और घड़ी यहाँ से वहाँ हो सकती है, उनका समय जरा भी अपनी जगह से नहीं हिल सकता। यह सुनकर टंडन को हैरानी हुई थी। जनता हमेशा आध-पौन घण्टे का मारजिन रखकर आती है, क्योंकि अभी तक ठीक समय का मतलब कम-से-कम आधा घण्टा लेट होना तो है ही। उसने सोचा था कि वहाँ की जनता को आधा घण्टा पहले का समय बताएगा।

टंडन ने मिनिस्टर साहब के पी० ए० की ओर देखकर प्रार्थना की थी कि उसका नम्बर जल्दी लगा दिया जाए। लेकिन पी० ए० ने जोर देकर कहा था, "आपसे आगे आए और भी लोग बैठे हैं।"

इसी बीच टंडन ने देखा था कि दो समाज-सेविकाएँ एक कार से पोर्टिको में उतरीं थीं और सीधे धड़धड़ाते मंत्री जी के कमरे में घुस गई थीं। बहुत देर तक बाहर टंडन ही नहीं, ऐसे लोग प्रतीक्षा कर रहे थे, जिन्हें पहले से समय दे दिया गया था। वे जब पी० ए० से पूछते तो वह जोर से झुंझला उठता था। फिर अपने चेहरे पर बनावटी हँसी लाकर कहता, "थोड़ी देर ठहर जाइए।" वह कॉल-बेल बजाता और एक चिट चपरासी को देकर कहता—"साहब को दे दो।" यह किसी को पता नहीं था कि चिट में पी० ए० महोदय ने क्या लिखा है ? चिट लेकर चपरासी गर्व से बैठे हुए लोगों की ओर देखकर साहब के कमरे की ओर बढ़ जाता था। प्रतीक्षारत सभी लोगों को चपरासी महोदय पर अटूट विश्वास और भरोसा था। उसे देखते हुए उनके मन में एक आदर का भाव उठता था। वह उन्हें यक्ष के मेघ की तरह दिखाई देता था।

टंडन को याद है, मिनिस्टर साहब के पास से जब उनका पी० ए० वापस लौटा था तो उसने जैसे हवा से सारी आक्सीजन खींच ली थी। उसने कहा था, "साहब जरूरी काम से बाहर गए हैं। दो घंटे के बाद लौटेंगे।

टंडन ने दो घंटे किस तरह काटे थे, वही जानता है। लेकिन दो घंटे बाद उसका मन हुआ था कि वह वहीं सिसक-सिसककर रो पड़े, ताकि जब वह इस बँगले के बाहर जाए तो उसके चेहरे पर शिकायत के कोई निशान शेष न रहें। वह हमेशा की तरह हँसता-मुसकराता ही रहा और लोगों से मिनिस्टर साहब की मिलनसारिता और पंक्चुएलिटी की बातें बढ़ा-चढ़ाकर करता रहा। वह जानता है कि राजनीति में ही उसे रहना है और बिना इस तरह धोखा खाए और धोखा दिए उसकी राजनीति नहीं चल सकती।

सड़क पर चलते-चलते एक जगह टंडन उबटा खाते-खाते बचा। वहीं चौंककर वह सतर्क हो गया और सावधानी के साथ आगे बढ़ने लगा। थोड़ी ही दूर वह चला था कि उसका दिमाग घूम गया। अतीत उसके सामने पंख फैलाए तैरने लगा। दूसरे दिन वह किस तरह मिनिस्टर साहब से मिल पाया था और उन्हें कई तरह के आश्वासन देकर तथा समझाकर उसने उनके आने की अनुमति प्राप्त की थी। मिलते ही उसे सारी परेशानियाँ हल्की मालूम पड़ने लगी थीं। उसे लगा था जैसे बिच्छुओं के डंक को किसी ने दूर से

फूँककर जादू के बल पर निकाल दिया है। वह अपने आप अपने को हल्का महसूस करने लगा था।

टंडन जब शामियाने की ओर मुस्कराते हुए पहुँचा था तो लाउडस्पीकर की आवाज उसके कानों में आ रही थी, लेकिन वह देशभक्ति का रिकार्ड नहीं था। उसकी आँखें अनायास ही कलाई पर बँधी घड़ी की ओर गई तो वह मुसकरा पड़ा और उस गाने का रस लेने लगा। लेकिन शामियाने के बाहर सूनापन देखकर उसे धक्का लगा। वहाँ ठेकेदार हरिवंशसिंह नहीं था। दो-चार दूसरे कार्यकर्त्ता इधर-उधर घूम रहे थे। उनमें से टंडन ने एक को बुलाकर पूछा, "ठेकेदार साहब कहाँ हैं ?"

"अभी यहीं थे, टंडन साहब।"

"यहीं थे ?"

"हाँ, किसानों के साथ कहीं चले गए हैं, आते ही होंगे।" दूसरा कार्यकर्त्ता जानता था इसलिए उसने सही जानकारी दी।

टंडन वहीं खड़ा देखता रहा। थोड़ी देर में ठेकेदार आ गया तो आते ही उसने पूछा, "क्या हुआ...मिनिस्टर साहब ?"

टंडन हाथ में बँधी घड़ी देखकर मुसकराया और बोला, "बस आते ही होंगे। लेकिन सारे किसान कहाँ चले गए ?"

"वे खड़े-खड़े थक गए।" ठेकेदार हरवंशसिंह ने कहा।

टंडन ने क्रोध से मुँह बनाते हुए कहा, "अपने को क्या समझते हैं ये किसान, मिनिस्टर साहब के लिए क्या ये इन्तजार नहीं कर सकते ? अजीब लोग हैं। सच है, जब तक जनता को धक्के न लगाए जाएँ, वह रास्ते पर नहीं आती।"

ठेकेदार टंडन का हाथ पकड़कर एक ओर ले गया। उसने कान में कहा, "टंडन साहब, ये कोई अपने गाँव के किसान तो हैं नहीं। अपने यहाँ के किसान तो काले झंडे लेकर प्रदर्शन करने वाले थे। आप जानते हैं, उनकी पार्टी को किस तरह रुपये देकर चुप किया है। ये सब तो मजदूर थे और घंटे के लिए मजदूरी तय हुई थी।"

"तो आप और मजदूरी दे सकते थे।" टंडन ने फटी आवाज में कहा, "आप जानते हैं, मैंने यह सब आप के लिए ही किया है। मेरा यहाँ कोई स्वार्थ नहीं है। अपना भविष्य देख लीजिए। बस, मंत्री महोदय के आने की देर है और फिर आपकी सारी अँगुलियाँ घी में होंगी। टेंडर आपने ही दिए हैं, मैंने तो नहीं दिए हैं न ?"

"जी जी..." ठेकेदार का जैसे थूक सूख गया। उसने टंडन की दोनों हथेलियाँ अपनी हथेलियों में लेते हुए कहा, "मैं अभी दूसरे पचास मजदूर लिए आता हूँ। आप चिन्ता न करें।"

"जल्दी जाइए!" टंडन लौटकर शामियाने की ओर बढ़ गया। तभी बहुत से कार्यकर्त्ताओं ने उसे घेर लिया।

"साहब, पब्लिक का धीरज अब छूट रहा है।" एक ने कहा।

दूसरे ने कहा, "हम कहाँ तक जबरन उन्हें बैठाए रखें।"

टंडन ने फिर घड़ी देखने का बहाना किया, जैसे अब तक उसने घड़ी दखी ही नहीं थी।

"बस, अब ज्यादा इन्तजार नहीं करना होगा।" उसने दृढ़ स्वर में आश्वासन दिया तो कार्यकर्त्ता पंडाल में दौड़ गए और जनता को माइक पर यह सूचना देने लगे।

लेकिन टंडन का मन न जाने क्यों बैठ रहा था। उसे एक अजीब-सी रिक्तता महसूस होने लगी थी। लगता था उसका शरीर अपने आप कमजोर होता जा रहा है। लेकिन तभी उसने अपने को सम्भाल लिया। इतने दिनों की जनसेवा का उसने स्मरण किया और अपने मन को मजबूत बनाने की कोशिश की। उसने अपने को समझाना शुरू किया—यदि वाक़ई पार्लियामेंट चल रहा है और इतनी बड़ी जिम्मेदारी मिनिस्टर साहब के ऊपर है तो वे क्या कर सकते हैं? जो भी हो वे आ भर जाएँ, सब ठीक हो जाएगा। जनता का आवेश और जनता की खुशी दोनों क्षणिक होते हैं। वह मेमने की तरह कभी भी हाँकी जा सकती है।

टंडन कार्यकर्त्ताओं को वहीं छोड़कर थोड़ा आगे बढ़ गया और उस अँधेरी-सपाट सड़क को देखने लगा, जो डाक बँगले से होकर शामियाने तक आती है। कारों के जलते-बुझते हैडलाइट उसके मन में चकाचौंध मारने लगे और इसी चकाचौंध में एक कार उसके ठीक पास आकर रुक गई। हड़बड़ाकर टंडन ने उसे देखा तो उसमें कलेक्टर साहब बैठे थे। पीछे की सीट से अपनी गरदन बाहर निकालते हुए उन्होंने टंडन को पास बुलाया। उस छोटे से क्षण में टंडन का रक्तचाप तेजी से बढ़ गया। उसकी ताकत लौट आई। फिर कलेक्टर ने अपने कंठ पर जोर देते हुए बताया कि अभी-अभी मिनिस्टर साहब के पी० ए० का फोन आया था कि साहब चार बजे ही शिकार खेलने निकल चुके हैं। शिकार के लिए जाते वक्त कह गए थे कि यदि साढ़े सात बजे तक वे न लौटे तो फिर रात वहीं रह जाएँगे।

पी० ए० का यह सन्देश देते हुए कलेक्टर शर्मा ने टंडन की ओर एक बार मुस्कराकर देखा। फिर बिना कुछ कहे-सुने कार स्टार्ट कर अपने घर की ओर चला गया। टंडन एक टूटे हुए आदमी की तरह वहीं ठूँठ बनकर खड़ा रहा, जैसे उसे अचानक लकवा मार गया हो। उसे यह भी पता नहीं था कि पीछे और भी कार्यकर्त्ता खड़े हैं।

अपनी मुक्ति

"इतनी रात, बाहर क्या देख रही हो ?"

"कुछ भी तो नहीं।"

"फिर सो जाओ। सफर बहुत लम्बा है।"

"सो जाऊँ !" वह अपने-आप चौंक पड़ी ! उसने फर्स्ट क्लास के उस कम्पार्टमेंट को देखा। चार बर्थवाले डिब्बे में वे दो ही थे। सामने की बर्थ पर वह अचेत खर्राटे भरते हुए सो रहा था। उसने आवाज दी, "सुधीर !" गाड़ी तेज गति से भागी जा रही थी और उसकी आवाज के सिवाए और कुछ नहीं था।

'तब !'—वह सोचने लगी, 'किसने मुझे सो जाने को कहा ! कौन था यह !' सोचते हुए कँपकँपी उसके भीतर दौड़ गई, उसने अपनी ही साड़ी से अपना चेहरा पोंछ लिया। काँच-लगी खिड़की को भेदकर उसने बाहर देखा ! हल्के कोहरे की तरह फैली हुई चाँदनी पहाड़ की चोटियों से लेकर रेल की पटरी तक एकदम अकेली और अचेत थी।

अपनी कुहनी को खिड़की से टिकाकर उसके ऊपर उसने अपना चेहरा रख लिया और अपलक भागते हुए जंगलों को देखने लगी। शुरू होती हुई गरमी का मौसम ! सारा जंगल एकदम उजाड़ और नंगा था ! 'नंगा कौन नहीं है !' उसने अपने-आप से सोचा, 'सबसे अधिक नंगा आदमी है, जिसे अपना नंगापन ढँकने के लिए नकली कपड़े पहनने होते हैं। उसके शरीर से न कभी पत्ते उगते और न डालियाँ फूटतीं !' उसे अपनी ही देह अपने सामने खड़ी दिखाई दी और एकाएक उसने आँखें बन्द कर लीं।

वह उठकर खड़ी हो गई और लम्बी जम्हाई लेकर उसने अँगड़ाई ली। शायद नींद आ जाए। पर नींद का नाम नहीं था। उसके भीतर बहते हुए नाले की तरह कुछ दौड़ रहा था और उसका प्रवाह उसकी नींद को जैसे बहा ले गया था। वह सामने की बर्थ के पास गई। युवक उसी तरह अचेत सो रहा था। उसने झुककर उसके चेहरे को पास से देखा। जो डालियों के बीच झलकते आकाश की तरह खूबसूरत था। उसका मन हुआ कि और झुक जाए और अपने चेहरे को उस चेहरे के ऊपर रख दे, लेकिन नहीं... वह एकदम सीधी खड़ी हो गई। घृणा और ग्लानि के भाव उसके चेहरे पर उभरे और वह फिर विचलित हो उठी। भागती हुई रेल की तरह उसका मन भागकर कँटीले तारों में उलझ गया। वह फिर अपनी जगह आकर बैठ गई और खिड़की खोलकर बाहर देखने लगी। रूई-सी धुली हुई मुलायम हवा ने उसके शरीर का स्पर्श किया तो उसने एक ताजगी-सी महसूस की। उसने सामने

देखा, सूखे और उजाड़ जंगल में भी एक ताजापन था। सिर से पैर तक लदे हुए टेसू के फूलों ने उसकी नजरें पकड़ लीं। वह उन्हें लगातार देखती रही। उसे ये फूल बेहद पसन्द थे। जब वे दोनों कभी एकसाथ यात्रा पर जाते तो वह इन्हीं फूलों को देखा करता था। उन्हें देख-देखकर वह तरह-तरह की बात करता, "शुभा, इन फूलों को देख रही हो न! मेरा मन इन्हें देखकर न जाने कहाँ टूटा जाता है। टेसू और अमलतास—यही दो मेरी कमजोरियाँ हैं। मैं सोचता हूँ, कहीं अपना घर बनाने का मौका मिला, तो एक छोटा-सा लॉन जरूर बनाऊँगा और उसमें यही दो वृक्ष होंगे। बस···।"

उसे लगा, उस आवाज ने उसे चारों ओर से घेर लिया है।

"क्या तुम सोच सकती हो कि ये फूल कैसे लगते हैं?···तुम नहीं सोच सकतीं···सोचोगी भी तो कहोगी ये अंगारों की तरह दहक रहे हैं। नहीं···ये तुम्हारी दो चोटियों में बँधे हुए लाल रिबन की तरह लटके हुए हैं···लेकिन वह भी नहीं, जब तुम कभी सलवार और कुर्ता पहनकर उसके ऊपर लाल दुपट्टा डालती हो न, तो वह हवा में जिस तरह उड़ता है, ये फूल भी इन जंगली हवाओं में उड़ रहे हैं। नहीं-नहीं, यह भी नहीं···कुछ भी नहीं···मैं कुछ सोच ही नहीं पा रहा।" उसे लगा, जैसे किसी ने उसे अचानक खींच लिया है और वह अपने पास उसे बन्द करता जा रहा है। उसकी हालत लगभग वैसी ही थी, जैसी सपना देखनेवाले की होती है; जो अपनी अवचेतन स्थिति में देखता जाता है। और उसकी हालत भी उसी तरह बदलती जाती है। कई बार तो वह बातें भी करता है, चीखता भी है और उठकर चलने भी लगता है। अनजाने फिसलकर वह उसी बर्थ पर लेट गई और उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं। लेकिन आँखें बन्द करते समय अचानक दहशत-सी हुई और वह उठकर खड़ी हो गई। उसने लकड़ी वाली खिड़की को बन्द कर दिया, ताकि बाहर का कुछ भी दिखाई न दे।

उसने डिब्बे को देखा, एक अजीब-से अकेलेपन ने उसे घेर लिया। सुधीर अब भी उसी तरह सो रहा था। उसने दो-तीन आवाजें भी दीं, परन्तु उसने करवट तक नहीं बदली। एक बार तो उसने हिलाकर उठाना भी चाहा, परन्तु चाहकर भी वह ऐसा नहीं कर सकी।

उसने छोटे-से डिब्बे में चक्कर लगाया। दो पंखे बन्द किए, नीली-रोशनीवाले दोनों बल्बों को बुझाकर उसने एक पूरी लाइट खोल दी। दोनों तेज बल्बों के खुल जाने से डिब्बे में रोशनी बढ़ गई और वह सीधे सुधीर के चेहरे पर पड़ने लगी। उसे लगा, रोशनी के तीखेपन से वह जरूर उठेगा, लेकिन उसने करवट बदल ली और पहले की तरह वह खर्राटे भरने लगा।

एक बार वह ऐसी ही किसी यात्रा में गई थी और तब उसने इतना अजनबीपन महसूस नहीं किया था। रात को उसे भय लगा था तो उसने बिना आगा-पीछा देखे उसे हिलाकर उठा दिया था। उसने उठते हुए पूछा था, "क्या हुआ, शुभी! सोती क्यों नहीं?"

"नींद नहीं आ रही।"

"तो कुछ पढ़ने लगो। शायद नींद आ जाए।"

"कोशिश की, लेकिन मन नहीं लगता।"

"क्या पढ़ रही थीं तुम ?"

"मर्लिन मनरो की बायोग्राफी।"

"नहीं"—वह उठकर बैठ गया था। उसने 'पोस्ट' का वह अंक उठाकर एकदम खिड़की के बाहर फेंक दिया था। "इसके पढ़ने से तुम्हारी नींद और दूर चली जाएगी। वह तुम्हारे लिए आदर्श नहीं हो सकती···शायद किसी के लिए नहीं। इस तरह की जिन्दगी बिताना और फिर नींद की गोलियाँ खाकर आत्महत्या करना दोहरा पाप है।"

उसने कोई जवाब नहीं दिया था। शायद देने को नहीं था, क्योंकि उसे वाकई नींद नहीं आ रही थी।

"इस रिपोर्ट को तुम पढ़ डालो," उसने अपनी बर्थ से 'न्यूजवीक' का ताजा अंक निकालते हुए उसे दिया था, "वियतनाम की पूरी कहानी इसमें छपी है। बड़ी दर्दनाक और रोमांचकारी है। तुम्हें कत्तई अकेलापन महसूस नहीं होगा। तुम देखोगी इनके दर्द की कहानी तुमसे बहुत बड़ी है!"

उसने 'न्यूजवीक' का अंक पढ़ना शुरू ही किया था कि उसमें छपी तस्वीरों को देखकर उसका मन काँप उठा। नंगी पड़ी हुई लाशों को वह इस तरह अकेले नहीं देख सकती। उसने पत्रिका बन्द कर बर्थ के नीचे फेंक दी थी और डिब्बे में घूमने लगी थी। लेकिन उसने इस तरह शुभा को घूमने नहीं दिया था। उसके पैरों का चलना उसने पहचान लिया था और एकाएक झपटकर उसे अपनी बर्थ पर खींच लिया था और चादर ओढ़ाकर लिटा दिया था। तब उसके सोच के दरवाजे अपने-आप बन्द हो गए थे और वह सो गई थी।

लेकिन···आज वह बेहद परेशान थी। सुधीर की पीठ देखकर उसका अकेलापन और बढ़ गया था। बीते हुए कल की यादें उसे काटे जा रही थीं। उसके सामने जो आज था, वह अनिश्चित और अस्थिर होकर डगमगा रहा था, जबकि उसके पहले उसने आज पर भरोसा किया था। सुधीर ने उसे ढाढ़स दिलाया था, "यूँ रोने-पीटने से लाभ नहीं होगा। जो हो गया, उसे भोगना ही होगा और अपने को नई जिन्दगी के लिए तैयार करना होगा।" उसने समझाया था कि आज के लिए आनेवाला कल एक सपना और बीता हुआ कल एक इतिहास। समझदार आदमी को दोनों पर भरोसा नहीं करना चाहिए।

इसी के बल पर उसने सन्तोष किया था। वरना उस शाम और शामों की तरह ही तो वे दोनों घूमकर लौट रहे थे। रिवोली के पास उसका मित्र मिल गया था और शुभा को उसकी कार में भेज दिया था। वह स्कूटर में जा रहा था और रकाबगंज के पास ही एक्सीडेंट हो गया था। रात-भर वह इरविन अस्पताल में पड़ा रहा और शुभा अपने घर में आराम से सोती रही, क्योंकि उसने कहा था कि उसे लौटने में काफी देर हो सकती है और सबेरा भी

हो सकता है ।

दोपहर को उसे पता चला कि उसका एक्सीडेंट हो गया है और अब वह मर चुका है। यह खबर सुनते ही जैसे उसके खून का प्रवाह अचानक रुक गया था और सारे आँसू एकदम सूख गए थे । वह अपना पथराई आँखों से सब-कुछ देख रही थी—अपने मरे हुए पति की लाश, फटा हुआ उसका सिर, विकृत चेहरा, लकड़ियों की तरह सीधे तने हुए उसके वे हाथ, जो अक्सर गोल-गोल घूमकर उसकी गर्दन में लिपटे होते थे, बन्द होंठ, फटी हुई आँखें··· ।

बाहर बहुत-से लोग जमा थे, उनकी आवाजें वह सुन रही थी और नहीं भी सुन पा रही थी । वे सब शवयात्रा के प्रबन्ध में व्यस्त थे, जैसे किसी बहुत बड़ी और महत्त्वपूर्ण कार्य की योजना सावधानी से बनाई जा रही थी । लाश के सिरहाने बैठकर उसने सुधीर को यहाँ-वहाँ दौड़ते हुए देखा था, वह भीतर-बाहर का सारा काम देख रहा था । बीच-बीच में वह शुभा की ओर देखता और अपनी नजरों से जैसे उसे समझाने की कोशिश करता, "हम नियति के सामने अवश हैं, शुभी ! लेकिन तुम अब भी अकेली नहीं हो ।"

शाम श्मशान में जब दाह-संस्कार किया जानेवाला था तो लोगों ने भाषण देने शुरू किए । मृतक की तारीफों और नेक कामों के कारनामे दोहराए गए और जब किसी ने यह प्रस्ताव रखा कि मृतक के परिवार के लिए चन्दा जमा किया जाए, तो सुधीर को क्रोध आ गया । "नहीं," उसने वहीं प्रतिवाद किया था, "चन्दा जमा करने की जरूरत नहीं है । आप अपना काम कीजिए और औरों को उनके भाग्य और समय पर छोड़ दीजिए ।"

शुभा ने जब यह सुना था तो वह बहुत खुश हुई थी । किसी के सामने हाथ फैलाना उसे कभी अच्छा नहीं लगा था । वह पढ़ी-लिखी और समझदार है । कहीं नौकरी कर सकती है और फिर है भी अकेली । अकेला पेट पालने में कोई तकलीफ नहीं । उसने सुधीर का एहसान माना था और अपना आभार भी प्रकट किया था ।

···लेकिन थोड़े ही दिनों में शुभा ने महसूस किया था कि पति के बिना उसकी जिन्दगी एकदम नीरस और बेकार है । पति एक छाया होता है और छाया न रहे तो धूप बेतरतीब और अचानक कभी भी कमरे में घुस आती है ।

शुभा ने तीखी धूप का सामना किया था, लेकिन सामना करते हुए उसे अक्सर लगा था कि उसके लिए भी एक छाया जरूरी है । और···

सुधीर ने करवट बदली तो इस बार उसकी पीठ सीट के पीछे हो गई । रोशनी उसकी आँखों पर सीधी पड़ने लगी तो शुभा ने उठकर दोनों बल्ब बुझा दिए । एक मिनट के लिए डिब्बे में अँधेरा हो गया । उसने नीली रोशनी वाले दोनों बल्ब जला दिए और फिर खिड़की के पास जाकर बैठ गई । उसने लकड़ी वाली खिड़की खोलकर काँच से बाहर देखा—शायद हवा जोर से बह रही थी । सूखे झाड़ कमर से सिर तक डोल रहे थे । सामने कोई नदी थी और वह पास आती जा रही थी । उस पर चाँद की रोशनी चमक पैदा कर रही थी । पानी हवा की लहरों के साथ तैर रहा था और···घरघराती रेलगाड़ी जब उस पुल पर

शायद उसे इस बात का एहसास था कि वह अकेली नहीं है। डिब्बे में सुधीर भी है, जिसका चेहरा गम्भीर, शान्त और स्थिर है और वह अपने पीछे सारी उठती हुई लहरों को छिपा सकती है।

गाड़ी पुल के बाहर आई तो फिर उजाड़ और सूखा जंगल था। टेसू के फूल उसी तरह चमक रहे थे, जैसे वे प्रेम की उत्कण्ठा में मुस्करा रहे हैं।

सुधीर उसके घर अक्सर आने-जाने लगा था। उसने शुभा की नौकरी यूनिवर्सिटी में लगवा दी और काम में लगे रहने के कारण उसका नितान्त एकान्त टूट गया था। उतने बड़े पुस्तकालय की देखभाल करना उसका काम था और जब वहाँ कोई काम न होता तो वह पुस्तकें निकालकर पढ़ने लगती। जब उसका पति जीवित था तो वह अक्सर रोमानी और जासूसी कहानियाँ पढ़ा करती थी और फिर रात को उनके बारे में डिस्कस किया करती थी। कई बार उसका पति तंग आकर झुँझला उठता था, लेकिन तब भी सम्भावनाओं और लेखकीय भूलों का दायित्व खोजने के लिए अपनी बात पर अड़ी रहती थी, चूँकि अब यह सम्भव नहीं था, उसने वैसी पुस्तकें देखना भी बन्द कर दिया था। अब वह अक्सर जानवरों की कहानियाँ और उनकी आदतों के बारे में जानने को उत्सुक रहती थी। ऐसी किताबें पढ़ते समय वह आदमी और जानवर दोनों को अपने बाजुओं में खड़ा कर लेती थी। फिर उन्हें तोला करती और···

"सुधीर," उसने एक दिन कहा था, "एक अच्छी नस्ल के कुत्ते का बच्चा मेरे लिए ला दो। उसे ही धीरे-धीरे बड़ा करूँगी। जानवरों में वही सबसे वफादार होता है, और शायद आदमियों में भी··· ।" इसके बाद उसने कुत्तों की सारी नस्लों का हवाला पेश किया था। उनकी आदतें और खान-पान बताकर उसने निष्कर्ष निकाला था कि वह अलसेशियन जाति के ही किसी कुत्ते को पालेगी, क्योंकि कई बार वह रात-रात-भर सो नहीं पाती थी। उसे लगता था जैसे कोई दरवाजे की साँकल खटखटा रहा है और ऐसे समय में मकान-मालिक के उस लड़के की शक्ल उसके सामने घूम जाती थी, जो छत पर खड़ा-खड़ा उसे ताका करता था। पति कि मृत्यु के बाद वह भी मातमपुरसी के लिए वहाँ आया था। थोड़ी देर के मौन के बाद उसने शुभा के सौंदर्य की तारीफ की थी और कहा था, "भाभी इतनी लम्बी जिन्दगी पड़ी है तुम्हारे सामने, कैसे काटोगी उसे?" शुभा ने उस दिन कोई जवाब नहीं दिया था, लेकिन अगली बार जब उसने यही बात दोहराई और कहा, "देखो न, हमारा धर्म कितना निकम्मा और बेईमान है। तुम अपनी ही बात लो, तुम्हें देखनेवाला ही जब नहीं रहा तो तुम उसके मिथ्या रूप को अपनी सूनी माँग में अब भी क्यों सम्भाले फिरती हो, मैं जानता हूँ," उसने शुभा के चेहरे पर अपनी नजरें टिकाए हुए कहा था, "तुम यह नहीं चाहतीं। तुम जानती हो कि अब वह तुम्हारी जिन्दगी नहीं हो सकता और तुम्हें अपने ढंग से जीने का अधिकार है, लेकिन··· ।"

शुभा को क्रोध आ गया था। उसने कहा था, "मैं अपने अधिकारों को खूब समझती हूँ और इस मामले में किसी की सलाह नहीं चाहती।" उसने तब भी बात को यहाँ-वहाँ घुमाना चाहा था तो शुभा ने साफ कह दिया था कि उसे न बार-बार आने की जरूरत है, न किसी तरह की हमदर्दी दिखाने की। बिना कुछ जवाब दिए तब चला तो गया था, परन्तु शुभा ने अनुभव किया था कि उसने जवाब देकर एक बड़ी मुसीबत मोल ले ली है। उसका पिता सारे लिहाज छोड़कर अब साफ-साफ कहने लगा था कि वह मकान खाली कर दे। उसे अपने ही रिहाइश के लिए मकान की जरूरत है।

सुधीर ने इसका प्रतिवाद किया था, मकान खाली कराना इतना आसान नहीं है। शुभा भी यह जानती थी, लेकिन वह किसी छलावे में रहने की आदी नहीं थी। इस तरह कानून की बातें खुली मुट्ठीवाला कभी नहीं कर सकता। धीरे-धीरे उसे भय लगने लगा था और आधी रात के सन्नाटे में वह मकान-मालिक के लड़के के पैरों की आवाजें सुनने लगी थी। किसी दिन वे आवाजें दरवाजा तोड़ सकती हैं। उनका नाम पुलिस के दफ्तर पहुँच सकता है। और···वह लड़का सुधीर को आते-जाते ताकने लगा था।

"तुम इस तरह रोज मत आया करो," शुभा ने अपने मन को पत्थर बनाकर एक दिन सुधीर से कहा था।

सुधीर मुँह बाए उसके चेहरे को देखने लगा था। वह यह भी नहीं पूछ सका था कि इस तरह आने से उसका प्रयोजन क्या है? शुभा उसकी नजरें बरदाश्त नहीं कर पाई थी और सिसकने लगी थी। लेकिन उस दिन के बाद उनका 'रुटीन' बदल गया था। सुधीर अब अक्सर लाइब्रेरी ही पहुँच जाता। वहाँ से दोनों घूमने निकल जाते—सिनेमा, पार्क, होटल, नाटक और···वह कभी घर भी आता तो अब दबे पैर और पीछे से आने लगा था। शुभा को विश्वास था कि इस तरह अब कोई उसे नहीं देख पाएगा और सारी चर्चाएँ समाप्त हो जाएँगी। वह इसी भ्रम में चलती रही, इस सचाई को समझे बिना कि कुछ कुशंकाओं को रोकने के लिए आदमी अपने भीतर और भी आशंकाएँ पैदा कर लेता है। उन्हीं का परिणाम था कि पति की मृत्यु के छह महीने के भीतर ही उसे वह घर खाली करना पड़ा था। घर खाली करने में उसे सुख ही मिलता, क्योंकि यहाँ यादों के घेरे में फँसकर वह रात-रात-भर नहीं सो पाती थी, किन्तु घर खाली करते वक्त जितनी नजरों ने, जितने ढंग से उसे घूरा था, उसे लगता था, यहीं रहकर वह उनका सामना कर सके तो शायद ज्यादा सम्मानप्रद होता।

सुधीर ने सारा सामान ढोकर नए मकान में पहुँचाया था और उसकी सफाई की थी। इस परिवर्तन ने शुभा का मन बहुत कुछ हल्का कर दिया था, सुधीर जब-तब आकर खोज-खबर लेता रहता। लेकिन थोड़े ही दिनों में शुभा को लगा, जैसे एक इरादे को मजबूत बनाकर शायद वे ज्यादा कमजोर होते जा रहे हैं।

शुभा अपने-आप में डूबी ही थी कि अचानक गाड़ी की रफ्तार धीमी होती गई और फिर वह रुक गई। उसने बाहर झाँककर देखा। दोनों ओर घना जंगल था। वह उजाड़ न

होता तो शायद इस तरह गाड़ी रुकने से ड्राइवर को भी वहाँ भय लगता। बहुत-से लोग अपने डिब्बों से उतर आए थे और कोलाहल होने लगा था। शायद किसी ने चेन खींची थी।

उसने सुधीर की ओर देखा। गाड़ी के रुकने के बाद उसके खर्राटे और तेज हो गए थे। उसने दोनों खिड़कियाँ खोल दीं और सारी लाइटें जला दीं—बाहर की आवाजों के भीतर आने से शायद सुधीर की नींद खुले।

कोलाहल बढ़ गया। एक जंगली भैंस इस बुरी तरह इंजन से कट गई थी कि उसका खून फव्वारे की तरह सारे डिब्बों के नीचे फैल गया था। एक डिब्बे का वक्यूम ढीला पड़ गया था और इसी से गाड़ी अपनेआप रुक गई थी। उसने झाँककर देखा। लोग मरी हुई भैंस के टुकड़े खींच कर निकाल रहे थे। सुरमई चाँदनी में खून के लाल धब्बे और माँस के लोथरे चमक रहे थे। एक बारगी तो उसे लगा कि टेसू के फूलों में और इन लोथरों में कितनी समानता है !…उसने दोनों खिड़कियाँ बन्द कर दीं। एक खिड़की बन्द करते समय तो उसके हाथ इस तरह काँपने लगे कि खिड़की हाथ से छूटकर जोर की आवाज करते हुए नीचे गिरी। उस आवाज से उसे भय नहीं लगा। उसने देखा, सुधीर की नींद कच्ची हो उठी थी।

उसने पुकारा, "सुधीर, देखो तो कितना बड़ा एक्सीडेण्ट हो गया !"

"चुपचाप सो जाओ।" एक्सीडेण्ट की बात सुनकर भी सुधीर ने आँखें नहीं खोलीं और चादर सिर से ओढ़ ली।

"मुझे डर लग रहा है।" शुभा ने कहा तो उसने अपनी चादर फैलाते हुए कहा, "यहाँ आ जाओ।" और वह फिर खर्राटे भरने लगा।

तभी इंजन ने सीटी दी और गाड़ी खिसकने लगी, धीरे-धीरे खिसकते हुए उसकी समझ में आनेवाली आवाजें तेज होते ही समझ के बाहर हो गई, उसने सुधीर की चादर को देखा और उसे देखते ही उनका मन काँपने लगा, पले हुए संस्कार केंचुली की तरह छूटकर बाहर आ गए।

"शुभा, हम गरमियों में पहाड़ चलें, तुम्हारा भी मन बदल जाएगा।"

"लेकिन… !"

"लोगों की तुम परवाह करोगी तो सब मिलकर तुम्हें खा जाएँगे। फिर देखो न, बीता हुआ कल तुम्हारी आज की जिंदगी कैसे हो सकता है ! तुम्हारी परवाह किए बिना जो तुम्हें छोड़कर चला गया, उसका मिथ्या रूप तुम्हारा सहारा नहीं हो सकता… !"

"यह तो ठीक है, लेकिन…"

"यही गलती होती है, हमारे संस्कार हमें पीछे खींचकर सड़ी-गली नाली में ढकेल देना चाहते हैं।"

शुभा प्रतिवाद नहीं कर सकी थी, लेकिन उसी दिन एकांत में उसने महसूस किया था

कि पुराने मकान-मालिक के लड़के और सुधीर की बातों में बहुत ज्यादा अंतर नहीं है। उसे याद आया था कि जो कुछ उसके साथ बीता है, उसकी माँ के साथ भी बीत चुका है। तब उसने सारा अकेलापन छोड़कर अपनी सुसराल के भरे-पूरे घर में शरण ली थी। दिन-रात काम करने के बाद भी वह सारी भर्त्सनाएँ सहती रही है। उसका कहना था कि घर में चाहे जो हो, बाहर की आँखें तो उस पर नहीं उठ पाएँगी। उसके लिए घर की मजबूत बाँहें तोड़ना एकदम असम्भव है। उसने अपना सारा दुख-दर्द अपने भीतर कैद कर लिया था। राम और कृष्ण की तस्वीरों के बीच में उसने अपने मृतक पति की तस्वीर भी फ्रेम करा ली थी और तीनों की पूजा वह एक-सी भक्ति के साथ करने लगी थी।

शुभा को लगा उसकी माँ का रास्ता ही सबसे आसान और सुरक्षित है, तब… !

उसने डिब्बे में भरे हुए मन के कीड़े उड़ते हुए देखे। धीरे-धीरे वे सारे डिब्बे में फैल गए और उनसे एक बदबू-सी आने लगी। गन्दी नाली से ऐसी ही बदबू आया करती है और इसी तरह कीड़े बुदबुदाते नजर आते हैं। उसने अपना सिर पीछे टिकाकर आँखें बन्द कर लीं। गरमियों की छुट्टियाँ बिताने वह कहाँ जा रही है! वह अपना मन बदलना चाहती है, या… ! आखिर सुधीर इस तरह अचेत क्यों सो रहा है, यह जानते हुए भी कि इस डिब्बे में वे दोनों अकेले हैं और शायद वह यह भी जानता है कि शुभा को नींद नहीं आ रही। तब? घर में पीछे के दरवाजे से दबे पैर भीतर आते हुए सुधीर के चेहरे पर हँसी-खुशी की मुसकराहट क्यों तैरती रही है?

उसका दिमाग भारी हो गया। पहाड़ों पर किसी और मर्द के साथ जाकर वह क्या करेगी! उसे लगा कि निश्चिन्त सोते हुए सुधीर की देह से एक छाया उठकर उसके पास दबे पैरों से आ रही है। वह पास आती जाती है, यहाँ तक कि वह उसके तलुवों की फिसलती हुई सुरसुरी को भी अपने आपमें महसूस करने लगी है। वह सोचने लगी—यदि गाड़ी कहीं ठहर जाए तो… वह उतरकर पीछे तो भाग सकती है… ।

इस विचार के साथ ही उसके भीतर की जड़ता ने सारी चेतन इंद्रियों को दबोच लिया और वह चीख उठी। चीख के साथ ही उसने खतरे की जंजीर खींचने के लिए अपने हाथ आगे बढ़ाए, लेकिन हाथ वहाँ से फिसल गया। उसने महसूस किया कि उसकी पूरी देह कागज की तरह हिलने लगी है। उसने तुरन्त आँखें बन्द कर लीं और चादर उठाकर सुधीर की बर्थ में दुबक गई। उसने अपने एक पूरे हाथ में सुधीर की देह समेट ली और खर्राटे भरने लगी।

सतीश कैमरा थामे जैनी के फोटो ले रहा था। खजुराहो के मुख्य मन्दिर के प्राचीर में खड़ी जैनी विस्फारित नेत्रों से पत्थरों को देख रही थी।

"मैक्सी थोड़ा ऊपर उठाओ।" सतीश ने कैमरे को फोकस किया।

जैनी ने पत्थरों में अंकित युग्म जोड़ों को पीछे लौटकर देखा। औरतें मैक्सी नहीं पहने थीं। सहज मुद्रा में निर्वसन वे आलिंगनबद्ध थीं। उनके चेहरे खुशी से लबरेज और यौवन की दीप्ति से भरे हुए थे।

जैनी ने भारत आकर पूरी-पूरी हिन्दी सीख ली थी। वैसे भी स्टाकहोम में सतीश से प्रेम करने और फिर शादी करने के बाद बहुत कुछ हिन्दी जैनी वहीं सीख चुकी थी।

"कैमरे को फोकस कर लिया?" अंग्रेजी में जैनी ने पूछा।

"तुम बेकार देर कर रही हो, अभी भीड़ लग जाएगी और फोटो उतारना मुश्किल होगा। मैक्सी का बायाँ सिरा थोड़ा ऊपर उठाओ।" जैनी ने इस बार सतीश की बातों का उत्तर जोर की हँसी और खिल-खिलाहट से दिया। बोली, "इन पत्थरों ने तो मैक्सी नहीं पहन रखी, फिर… ?"

सतीश के चेहरे पर कुछ रेखाएँ उभरीं, और…एक भारतीय परिवार खजुराहो के बरामदे में से घूमता हुआ उनके पास आ पहुँचा। उन्हें देखकर परिवार के लोग खड़े हो गए। सतीश कैमरे के लैंस को घूरता रहा। उसे क्रोध आया, स्वीडन होता और मिलेस गार्डन्स में कोई यों फोटो लेता, तो मूर्खों की तरह लोग खड़े न होते। उसका मन हुआ, वह उन्हें डाँट दे, लेकिन…कैसे कह सकता है वह कि वे वहाँ से चले जाएँ!

"सतीश!" जैनी जोर से चीखी, "तुम्हें फोटो लेना है कि नहीं?"

"जरा-सा ठहर जाओ, ये लोग चले जाएँ।"

"इनके जाने या न जाने से क्या फर्क पड़ता है? मुझे ऐसा फोटो चाहिए, जिसे मैं स्वीडन जाकर अपनी दोस्तों को दिखा सकूँ और उन्हें बता सकूँ कि भारत हमारी दुनिया से आगे है।"

उसकी बात सुनकर परिवार के लोग आगे खिसक गए, लेकिन उनमें एक युवा लड़की भी थी वह आगे चलते हुए भी पीछे पलटकर देख रही थी। सतीश उसके ओझल होने की प्रतीक्षा में था। तभी जैनी ने फिर तेज आवाज दी, "फोटो खींचते हो या नहीं!"

जैनी ने पत्थर पर अंकित एक मूर्ति की तरह अपना पोज बनाया और कैमरे की क्लिक

होते ही वह सतीश से लिपट गई, "बहुत खूब, मेरी तसवीर खजुराहो की भी हो सकती है और वेनिस की भी।"

सतीश को अच्छा नहीं लगा था। उसने जैनी को छुड़ाते हुए कहा था, "तुम बहुत बेशर्म हो।" जैनी को समझ नहीं आया, यह बेशर्म होना क्या है ? उसने तीखी नजरों से सतीश को देखा था और फिर उपेक्षा से उसने रिमार्क किया था, "तुम कितने भी दिन स्वीडन में रह लो, रहोगे भारतीय ही। और भारतीय हो, तो पत्थरों में जो मैं देख रही हूँ, कहाँ से इम्पोर्ट किया है ? नानसेंस !"

सतीश के किसी उत्तर की उसने प्रतीक्षा नहीं की। अपने बालों को झटके देकर वह दूसरे मन्दिर की दहलीज पर चढ़ गई। सतीश वहाँ खड़ा रहा। वह जानता है, जैनी का गुस्सा बहुत तेज है। एक बार स्टाकहोम में जरा-सी बात पर झगड़ा हो गया था, तो आधी रात को ही वह घर से बाहर चली गई थी। एक सप्ताह उसने अकेले एक होटल में गुजारा था और जब सतीश ने ढेर-सी मिन्नतें की थीं, तभी वह लौटकर घर आई थी। आते हुए उसने साफ कहा था, उसे ऐसी बचकानी और बेहूदा बातें अच्छी नहीं लगतीं। आदमी का नैरो माइंडेड (संकीर्ण दिमाग) होना उसे कतई पसन्द नहीं है।

जैनी एक के बाद एक, तीनों मन्दिरों के बारीक खुरदरेपन को अपनी तेज निगाहों से देखती रही। सतीश कई बार उसके पीछे आया, लेकिन उसने न तो उससे कोई बात की और न फिर फोटो खिंचाने के लिए वह तैयार हुई।

दोपहर को दोनों टूरिस्ट होटल में वापस आ गए थे।

जैनी का क्रोध अब भी शांत नहीं था। दोपहर का भोजन सतीश की किसी भी बात का जवाब दिए बिना उसने उसी के साथ किया था। लेकिन वह चुप नहीं थी—खजुराहो का सौन्दर्य उसके भीतरी रेशों में शायद ऐसे समा गया था, जैसे हवा में हवा समा जाती है और हवाओं के बारीकपन का बोध नहीं रह जाता।

मिलेस गार्डन्स में पत्थरों को तराशकर बनाई गई आदमकद मूर्तियाँ जैनी को बेकार लग रही थीं। उसे विश्वास था कि खजुराहो के बेनामी कलाकारों ने जो सौन्दर्य चित्रित किया है, मिलेस जैसे महान् कलाकार के लिए भी वह सपना है। इतना ही नहीं, नार्वे में ओसलो शहर के मुख्य बाग में घूमते हुए जैनी ने सतीश के साथ ही मिथुन प्रस्तर मूर्तियाँ देखी हैं। लेकिन उनमें सौन्दर्य··· !

जैनी ने खजुराहो के इस पैनल को देखते हुए, जिसमें दो प्रेमी क्रीड़ारत हैं और पास ही एक विरहिणी प्रेम-पत्र लिखने में निमग्न है, सतीश से कहा था, "दुनिया में ऐसी कला कहीं नहीं मिल सकती।"

सतीश ने ओसलो और रोम की याद दिलाई थी, तो जैनी ने कहा था, "तुम हिन्दुस्तान के लोग हीनता से ग्रस्त हो, तुम्हारे पास जो है, कहीं नहीं है, तब भी रोम का नाम लेते नहीं

थकते।"

सतीश को अच्छा लगा था। वह यद्यपि सात-आठ वर्षों से स्वीडन में ही रह रहा है, लेकिन है तो भारतीय और अपने देश की तारीफ उसे अनजाना सुख दे गई थी।

दोपहर।

धूप सीधे सिर पर थी। होटल का कमरा ठण्डा था और एयर-कंडीशनर की आवाज़ निरन्तर घूम रही थी। सतीश के मन में योजनाएँ घूम रही थीं। कल सुबह उसे खजुराहो से वापस लौटना है और दो दिन दिल्ली रुकने के बाद वह पंजाब जाएगा। भटिंडा में···

"क्या सोच रहे हो?" जैनी ने पूछा।

"यही कि भटिंडा में चार दिन ठहरने के बाद···" सतीश अपनी बात पूरी नहीं कर पाया था कि जैनी तेजी से उठी और सतीश की ओर देखे बिना कमरे के बाहर चली गई।

सतीश परेशान।

यह परेशानी उसे कई बार झेलनी पड़ी है। वह जानता है, जैनी फिर खजुराहो के मन्दिर में पहुँचेगी और घण्टों पत्थरों में तराशे हुए प्रेमियों को घूरती रहेगी। उसने पहली ही झलक में सतीश से कहा था, "मन और आत्मा के परे यदि जिन्दगी का बेलौस फैलाव देखना है, तो इन पत्थरों को देखो। यदि मैं गजनवी की तरह तुम्हारे देश को लूटने आती, तो हीरे-जवाहरात न ले जाती, मैं क्रेन से तीनों मन्दिरों को उठवाकर स्टाकहोम के गामलास्तान में खड़ा करवा देती, तनिक वहाँ का राजमहल अपनी सम्पन्नता के बावजूद कला की गरीबी पर निरन्तर पछताता और आँसू न बहाता रहता।"

जैनी को भारत के फटेहाल लोग बहुत पसन्द आए हैं। इसलिए वह अकसर बहुत कम कपड़े पहनकर बाहर जाती है। सतीश कई बार शर्म से गड़ जाता है। वह पंजाब और दिल्ली में रहा है, उसे जाननेवाले लोग बहुत हैं। उनसे जैनी का परिचय उसे कराना पड़ता है। उसे बार-बार यह लगता है, जैसे ये सब उस पर हँसते हैं और कहते हैं, "अब विदेशी मेम के साथ शादी करने के मजे चखो। जरा भी शर्म नहीं है उसे।"

सतीश खाली कमरे में अकेले करवटें बदलता रहा। उसे याद आया, एक स्कॉलरशिप मिलने के बाद वह स्वीडन गया था। स्टाकहोम में एक होस्टल में जगह मिल गई और वह रिसर्च करने लगा। थोड़े ही दिनों में वह वहाँ लोकप्रिय हो गया। उसके मजाकिया तौर-तरीके और वहाँ के लोगों की नजरों में उसका काला चेहरा। महीने-भर में ही उसे समझ में आ गया कि लड़कियों के लिए वह एक कब्रगाह बनता जा रहा है।

यूनिवर्सिटी में उसकी गहरी पहचान सबसे पहले ग्रेटा से हुई थी। ग्रेटा ओसलो से स्कॉलरशिप लेकर समाजशास्त्र में रिसर्च करने आई थी। एक-दो बार कैफे में उसने सतीश के साथ कॉफी भी पी थी, फिर वह पब और स्ट्रिपटीज क्लबों में भी जाने लगी थी। एक सप्ताह की दौड़-धूप के बाद सतीश ग्रेटा की मुट्ठी में कैद था। यही किस्सा चलता रहता,

ग्दि ग्रेटा अपनी सहेली जैनी को यह न बताती कि भारत के लोग प्रेम के मामले में बहुत ईमानदार होते हैं। और सतीश पूरा भारतीय है।

जैनी ने उसी दिन से सतीश को घेरने के लिए जैसे एक जाल फेंकना शुरू कर दिया था। तब भी यह काम सहज नहीं था, ग्रेटा जरा भी सतीश को छोड़ने को तैयार नहीं। होस्टल से निकलते ही वह सतीश के साथ हो लेती और उसे एक पल के लिए भी न छोड़ती।

जैनी का कमरा सतीश के कमरे से तीन कमरों के बाद था। उसकी अपनी कहानी थी—वह दो बार विवाह कर चुकी थी। पहला विवाह दो महीने चला था, वह चेक युवक था और उसे जैनी के शब्दों में "अपने चेक होने का जरूरत से ज्यादा गर्व था। वह कहता था, उसके दादा हिटलर की फौज में भरती थे और हिटलर के साथ ही उसी कैंप में रहते थे।"

जैनी ने उसमें हिटलरी तानाशाही की बू देखी थी, इसलिए उससे छूटकर वह भाग निकली। एक-दो महीने वह पागलों की तरह घूमती रही। उसने होटल भी छोड़ दिया। लेकिन एक दिन अचानक पता चला कि कोलोन में जाकर एक चर्च में उसने एक जर्मन लड़के से विवाह कर लिया है। यह किसी को पता नहीं कि स्वीडन से जर्मनी वह कब, कैसे जाती थी, या वह लड़का वहाँ कब और क्यों आता था।

"तुम बेहूदे लड़के हो। मुझे रोकने वाले कौन होते हो? मैं रिसर्च कर रही हूँ, तमने यूनिवर्सिटी के पहले वर्ष में दाखिला लिया है, बच्चों की तरह रहो।" जैनी ने एक दिन विश्वविद्यालय में ही बहुत-से लोगों के सामने उसे डाँट दिया था और फिर यह हुआ कि उस शाम वह लड़का घर वापस नहीं आया। जैनी रात-भर रास्ता देखती रही। सुबह उसे पछतावा हुआ। उस पूरे दिन उसने उसकी राह देखी। वह फिर भी नहीं लौटा। तीसरे दिन उसने जाकर पुलिस में शिकायत कर दी और कोर्ट में जाकर तलाक की अर्जी दे दी।

उसके बाद जैनी लगातार अनमनी रहने लगी थी। उसने सोच लिया था कि वह शादी जैसे बेहूदे रोग को कभी नहीं पालेगी। उसे कोई पसन्द आ गया तो वह उसके साथ रहने लगेगी।

शनिवार की शाम।

ग्रेटा के लिए उससे बड़ा सूनापन जीवन में कभी नहीं मिला। सतीश को कल से बुखार और जुकाम था और वह अस्पताल में भर्ती हो गया था। परेशान ग्रेटा जैनी के कमरे में आई थी। जैनी अपने किसी दोस्त के साथ पिक्चर देखकर अभी वापस लौटी थी। जैनी के कमरे में जाते ही ग्रेटा फूट-फूटकर रोने लगी। पहले तो जैनी की समझ में कुछ नहीं आया, फिर वह सब कुछ समझकर अपने बालों को सवाँरने लगी। ग्रेटा ने कहा था कि सतीश बहुत विनम्र और दब्बू स्वभाव का है, लेकिन प्रेम के मामले में वह बहुत तेज है। दो

बार वह ग्रेटा को सड़क पर चाँटे लगा चुका है। ग्रेटा ने आँसू पोंछते हुए कहा था, "जैनी, वही तो मार सकता है न, जो प्रेम करता हो। मैं चाहती हूँ, मैं रोज बदतमीजी करूँ और सतीश मुझे रोज चाँटे मारे।" लेकिन ग्रेटा ने यह भी बताया था कि सतीश उसके व्यवहार से तंग आ गया है। इसलिए उसे देखने अस्पताल नहीं जाना चाहती। ग्रेटा को भी शिकायत थी कि वह जुकाम से पीड़ित है और वह उसके पास जाएगी, तो उसे भी जुकाम हो सकता है। रोग किसी का दोस्त नहीं होता।

जैनी के भीतर-ही-भीतर समुद्री हवाओं का एक सुखद झोंका चक्कर काटने लगा था। अपने विचारों को छिपाते हुए उसने कहा था, "तुम ठीक कहती हो, जुकाम लगने वाला रोग है, तुम्हें सतीश को देखने नहीं जाना चाहिए।"

ग्रेटा चली गई थी। कह रही थी, अब हर शाम वह ऑपेरा में बिताएगी। अथवा कैसीनो चली जाया करेगी, ताकि अकेलेपन का अहसास उसे न हो।

जैनी उसी शाम अस्पताल में पहुँच गई थी। अपने साथ वह ग्लाइडोलिया के रंग-बिरंगे फलों का एक गुच्छा ले गई थी।

"हलो, जैनी !"

"हलो, सतीश !"

जैनी फूलों का गुच्छा देते हुए सतीश के बहुत पास बैठ गई थी, तब सतीश ने रोका था, "ऐसा मत करो, जुकाम छूत की बीमारी है।" सतीश ने यह भी बताया था कि इसीलिए ग्रेटा उसे देखने नहीं आती। उसे अकेलेपन का अजनबी एहसास खाए जा रहा था। सतीश ने बताया था कि हिन्दुस्तान में बीमार आदमी की तीमारदारी बिना रोग और उसके परिणामों को देखे लोग करते हैं। उसे अपने देश की बहुत याद आ रही थी। उसने यह भी कहा था कि अच्छा होते ही वह स्कॉलरशिप छोड़ देगा और भारत लौट जाएगा।

जैनी सब कुछ चुपचाप सुनती रही थी। उसके मन में ग्रेटा से बदला लेने और प्रतिहिंसा के भाव तेजी से उमड़ उठे थे।

"सब एक जैसे नहीं होते सतीश, मैं तुम्हें अकेला नहीं रहने दूँगी।"

उसके बाद वह रोज ताजे-ताजे फूल लेकर अस्पताल जाने लगी थी। वह घण्टों सतीश के पास बैठती, उसके सिर पर हाथ फेरती और अजनबीपन का अहसास न होने देती। वहाँ से लौटकर वह ग्रेटा से मिलती थी। ग्रेटा अक्सर ऑपेरा से वापस लौटकर बेहद शराब पीकर धुत हो जाती थी और नशे में सतीश को गालियाँ भी देने लगती थी। जैनी मन-ही-मन बेहद खुश होती। सतीश ने एक बार कहा था, "चींटियों की जब मौत आती है, उनके पर निकल आते हैं।" जैनी देख रही थी, ग्रेटा के पर निकल रहे हैं। वह उसी के कमरे में आधी रात गए शराब पीती और फिर लौटकर अपने कमरे में आकर सतीश के इन्तजार में सुबह को अपनी मुट्ठी में बन्द कर लेती।

एक सिलसिला था, शुरू हुआ तो उसे खत्म भी होना था। ग्रेटा 15 दिनों के बाद जब

अस्पताल गई, तो उसे पता चला कि सतीश पाँच दिन पहले डिस्चार्ज होकर चला गया है। पाँच दिनों से जैनी उसके कमरे में नहीं आई थी। ग्रेटा उसके कमरे में पहुँची, तो एक स्लिप दरवाजे पर लगी थी, "डियर ग्रेटा, तुम्हारा उपहार मैं बहुत कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करती हूँ। वायदा करती हूँ, उसे कभी नहीं छोड़ूँगी, क्योंकि तुमने ही कहा था कि सतीश से अच्छा प्रेमी नहीं मिल सकता। हम लड़कियाँ प्रेम के लिए ही तो जीती हैं। हम दोनों ने चर्च में जाकर शादी कर ली है और वियेना जा रहे हैं हनीमून के लिए।"

ग्रेटा की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगी थीं। नीचे उतरकर उसने अपनी कार पुलिस स्टेशन की ओर मोड़ी थी, लेकिन वहाँ पहुँचते ही उसने कार की स्पीड और तेज कर दी थी और शायद क्रॉस कंट्री ड्राइव के लिए चल पड़ी थी।

जैनी का सोचना धरा रहा—मुक्त जीवन की आकांक्षाएँ तिनके की तरह उड़ गईं। सतीश उसका तीसरा पति बन गया। उसे खुशी है, एक भारतीय के साथ उसने विवाह किया है, न करती तो यह सब कहाँ देखने को मिलता। सतीश के साथ उसकी जिन्दगी सहज हो गई। स्वयं उसने अपने को बहुत बदल लिया था। वह सतीश की खासी देखभाल करती थी। बार-बार पति बदलने और उनके तेवर देखते हुए वह तंग आ गई थी। सतीश के पास भारतीय पासपोर्ट था और अब वह भाषा-विज्ञान पढ़ाने भी लगा था। उसके कोई रिश्तेदार स्वीडन में नहीं रहते थे, इसलिए जैनी के रिश्तेदार ही उसके सहभागी बनते जा रहे थे। दोनों को जुड़ना था, जुड़ गए।

सतीश जुड़ने की पहली कोमल स्मृति में खोया हुआ था, तभी थकी, परेशान और पसीने से लथपथ जैनी टूरिस्ट होटल के उस कमरे में वापस आ गई थी। आते ही सारे मनमुटाव भूल गई थी। उसने कहा था, "यूवर कंटरी इज ग्रेट। (तुम्हारा देश महान् है)"

शाम।

जैनी ने शराब के दो गिलास भरते हुए सतीश की ओर देखा। उसकी नजरों में आकांक्षाओं की एक देहरी थी। वह जैसे सतीश से कुछ माँग रही थी। वह जैसे सतीश को खुद याद दिलाना चाहती थी। सतीश समझ तो रहा था, परन्तु सही बात उसकी पकड़ के बाहर थी।

बाहर शाम मात खाए हुए पहलवान की तरह धराशायी होती हुई शर्म से दुबक गई थी और विजयी अँधेरा चारों ओर पहरा देने लगा था। आकाश में चाँद अभी निकला नहीं था—वह अँधेरी रात थी। लगभग नौ बजे सतीश को अचानक याद आया और याद आते ही उसे जैनी की आँखों की भाषा समझ में आ गई।

वह तेजी से उठा और कपड़े पहनकर बाहर जाने लगा।

"कहाँ जा रहे हो?"

"तुम्हें याद नहीं है।"

"नहीं तो···क्या ?"

"याद करो। अभी आकर बताऊँगा।"

सतीश जैनी को उलझन में छोड़कर अँधेरे में विलीन हो गया।

खजुराहो का छोटा-सा गाँव। भौंकते हुए कुत्ते और झींगुरों की सनसनाती आवाजें। चौकीदार के डंडे पटकने के कठोर स्वर। झोंपड़ियों में टिमटिमाती लालटेनें। कुछ बिजली की बत्तियाँ भी। इक्के-दुक्के लोग।

उसके लिए सब कुछ अनजाना था, तब भी वह यहाँ-वहाँ टक्करें मारता रहा और खोजता रहा। हारकर वह बड़े सरकारी होटल में पहुँचा। काउण्टर पर एक युवक खड़ा था। सतीश ने पूछा, "क्या फ्लावरिस्ट की कोई दुकान यहाँ है ?"

"जी नहीं।"

सतीश निराश हो गया। आज किसी भी तरह उसे फूल चाहिए। जैनी को फूल पसन्द हैं। अस्पताल में बीमारी के दिनों वह रोज फूल लाती थी, फिर आज···रोज दिन आएँगे, आज का दिन साल-भर बाद ही आएगा। होटल पर दृष्टि डालते हुए रिसेप्शन काउण्टर पर उसने रजनीगंधा के फूलों को फूलदान में लगे देख लिया था, लेकिन···लेकिन वे होटल के सौन्दर्य के लिए हैं। होटलवाला भला क्यों देगा ? वह सतीश की भावनाओं को कैसे समझ सकेगा !

लम्बी साँस लेकर सतीश बाहर आ गया। सड़क पर जो भी उसे मिला, उसने पूछा, "फूल कहीं मिल सकते हैं ?"

रात को और फूल···निश्चित ही वह पागल है। सतीश जानता है, यहाँ फूल तोड़ना अपराध है और किसी के बाग से फूल तोड़ने पर उसे जेल की सजा हो सकती है।

बहुत देर सतीश घूमता रहा। अन्त में चुपके से वह फिर उसी सरकारी होटल में जा पहुँचा। रिसेप्शन काउण्टर पर कोई नहीं था। उसने रजनीगंधा के सारे फूल एक साथ एक झपट्टे में उठा लिए और तेजी में भागा।

होटल के चौकीदार ने उसे केवल भागते देखा था, अपनी आदत के अनुसार वह चिल्ला पड़ा, "चोर···चोर···चोर···" आवाजें सूने अँधेरे में सनसनाती हवा-सी तैर गई और यहाँ-वहाँ से तीन-चार लोग पीछे भागे। सतीश का वे सब पीछा करने लगे। सतीश तेजी से भागता हुआ टूरिस्ट होटल के अपने कमरे में पहुँचा। उसने दरवाजा खटखटाया, परन्तु···उसे गुस्सा आया। जैनी ने दरवाजा क्यों बन्द कर लिया है ! वह तेजी से दरवाजा खटखटा रहा था। जैनी ने दरवाजा तब खोला, जब तीन-चार लोगों ने सतीश को घेर लिया था।

"क्या हुआ ?" जैनी हैरान थी।

सतीश तेजी से साँसें लेता हुआ भयाक्रांत।

उन तीन-चार लोगों में एक सिपाही भी था, "आप तो पढे-लिखे आदमी हैं।"

सतीश की नजरें झुकी थीं।

"क्या किया है इन्होंने ?" जैनी ने सिपाही से पूछा।

"शायद चोरी।"

"चोरी ?" जैनी हैरान थी।

"हाँ, यहाँ आनेवाले कई टूरिस्ट रात को मूर्तियाँ चुराते हैं। जरूर इन्होंने…"

सिपाही की बात पूरी नहीं हो पाई थी, सतीश चीखा, "नहीं…।"

उसने रजनीगंधा के फूल सिपाही की तरफ बढ़ा दिए—"हाँ, उसने चोरी की है, फूलों की चोरी। उसे हवालात जाना चाहिए।"

"फूलों की चोरी।" आवाजों का हुजूम अँधेरे के बगूले में चक्कर खाने लगा।

"धत्तेरे की !" सिपाही ने जोर से जमीन पर डंडा पीटा और सब बाहर चले गए।

सतीश ने तेजी से कमरे का दरवाजा बन्द किया। उसकी साँस अब भी नहीं सम्भल पा रही थी, "मुझे माफ कर दो जैनी, आज हमारी शादी की सालगिरह है, तुम्हारी आँखों ने मुझे बता दिया था, तुम्हारे लिए ये फू…हाँ, मैं होटल से चुराकर लाया हूँ।"

जैनी ने सतीश को अपनी देह के साथ इस तरह सटा लिया, जैसे वह उससे अलग नहीं है। सतीश की साँसें अब भी तेज थीं और जैनी सिसक-सिसककर रो रही थी।

सरसों-सी फूली और उजली दुपहरी ढलकर स्याह पड़ गई थी। मंगरू काँधे पर हल रखे और हाथों में बैलों की डोर थामे गाँव के गेंवड़े की ओर बढ़ा आ रहा था। फुलिया हाथ में गुलेल लिए आँगन में खड़ी थी। कभी वह खाली गुलेल चारों ओर हिलाती, तो कभी उसमें पत्थर लगाकर बाँसों के झुरमुट में दे मारती। संध्या की हवा जैसे बाँसों के झुरमुट में छिपी गीत गा रही थी। फुलिया का पत्थर उसमें वेदना भर देता और सारा झुरमुट एकदम कराह उठता। पर इस कराह की फुलिया को चिन्ता कहाँ? वह एक नादान बच्चे की भाँति गुलेल और पत्थर के साथ खेल रही थी। अभी उसके दिन खेलने ही के तो थे। उमर कोई सोलह वर्ष से अधिक नहीं होगी। धुएँ की हलकी परत की तरह साँवले, गठे और ठिगने बदन में बच्चों जैसी अल्हड़ता और चपलता भरी थी। घुटने तक वह धोती पहने थी। सीने पर ओढ़नी का बचा छोटा-सा छोर पड़ा था, जिसमें से एक स्तन तो एकदम खुला और दूसरा आधा ढँका था। किन्तु इस खुले और ढँके का भेद फुलिया क्या जाने? यह भेदभाव तो किसी शहर की लड़की में ही देखने को मिलता है। गाँव की खुली हवा में पली फुलिया तन-मन दोनों से साफ थी।

वह आँगन में खड़ी गुलेल के साथ खेलती रही। पक्षियों के झुंड-के-झुंड आए, उसके सिर से उड़कर चले गए, पर उसका खेल खतम नहीं हुआ। उसे यह भी पता नहीं कि मंगरू ने बैलों की डोर छोड़ दी है। और वह काँधे पर हल रखे गेंवड़े के पास पगडण्डी पर खड़ा उसे घूर रहा है। मंगरू आत्मविस्मृत था। खिरका पहिले ही निकल चुका था। चरवाहों की भीड़ भी पीछे से निकल गई, पर वह खड़ा रहा। अबकी बार फुलिया ने फिर गुलेल में पत्थर रखकर बाँस के झुरमुट का निशाना लगाया, पर वह मंगरू के माथे से जा टकराया। मंगरू का तन-मन काँप गया और मुँह से एक हलकी चीख निकल गई।

इस चीख ने फुलिया का खेल भंग कर दिया। उसका मुँह खुला और थोड़ी देर खुला रहा। अंगों में जाड़े जैसी सिरहन उठी, पर वह अपनी जगह से नहीं हटी। मंगरू ने कपाल पर हाथ फेरा और हथेली को जोर से चूम लिया।

"क्यों रे, यहाँ खड़ा-खड़ा क्या देख रहा है?"—फुलिया को इस चुम्बन से जैसे जलन हुई।

"वाह री बुलबुल, सड़क पर बैठकर आँख दिखाना इसी को कहते हैं। पत्थर मार दिया मेरे माथे पर—कहीं भाग फूट जाते तो।"

"तेरे भाग और क्या फूटते रे मंगरू, वैसे ही फूटे हैं। दिन-रात पतग की तरह मेरे चक्कर काटा करता है। गाँववालों को खबर लग जाएगी तो किरकिरी मेरी होगी। तुझे क्या है, लोग कहेंगे··· ।"

"कि फुलिया मंगरू से आँख लड़ा रही है—यही न ?"—उसके मुँह के शब्द छीनकर मंगरू ने पूरे कर दिए—"पर इसमें डर काहे का है ? सब जानते हैं कि तेरी-मेरी लगी है।"

मंगरू ने कन्धे से हल नीचे उतार दिया और दो कदम आगे आकर खड़ा हो गया—"तू मेरे दिल का दर्द क्या जाने फुलिया। मैंने सुना है कि औरतें बड़े नरम दिल की होती हैं—तू कैसी औरत है री।"

"देख रे मँगरू, दिल और दर्द का किस्सा किसी और को जाकर सुना। तूने सुनी होगी औरत के नरम दिलवाली बात, पर अब मैं दिखाए देती हूँ कि औरत का दिल पत्थर होता है। तू जाता है यहाँ से, या नहीं।"—फुलिया ने आगे बढ़कर दाँत जो पीसे तो मंगरू दो कदम पीछे हट गया।

"काहे को आँखें तरेरती है, छोकरी ! तू खाद पड़े खेत में पके गेहूँ की बाल है, फुलिया। न जाने किस दिन कहाँ से हवा का झोंका आए और तुझे उड़ाकर ले जाए। तू तो जानती है, मेरे बाप की बहिन की मझली लड़की तेरे भाई के साथ ब्याही है। तू सीधे-सीधे मुझसे ब्याह करने की हामी भर दे, वरना पंचायत भराऊँगा और दूध लौटाने[1] की बात करूँगा। दो बरस तेरे घर रहकर घास थोड़े ही छीली है। जाने उस कलूटे चैतू में क्या धरा है जो तू उस पर मरी जाती है।"

अबकी बार फुलिया अपने गुस्से को नहीं सम्हाल सकी। उसने एक बड़ा पत्थर उठाया और बोली—"भागता है कि मारूँ ? हरामखोर, तू कहाँ का दूध का धुला आ गया है।" फुलिया मनमानी गालियाँ देती रही।

मँगरू दाँत पीसता वहाँ से चला गया—"देखूँगी, आखिर घोटुल[2] छोड़कर जाएगी कहाँ ?"

आधी रात को फुलिया की नींद खुली। उसने बाहर एक हलकी-सी थपथपाहट सुनी जैसे किसी ने दरवाजा खटखटाया हो। उसने उठकर दरवाजा खोला तो चैतू आँगन में खड़ा था। रात अँधेरी थी, आसमान की छाती पर अनगिनत तारे चमक रहे थे और सामने झुरमुट के आसपास चमगादड़ों के झुण्ड-के-झुण्ड चक्कर काट रहे थे।

---

1 भारत के अनेक आदिवासियों में यह प्रथा है कि यदि एक परिवार की लड़की दूसरे परिवार को दी गई है, तो उस परिवार को अधिकार है कि वह दूसरे परिवार की किसी लड़की से शादी कर ले—मरजी से नहीं तो जबरन ही, इस प्रथा को "दूध लौटाना" कहते हैं।

2. घोटुल—(दुमकुरिया) कुमार-गृह, जहाँ गाँव के कुमार युवक और युवतियाँ रात में विश्राम करते हैं। बस्तर, बिहार और उड़ीसा के गोड़ों में घोटुल में सोने का आम रिवाज है।

"इत्ती रात को ?"—फुलिया ने चैतू का हाथ थामा और उससे लिपट कर खड़ी हो गई।

"हाँ फुलिया, चैन नहीं पड़ा तो चला आया अपनी गोरी से मिलने।"

फुलिया शरमा गई। बोली—"ऐसी रात को भी कोई बाहर निकलता है ? तू जानता है न, चैतू, कल नाले के पास बाघ पटेल के लड़के को उठा ले गया था ?"

"मुझे भी उठा ले जाता तो कितना अच्छा रहता फुलिया।"

फुलिया ने अपनी हथेली चैतू के मुँह पर रख दी—"ऐसा मत कह, तुझे बाघ ले गया तो मेरा क्या होगा ?"

"तू तो मंगरू के साथ जाएगी।"

"क्या कहा, मंगरू के साथ ? उस कलमुँहे का नाम न ले चैतू। आज संझा को आया था। बड़ी देर खड़ा-खड़ा मुझे घूरता रहा। कहता था, मेरे साथ ब्याह कर ले, दईमारा कहीं का।"

"ठीक तो कहता था फुलिया। तू उसकी धरोहर जो ठहरी। मेरे यहाँ भी आया था वह, और पंचायत भराने की धमकी देता था। कहता था फुलिया का ख्याल छोड़ दे नहीं तो···।"

"नहीं तो क्या ?"···फुलिया ने व्यग्रता से पूछा।

"कहता था पंचायत भराऊँगा और दूध लौटाने की बात तेरे बाप से करूँगा। फिर वह तेरे यहाँ लमसेना भी तो रहा है। कहता था, दो बरस तक छाती फाड़कर दिन-रात काम किया है और बाद में एक दिन तेरे बाप ने डंडा मारकर उसे निकाल दिया।"

"निकाल न देता तो क्या उसका अचार बनाकर रखता ? हरामजादा, बाजार गया तो बैलों की जोड़ी बेच आया। मैंने कहा था, मेरे लिए एक धोती और कण्ठी ले आना, तो कुछ लाना-वाना तो दूर रहा, शराब पीकर लौटा और लगा मुझे मारने, जैसे मैं उसकी रखैल होऊँ। मेरा खाता था और मुझे ही मारता था। जब अपनी कमाई खिलाएगा तब तो शायद मेरे शरीर के ही टुकड़े-टुकड़े कर डाले।" फुलिया ने अपनी दाईं मुट्ठी बाएँ हाथ की हथेली से दबाकर दाँत पीसे—"नास हो जाए कलमुँहे का। मैं तो उसकी सूरत भी नहीं देखना चाहती।"

"नहीं फुलिया, गाँव के पंच उसका साथ देंगे। दो साल काम लेकर निकाल देना सहज नहीं है।"

"सहज क्यों नहीं है ? देखा नहीं, पटेल ने चार बरस के लमसेना को लोहे की गरम-गरम सलाखों से पिटवाकर निकाल दिया।"

"उसकी बात छोड़ फुलिया। हम गरीब आदमी हैं। पटेल जैसे समरथ होते तो···।"

"तो क्या तू भी उसकी धमकी में आ गया। दिल तो गरीब-अमीर का एक-सा होता है न ? भरोसा न हो तो एक दिन मेरे साथ चल—छोटे पटेल का दिल तुझे दिखाऊँगी। वह मुझे बहिन जो मानता है।"

"तू भी पागल जैसी बातें करती है। हम दिल देखने चलेंगे?"

"तुझे भरोसा तो हो किसी तरह।"

"भरोसा क्या करूँ। एक दिन कह रहा था कि पंचों ने भी यदि ठीक फैसला नहीं दिया तो नाले के किनारे मुझे और तेरे बाप को जिन्दा गड़वा देगा।"

फुलिया ने कान में हाथ लगा लिए—"ऐसा मत कह चैतू। तू भी तो पिछले साल शेर से लड़ा था, और हाँ, कितना भारी सुअर था वह जिसे तूने अभी-अभी जंगल में पछाड़ दिया। अपनी भुजाओं पर भरोसा रख और यदि तुझे ऐसा ही डर है तो घोटुल का मुंशी कहाँ गया है। कल हम उससे कह देंगे कि हम ब्याह करना चाहते हैं। बस, फिर क्या है, हमारा ब्याह हो जाएगा।"

"कल मत कहियो फुलिया। मैं तो अपनी काकी के यहाँ जाने का बहाना बनाकर आज रात घोटुल नहीं गया।"

उसकी बात पर फुलिया ने कोई आश्चर्य नहीं दिखाया, बोली—"सो तो मुझे पता था इसी से मैं भी घोटुल नहीं गई, वहाँ मंगरू जो मिलता—पर मेरा करता क्या?" उसने भूखी शेरनी की तरह अपने दाँत पीसे जैसे मंगरू को सामने पा ले तो कच्चा खा जाए।

"अच्छा फुलिया, तो मैं अब जाता हूँ। भुनसारा होने आया है, सीधे खेत चला जाऊँगा।"

फुलिया ने उसे रोका—"अभी तो अँधेरा है चैतू।"

"नहीं फुलिया, नाले में मुँह-हाथ धोते तक उजाला हो जाएगा।"

चैतू चला गया और फुलिया लौटकर खटिया पर लेट गई, पर उसे नींद नहीं आई। उसे वह दिन याद आ गया जब दादर गाँव के मालगुजार का खेत काटने वह गई थी।

बरस-भर पहिले की बात है। मंगरू तब उसके यहाँ लमसेना था। वह उस पर मरा जाता था। शुरू-शुरू में फुलिया ने भी उसकी खूब आवभगत की। दोनों में बड़ा प्रेम रहा, पर एक दिन बाजार से लौटकर जब उसने फुलिया को मारा तो फुलिया का मन फटे दूध जैसा हो गया। अब फुलिया मंगरू को देखते ही नाक-भौंह सिकोड़ने लगी। मंगरू उसे लगातार मनाता रहा, पर फुलिया न मानी। इस बार खेत काटने जब वह दादर गाँव गई तो साथ में मंगरू को नहीं ले गई।

गंगासागर बाँध गेहूँ की पकी बालियों से लदा था। हवा का झोंका जब उस भारी बाँध से गुजरता तो समुद्र की तरह सारे खेत में एक लहर-सी उठ जाती और लगता जैसे किसी ने सोने की चादर हिला दी हो। तब फुलिया का कलेजा कसक उठता था। उसकी हिरन की तरह खेलती-खाती जिन्दगी जैसे कराह उठती थी। वह खेत के चारों ओर नजर डालती। झुण्ड-के-झुण्ड औरत और मर्द उसे दिखाई देते, पर आँखों की प्यास न बुझती।

एक दिन चैत की धूप उस सोने के खेत में अचेत पड़ी सो रही थी और हँसिए की पैनी

धार गेहूँ के पौधों को जमीन पर सुला रही थी। फुलिया भी एक हाथ से पौधों को थामती और दूसरे हाथ का हँसिया किसी कसाई की तरह उन पौधों पर चला देती। गीतों की धुन से सारा खेत गूँज रहा था। एक गीत खतम होता तो कोई खड़ा होकर दूसरा शुरू कर देता, इसलिए कि गीत उनकी जिन्दगी है और धूप तथा मेहनत से उन्हें बचाता है। फुलिया के मन में भी उमंग उठी। हँसिया हाथ में लेकर वह खड़ी हो गई। पुरवाई के झोंकों से उसका आँचल डोल उठा। उसके हृदय के तार जैसे किसी ने छेड़ दिए। वह लचक-लचक कर करमा की धुन में गा उठी

ओ हो! हाय रे हाय,
मोला पयरी के साध,
लय दे, हीरा रुनझुन बाजै रे।

गीतों को सारे साथियों ने दुहराया। इसी बीच मेंड पर खेत काटते एक युवक पर फुलिया की नजर पड़ी। वह पसीने से लथपथ था और जब सब लोग मस्ती से गीत गा रहे थे तो वह चुपचाप फसल काटने में लगा था। फुलिया के उमंग भरे मन ने यह सहन नहीं किया। उसे लगा, जैसे यह युवक उसके गीत के साथ विद्रोह कर रहा है। उसने मिट्टी का ढेला उठाकर उसकी ओर फेंका और फिर अपनी कमर पर लचक देकर हवा के साथ झूलती हुई आगे गाने लगी। अब की बार उस किसान युवक का मन भी डावाँडोल हो गया। भर्राई-सी आवाज में उसने भी उत्तर के स्वर छेड़ दिए :

पयरी के तोरा साध गोरी,
हीरा मोर रुनझुन बाजै रे।

गीत सुनकर फुलिया का तन-मन सूरजमुखी की तरह खिल उठा और इसी खुशी में उसने करमा की कई धुनें छेड़ीं, जिनका उस युवक ने बराबर जवाब दिया। यह रफ्तार चलती ही रहती यदि फुलिया मालिक के लड़के को आते न देखती। उसे आते देखकर वह बैठ गई और फिर तेजी से फसल काटने लगी, पर मन उसका उस बाँके युवक ने हर लिया था। बार-बार वह उस पर नजर डालती और वह युवक भी नीची नजरों से उसे घूरता रहा।

फुलिया ने फसल काटने की दिशा बदल दी और उसकी ओर बढ़ी। जब वे दोनों काफी पास आ गए और फुलिया ने बड़ी चपलता से पूछा—"तुझे तो खूब करमा आते हैं रे?"

"क्यों नहीं! तेरी सूरत देखकर कौन न गा उठेगा!"

"सच,"—फुलिया खरगोश के बच्चे की तरह उचकी—"मेरी सूरत पसन्द है न?"

उत्तर में मुँह बनाकर चैतू ऐसा हँसा कि उसकी हंसी फुलिया के कलेजे में तीर की तरह जा चुभी। वह एक हाथ आगे सरककर बोला—"तेरा नाम?"

"फुलिया, और तेरा?"

"चैतू"—वह बोला।

"इसी चैत में हुआ था ?"

चैतू ने उसकी शरारत भाँप ली—"हाँ, अभी घंटे भर पहिले। कहाँ रहती है ?"

"कोटरवाही, और तू ?"

"कोटरवाही, वहीं तो मैं भी रहता हूँ। किसकी लड़की है ?"

"नरसू मेरा बाप है। तू कभी घोटुल नहीं आता ?" फिर फुलिया ने चुटकी ली। "हाँ, समझी—मिहरिया होगी घर में। मारती है कभी-कभी ?"

चैतू ने उसके जूड़े को पकड़कर घुमा दिया। फुलिया काँप, उठी।

"देखा नहीं, अभी मिट्टी का ढेला उठाकर मारा था उस चुलबुल मिहरिया ने।"

फुलिया के साँवले गाल शरम के मारे गेहूँ जैसे लाल हो गए। शरारत भरी आँखें नीचे झुक गईं—"देख लेगी तो सिर के बाल न बचेंगे। पराई लड़की से आँखें लड़ाता है।"

"देख लेने दे—तेरी बला से।" चैतू ने कहा।

फुलिया थोड़ा पास सरकी—"सच बता रे, चैतू, मिहरिया है ?"

"कहा तो—हाँ है। अभी मिट्टी का ढेला मार रही थी। शायद वह नहीं जानती कि चैतू भी पत्थर है।"

"चैत का पत्थर किस काम का, जिस पर पैर रखो तो जल जाए। उसे तो पानी चाहिए, चैतू।"

"पर पानी देनेवाली हो तब न।"

चैतू की इस बात से फुलिया का रास्ता जैसे साफ हो गया।

"समझी।" उसे जैसे किसी पहेली का सही हल मिल गया—"पर तू घोटुल क्यों नहीं आता ? लमसेना है कहीं ?"

"मुझ गरीब को कौन लमसेना रखेगा, फुलिया—"चैतू ने लम्बी साँस ली। "बाप तो छोटे में परलोक सिधार गया, माँ अपने रखैल के साथ रहती है। अकेला हूँ घर में। सब काम-धाम अकेले करना पड़ता है। घोटुल आने की फुरसत ही नहीं मिलती। पर मुंशी के रजिस्टर में नाम लिखा है मेरा।"

"सच ? तो मैं तुझे फुरसत दूँगी। रोज घोटुल आया कर।"

फुलिया और चैतू का यह प्रथम परिचय क्रमशः खूब बढ़ा और फिर यह हालत हुई कि फुलिया अपने लमसेना मंगरू के लिए नागिन बन गई। अपने बाप से उलटी-सीधी चुगली खाकर वह दिन में दो-एक बार उसे पिटवा दिया करती, पर मंगरू ने फुलिया का पीछा नहीं छोड़ा।

शाम को गले में घुँघची की माला, चाँदी के सिक्कों का हार, हाथ में लाल-पीली चूड़ियाँ, रंग-बिरंगी लाखें तथा चाँदी के चूरा और पैर में गिलट की पायल डाले और कौड़ियों के गुच्छों से सजी हवा में नागिन की तरह झूलती बेनी लटकाए फुलिया घोटुल की ओर इस चाल से चली कि जो उसे देखे उसीके मन में साँप लोट जाए।

घोटुल में उसका आज आखिरी दिन था। वह अपने मंगेतर को चुनेगी और फिर कल से घोटुल का प्रवेशद्वार उसके लिए सदा को बन्द हो जाएगा। पयरी की उसकी साध पूरी होगी। यह एक ऐसा दिन होता है जो कुमारी के जीवन का इतिहास बदल देता है, उसकी ज़िन्दगी की गाड़ी में बैल लग जाते हैं, तब उसकी चाल बढ़ जाती है।

घोटुल में सखियों ने फुलिया का दिल खोलकर स्वागत किया। छैल-छबीले और बने-ठने नवजवान लड़कों ने भी फुलिया के हाथ चूमे। घोटुल के मुंशी ने उसको आशीर्वाद दिया और फिर सब लोग आग की धूनी को घेरकर बैठ गए। फुलिया ने देखा, चैतू एक कोने में बैठा हँस रहा है। वह खुशी से फूल गई।

मुंशी की मरजी के अनुसार पहले एक-दो करमा की धुनें हुईं और फिर सारी सखियों ने मोटियारी (घोटुल की वह युवती जो वर चुनने के लिए शृंगार करके आती है) के बालों में लकड़ी की कंघियाँ खोंसीं। जब यह सब चल रहा था तो मंगरू भी वहाँ आ धमका और धूनी के पास बैठ गया। मंगरू को देखकर मोटियारी का कलेजा काँपा, चैतू भी घबराया पर किसी ने कुछ पता नहीं लगने दिया।

अन्त में आशा और उमंग से हाथ में कौड़ियों की माला लिए फुलिया उठकर खड़ी हो गई। सारे चेलिकों (घोटुल के कुमार सदस्य) के मन में जैसे काँटा गड़ने लगा। वह सब को तम्बाकू बाँटेगी, और जिसे तम्बाकू नहीं देगी वही उसका मँगेतर समझा जाएगा। इसी से सारे चेलिकों की आँखें फुलिया पर गड़ी थीं। मँगरू को भरोसा था कि फुलिया उसके साथ चाहे जैसा व्यवहार करे, पर फिदा वह उसी पर है। उसी को वह माला पहनाएगी। उसने अपने सारे मित्रों को दावत दे रखी थी। जो थोड़ा-सा संशय उसके मन में था, उसकी दवा भी मंगरू कर चुका था। आखिर दो साल फुलिया के साथ उसने काटे हैं, वह सहज ही उसे कैसे छोड़ देता। उसने गाँव की पंचायत के पंचों से भी बात-चीत कर ली थी।

फुलिया ने तम्बाकू बाँटना शुरू किया। सब को तम्बाकू बाँटते-बाँटते जब वह मंगरू को भी देने लगी तो उसकी सुषुप्त हिंसा जाग उठी। क्रोध से वह तमतमा उठा। उसने फुलिया का हाथ पकड़कर सारी तम्बाकू छीनकर फेंक दी।

घोटुल में हंगामा मच गया। मुंशी ने फुलिया और मंगरू को अलग-अलग किया और कहा, "भाई इसमें झगड़े की क्या बात है। वह चैतू को चाहती है तो तू क्यों बीच में आता है।"

मंगरू लाल-पीला हो रहा था, "यह नहीं हो सकता। मैंने पंचायत बुलाई है, फैसला पंचायत करेगी।" बहुत चें-चें हुई पर मंगरू अपने साथ पलटन जो लाया था—फुलिया चैतू को माला न पहना सकी और मुंशी ने पंच-फैसला होने तक समारोह स्थगित कर दिया।

गाँववालों के लिए पंच परमेश्वर होते हैं। उनका न्याय भला-बुरा चाहे जैसा हो, सभी को सिर-माथे चढ़ाना पड़ता है। इसीलिए आज फुलिया, चैतू और मंगरू आँख लगाए पंचों

की ओर देख रहे थे। पंचों ने फुलिया के बयान सुने और फिर मंगरू की बारी आई। मंगरू ने पहले दूध लौटाने की बात कहकर अपना रौब गालिब किया, पर फुलिया के बाप ने इस हक को स्वीकार नहीं किया। तब मंगरू ने लमसेना की बात उठाई। दो साल लमसेना रखने का हरजाना माँगा। फुलिया, उसके बाप नरसू और चैतू सभी ने अपनी सफाई पेश की।

फुलिया का बाप दुविधा में पड़ गया था। उसके सामने विकट उलझन थी। मंगरू उसके यहाँ दो साल लमसेना रहा, पर दो सालों में दोनों के बीच खाई पड़ चुकी थी। मंगरू ने उसका बड़ा नुकसान किया था और अपने चरित्र से उसका मन खट्टा कर दिया था। नरसू अपनी इकलौती बेटी की मरजी को भी नजरअंदाज नहीं करना चाहता था। चैतू गरीब परिवार का सीधा-सादा मेहनती युवक था। फुलिया और चैतू प्यार के धागे में बँध चुके थे।

समस्या यहीं खतम नहीं हो जाती। यदि मंगरू को उसने फुलिया नहीं दी तो उसे हरजाना देना पड़ेगा और हरजाना भी पंच न जाने कितना लगाएँ। उतना पैसा देने की सामर्थ्य उसमें होगी ? क्या चैतू हरजाना दे सकेगा ?

अन्त में जिसकी आशंका थी हुआ भी वही। पंच-फैसला सुनाया गया। पंचों ने राय दी कि फुलिया चैतू से ब्याह कर सकती है, पर फुलिया के बाप को मंगरू के लमसेना रहने का हरजाना देना पड़ेगा और दूध लौटाने की या तो कीमत चुकानी पड़ेगी अथवा किसी दूसरी लड़की का ब्याह मंगरू से या उसके किसी भाई से करना पड़ेगा।

यह फैसला फुलिया के बाप के लिए बड़ा कड़ा था। फुलिया उसकी इकलौती बेटी थी, और कोई लड़की होती तो नरसू वह भी कर देता। पंचों ने लमसेना की कीमत दस रुपए महीने के हिसाब से दो सौ चालीस आँकी थी। दूध न लौटाने की स्थिति में उसे जातवालों को भोज देने और बड़ा महादेव का पूजा का विधान बताया था। उसका सिर चक्कर खाने लगा।

फुलिया की आँखें जैसे पथरा गई थीं। वह एकटक चैतू को देख रही थी। वह सोचती, पंचों को क्या अधिकार है कि वे उसका प्रेमी छीनें ? पर कहने की सामर्थ्य उसमें नहीं थी। शायद वह जानती थी कि कहने से क्या होगा, समाज की अंध-मान्यताओं में सारा गाँव जकड़ा है। फिर उसमें अकेले विद्रोह करने की शक्ति ही कहाँ है। सच तो यह है कि विद्रोह की भावना न तो फुलिया के मन में और न चैतू के ही मन में थी। युगों से चले आ रहे बंधनों में जकड़े हुए ये भोले-भाले युवा हृदय भला विद्रोह क्या जानें। वे सिर्फ पंचों को ईश्वर जानते थे और उनकी व्यवस्था को ईश्वर का न्याय मानते थे। इस न्याय को पलटने की हिम्मत वे नहीं कर सकते थे।

फुलिया घबरा रही थी—उसका चैतू आज उससे छिन रहा था। बीते जमाने की स्मृतियाँ उसकी आँखों के सामने नाच रही थीं। चैतू सिर नीचा किए चुपचाप बैठा था। वह

सोच रहा था कि क्या करे ? इतना रुपया कहाँ से लाए ? घर-द्वार होता तो शायद वह उसे भी बेच देता, पर एक टूटी-सी झोंपड़ी का मोल पचास रुपए से अधिक क्या होगा। और मंगरू ? वह विजेता की तरह सीना ताने हँस रहा था। उसकी आँखें उस शिकारी की भाँति चमक रही थीं जिसके हाथ मनचाहा शिकार लग गया हो। उसे विश्वास था कि पंच-फैसले की पर्ति करना उनके लिए असम्भव है।

नरसू ने अपनी हताश दृष्टि चैतू पर डाली, तो चैतू की आँखों में आँसू आ गए। वह वहाँ से उठकर चला गया। फुलिया फफक-फफककर रो पड़ी।

तभी घोटुल के मुंशी ने घोषणा की कि शाम को फुलिया और मंगरू का घोटुल से सम्बन्ध विच्छेद होने की खुशी में एक भारी समारोह होगा।

भूचाल

आ[illegible]

एक लम्बी साँस लेकर उसने चारों ओर नजर दौड़ाई—भीड़ का अन्त नहीं। प्लेटफार्म ठसाठस भरा है—तिलचट्टे-सी भीड़ ! इतने आदमी कहाँ से इकट्ठे हो जाते हैं और ताज्जुब तो यह है कि इसके बाद भी कहीं की आबादी कम नहीं होती। वह सामने का पुल ! उसने फिर लम्बी साँस ली। दिन-रात रेला-सा बहा रहता है। बेचारा पुल कितना सहता है, सब कुछ। वह रात के बारह बजे भी यहाँ आया है, तब भी यही भीड़—लाल चींटियों की वह सीधी रेखा—अछोर, अथाह ! कहाँ जाते हैं ये सब ? कहाँ से आते हैं ? आखिर क्यों ? क्यों यह भीड़ नहीं छँटती ? उसने कभी पुल को सूना नहीं देखा। आदमी की साँस की तरह वह चलता ही रहा है, चलता ही जाता है…और यह प्लेटफार्म !… अंधेर है, अब तो खड़े होने की जगह नहीं ! तीन गाड़ियाँ कैंसिल हो चुकीं। चौथी 'एक्सपेक्टेड' है—पन्द्रह मिनट लेट ! और यहाँ तो हर सेकंड भीड़ बढ़ती ही जा रही है।

उसने सामने लगी घड़ी देखी—आठ बजकर इक्यावन मिनट। गाड़ी आने में अभी तीन मिनट की देर है…तीन मिनट ! क्या होगा इन तीन मिनटों में ! उसे लगा जैसे इन तीन मिनटों में ही प्रलय हो जाएगा। यहाँ इतनी भीड़ जमा हो जाएगी कि प्लेटफार्म की नींव धँसने लगेगी, धीरे-धीरे वह धँसेगी, धँसती जाएगी और एक समय ऐसा भी आएगा कि वे सब जमीन के अन्दर होंगे। उसे विश्वास-सा होता जा रहा है कि गाड़ी उसी समय आएगी, जब प्लेटफार्म धँस चुका होगा। तब… ? तब वह क्या करेगा ? जिन्दगी में पहला दिन मिला है। वह भी क्या यूँ ही चला जाएगा ? ऐसे क्षण आते कब हैं ? ऐसे ही कुछ क्षणों के लिए तो वह जीता है, वरना जीने की चाह उसे कब रही है ? पर मरना भी यदि यूँ ही आसान होता तो ?…तो आज का दिन वह न देख पाता। उस दिन आधी रात को वह घर से निकला था। रेल की पटरी पर कूद जाने का उसने पक्का इरादा कर लिया था। बस, पौन बजे की आखिरी लोकल आएगी। वह आँख बन्द कर पूरी हिम्मत के साथ सब कुछ भूल जाएगा और सामने कूद जाएगा। ऐसी जिन्दगी जीने से फायदा क्या है ?…पर, स्टेशन तक वह आया था कि उसका एक मित्र प्लेटफार्म पर मिल गया। उसने बचने की कोशिश की, पर नहीं बच सका। कन्धे पर हाथ रखते हुए बोला, "रात की पाली है क्या ?"

"नहीं।" अंनजाने उसके मुँह से निकल गया। वह तुरन्त पछताया। बेहद पछताया। हाँ, कह देता तो छुट्टी न मिल जाती उससे। पर झूठ बोलना भी कितना भारी पड़ता है ?

अपनी सारी इन्द्रियों को एक जगह जमाना पड़ता है। झूठ बोलने के साधन ढूँढने होते हैं—वकील और जज दोनों का रोल एक साथ अदा करना होता है। तभी झूठ बोला जाता है। अनजाने कभी झूठ नहीं बोला गया। उसने पहली बार जाना कि दुनिया में सच्चाई का जोर कितना है—जैसे घटाटोप अँधेरा है और उस अँधेरे में शीशे का नन्हा-सा टुकड़ा दूर से चमकता है। वह सहम गया। उसके साथी ने हाथ पकड़कर पूछा, "फिर इतनी रात ?"

वह चुप रहा तो साथी ठहाका मारकर हँस पड़ा, "मुसीबत है भई, हम गरीबों को कहीं चैन नहीं। दिन-भर काम करते मर जाते हैं। रात को घरवाली खाने दौड़ती है।…"

"नहीं दोस्त, यह बात नहीं है।"

"तो… ?"

"कुछ नहीं, यूँ ही खाना खाकर घूमने चला आया।" उसकी यह लचर दलील र… झमें कम आई।

हलके-से मुसकराकर उसने कहा, "चलो, अच्छा है, तुम्हारी बात ही रही हो। पर भई, तुम्हारी जगह हम होते तो भी यही करते। जब वह सो जाती है, तभी घर में चैन रहता है, वरना एक-एक दमड़ी का हिसाब लेती है और कहीं घाटा हुआ तो खैर नहीं। ब्याह बाप-दादे कर जाते हैं और यह भूल जाते हैं कि जिसे वे बड़े लाड़-दुलार से ला रहे हैं, वही सबसे पहले उनके पुरखों को तारेगी।"

बात कड़वी थी। ऐसी बात सुनने के लिए उसका मन तैयार नहीं था। लिहाजा अपनी इज्जत रखने के लिए वह वापस घर लौट पड़ा था। घर के पास आकर उसने कहा था, "चलो दोस्त, तुम्हें चाय पिलाऊँ। आज वह बेहद खुश है।" दोस्त ने चाय नहीं पी। सबेरे से वह घर से निकला था। वह चला गया और उसे भी मन मारकर घर वापस लौटना पड़ा था। एक नई जिन्दगी उस दिन उसे मिली और तब उसने समझा कि इस दुनिया में यदि सबसे कठिन कोई काम है तो वह है…मरना। और आज…उसे लगा, यह मरना उस दिन जितना कठिन था, आज उतना ही आसान है। इसे कोई रोक नहीं सकता। आखिर इतनी भीड़ का वजन जरा-सा प्लेटफार्म कब तक सम्हालेगा ? कहते हैं, एक नाग के फन पर सारी धरती टिकी है। वह जरा-सा फन हिलाता है कि बस, भूचाल और अब यहाँ भूचाल आने में देर नहीं है।

प्लेटफार्म नम्बर आठ पर गाड़ी आ गई—हारबर ब्राँच। उसकी आँखें अचानक चमक उठीं; बस, अब चार नम्बर पर भी गाड़ी आने में देर नहीं है। सामने आठ नम्बर के प्लेटफार्म से एक भारी भीड़ उठी, पुल पर से गुजरी और बहुत-सी भीड़ चार नम्बर पर उतर आई। प्लेटफार्म और भर गया। एड़ियों पर वजन देकर उसने गर्दन ऊपर की और अपनी बाईं ओर देखना चाहा। वह चाहता है कि गाड़ी की बस एक हलकी-सी झलक देखने को मिल जाए। वह भी नहीं देख सका। दूर-दूर तक सूखे-नंगे सिर !

उसने अपनी बगल में देखा, चार लड़कियाँ खड़ी थीं—सलवार पहने। लाल, पीली,

हरी और नीली—कितनी भली हैं ये सब सलवारें ! पूरी तरह चुस्त और देह के हर अंग को उभारती हुई, जैसे उन्हें पहनकर ही पैदा हुई हैं। सलवारों पर जाले-सा झीना सफेद दुपट्टा और उसके नीचे से झाँकते बेझिझक कन्धे। उसी तरह बेझिझक निगाहें और वैसी ही बेझिझक बातें। जरा-सा हटकर उनके पास आ गया। उसने देखा, वह बीच की लड़की··· ! अरे, उसने तो हरी सैण्डिलें भी पहन रखी हैं। नाखून में हरी पालिश है। आँख भर उसने देखना चाहा। उसका लॉकिट भी हरा है। खिले-गोरे रंग में यह सब कितना अच्छा फबता है ! उसकी नजर फिसलने लगी। वह अपने को भूलने लगा और तभी सामने का पानी हलका-सा तिर गया। नए रूप-रंग खिलने लगे—हैण्डलूम की मोटी लाँगदार लाल साड़ी और चीकुए रंग का छींटदार ब्लाउज। गले में काँच का मंगल-सूत्र—सुहाग की निशानी ! आधे बिखरे सूखे बाल और पीछे लटकता हुआ छूटा। कितना भद्दा है यह सब ! ठूँस-ठूँस कर पान खाती है और सारे दाँत धुँआरे हो गए हैं। उनकी सारी चमक गायब —और खड़े होने की तो तमीज ही नहीं है उसे। कभी इधर कूल्हे मटकाती है. कभी उधर। और··· और···वह फटी गन्दी साड़ी···हर बार आधी बात कहकर चुप हो जाती है। और इसी तरह वह भी है। उसमें भी अन्तर नहीं। कितनी बार कहा, "मन्दाकिनी, अब तू ब्याह के लायक हो गई है, कपड़े तो साफ रखा कर।"

बीस की उमर है। गेहुँआ खुला-खिला रंग, पर असल में जवानी का रंग भी कपड़ों से ही उभरता है। इतने अच्छे नाक-नक्श, पर देखकर घिन आए। हँसती है तो गुस्सा आता है। नाक में जैसे मक्खियाँ भिनभिनाती हैं। हँसकर कहती है, "भइया, अपनी देख, मेरी फिकर मत कर।"

मूर्ख नालायक !

जोर की खिलखिलाहट हुई। उसका ध्यान टूट गया। लाल सलवार वाली लड़की के हाथ से किताबें नीचे गिर गईं। उसकी तीनों सहेलियाँ खड़ी देख रही हैं और हँस रही हैं। कोई मदद नहीं करता। वह किताब उठाने के लिए अकेले झुकी है और इस कमान जैसे झुकाव से उसका हर अंग उभर रहा है। उसने दूर खड़े-ही-खड़े अपने दांत पीसे और अपने ही दाँतों से होठों को चबाने लगा। खड़खड़, खड़खड़, खड़खड़।

पाँच नम्बर से फास्ट गाड़ी निकल गई, अम्बरनाथ की गाड़ी। इतनी गाड़ियाँ आ-जा रही हैं, बस एक प्लेटफार्म है, जहाँ गाड़ी नहीं आ रही है। सारी लोकलें केन्सल। वरना दो और तीन नम्बर से तो गाड़ियाँ जाती ही थीं। वह उन्हीं से चला जाता। पर, कमबख्त आज एक भी गाड़ी नहीं है, जैसे सब उससे बदला लेना चाहती हैं। उसे लगा, आज भायखला पहुँचना उसके लिए सहज नहीं है। यदि यह गाड़ी आ भी गई, तो अगले किसी स्टेशन पर ठहर जाएगी। वहाँ से चली तो आगे रुके बिना नहीं रहेगी···और···पीछे से किसी की कोहनी उसे छू गई।

"सॉरी !" उसने लौटकर देखा और किसी मशीन की तरह कह गया। तिरछी आँखों

से उसे एक बार देखकर वह हलका-सा हिला और फिर वहीं खड़ा हो गया। उसे पहले तो गुस्सा आया—तमीज नहीं है खड़े होने की। परन्तु उसके मन में हमदर्दी जागी। वह भी बेचारा क्या करे। सारा प्लेटफार्म भर गया है। वह भी मुसीबत का मारा होगा। जरा-सा हिला कि कोहनी लग गई। उसने चाहा कि वह उसकी कोहनी को सहला दे, शायद उसे चोट लगी हो। पर⋯।

"बोरीबन्दर जानेवाली गाड़ी प्लेटफार्म नम्बर चार पर आठ बजकर चौवन मिनट पर आएगी और यह गाड़ी सायन, परेल, करी रोड, चिंचपोकली, सैंडहर्स्ट रोड और मस्जिद—इन सब स्टेशनों पर नहीं खड़ी रहेगी⋯"

एनाउन्सर ने बात अंग्रेजी में दुहराई, फिर मराठी में। उसने एक बार फिर अपने आपको सम्भाला। बस, गाड़ी आने ही वाली है। सामने की घड़ी में आधा मिनट ही तो बचा है। सारे खड़े मुसाफिरों में एक हलकी-सी सुरसुरी दौड़ गई—नकली रेशम की साड़ी जैसे तार के खम्भे से टकरा गई हो।

वह सम्भल गया। उसने फिर उचककर बाईं ओर देखना चाहा⋯गाड़ी का कहीं पता नहीं। दाईं ओर का पुल बराबर चल रहा था। मर्द-औरतों का आना-जाना पूरी रफ्तार में था। वह उन्हें देखता, प्लेटफार्म देखता, अपने आपको देखता और फिर आगे बढ़कर पटरियों को देखता, पटरियों को देखकर प्लेटफार्म की ऊँचाई नापने की कोशिश करता। उसे लगता जरूर यह प्लेटफार्म पहले से धँस गया है। पहले यह अधिक ऊँचा था। बस, यूँ ही धीरे-धीरे यह धँसता जाएगा और रेल की पाँतें ऊपर उभरती जाएँगी। उसे लगा वह लिफ्ट पर बैठा नीचे धँसता जा रहा है और उसके कारखाने की भारी इमारत धीरे-धीरे ऊपर उठती चली जा रही है। "हे राम!" अपने आप उसके मुँह से निकला। अब क्या होगा? गाड़ी का अब भी पता नहीं है। सिगनल हरा है, पर यह तो पहले से ही हरा था। कैसे हैं ये रेलवे वाले, लगता है सिगनल भी काम नहीं करता और इन्हें जरा भी फिकर नहीं है। पब्लिक की परेशानी ये क्या समझें!

अनजानी आशंका से उनका मन धड़कने लगा। उसे साढ़े नौ बजे तक घर पहुँच ही जाना चाहिए। पहली बार ओवर टाइम मिला है—सात रूपए तीस नए पैसे। कई सालों से वह रेनबो कम्पनी में काम कर रहा है। ओवर टाइम काम तो हर आदमी से कराया गया, पर किसी को पैसे नहीं दिए गए। कहा जाता रहा है कि कम्पनी बड़े घाटे में है। बेचारे करते क्या? जरा-सी गड़बड़ी हुई कि मैनेजमेण्ट ने 'लॉक आउट' की धमकी दी। पिछले साल रामस्वरूप ने मैनेजर से मुँहजोरी की थी। दो घण्टे रात में उसने अधिक काम किया था। सबेरे बोला, "मनीजर सा'ब दो घण्टे का दुगुना ओवर टाइम?"

मैनेजर ने लाल-पीली आँखों से उसकी ओर देखा था। पर रामस्वरूप भी ठहरा उत्तर प्रदेश का भैया—बड़ी-बड़ी मूछें, भरा-पूरा लम्बा-तड़ंगा जवान! उसने अपनी बाँहें मीटी थीं, "अरे, का कहत है तुम मनीजर सा'ब, कानून-वानून का आपन हात में समझत हैं! अरे,

हमका जलाव न मनीजर, हम चुप नहीं रहनवारे। ईंट से ईंट बजा देब, समझे !"

रामस्वरूप की लाल आँखें देखकर मैनेजर पहले तो घबरा गया था। वह जानता था कि यदि इसने इसी तरह चिल्लाना शुरू किया तो और मजूर इसका साथ देंगे और फिर बात फैल जाएगी। बेकार की मुसीबत होगी। मैनेजर ठहरा चलता-पुरजा आदमी। आदमी की रग-रग पहचानता है। उसने पास आकर रामस्वरूप की पीठ थपथपा दी थी। उसे वह अपनी कैबिन में बुला ले गया था। बड़ी देर तक रामस्वरूप की आवाज बाहर आती रही। जरूर वह हुज्जत कर रहा था। मैनेजर की जरा-सी भी आवाज बाहर नहीं सुनाई दी पर...यह क्या, पाँच मिनट के बाद ही दोनों चुप हो गए थे। थोड़ी देर में रामस्वरूप कैबिन से बाहर हँसता हुआ आया और मूँछों पर हाथ फेरता चला गया। बाद में पता चला कि मैनेजर ने उसे बिना-लिखा पढ़ी के ही अपनी ओर से ओवर टाइम दे दिया...पर आठवें दिन ही उसकी असलियत सामने आ गई। मैनेजर ने क्यों बिना लिखा-पढ़ी के ओवर टाइम दिया ? वह उसका मुँह बन्द करना चाहता था, पर एक बार जो मुँह बन्द किया तो हमेशा के लिए रामस्वरूप का पत्ता कट गया। फिर किसी ने उसे मिल में नहीं देखा। कई दिनों तक उसके बारे में चर्चाएँ होती रहीं। बड़ी खोज-खबर के बाद पता चला कि वह अपने थैले में दो-चार पुरजे रखकर लिए जा रहा था। गेटकीपर ने उसे पकड़ लिया और चोरी के इल्जाम में उसकी नौकरी चली गई। फिर यह भी मालूम हुआ कि यह बात सही नहीं थी। रामस्वरूप चोर नहीं था। यह सब प्रपंच रचा गया था और मैनेजर को इसमें पूरी सफलता मिली। फिर किसी ने ओवर टाइम माँगने की हिम्मत नहीं की।

आज पहली बार ओवर टाइम बाकायदा मिला। अब जब कभी इस तरह काम लिया जाएगा, बराबर ओवर टाइम मिलेगा। पर यह भी हुक्म है कि काम तभी लिया जाए, जब बहुत जरूरत हो...उसने अपनी जेब टटोली—सात रुपए, तीस नए पैसे सलामत थे। साढ़े नौ बजे उसे घर पहुँच जाना चाहिए। पहुँचते ही अपनी बीबी को लेकर वह बाजार जाएगा और...उसने पास खड़ी उन लड़कियों की ओर एक बार फिर देखा। चारों उसी तरह खिलखिलाकर हँस रही थीं...बस वह ऐसी ही हरे रंग की सलवार कमला के लिए खरीदेगा। कपड़ा भी कितना लगेगा—चार बरस की ही तो है वह। यही कोई दो-डेढ़ गज। इतने पैसों में सलवार का कपड़ा और जालीदार दुपट्टा भी आ जाएगा। कितनी अच्छी लगेगी कमला इन कपड़ों को पहनकर...पर नहीं, इतने में तो बीबी के लिए भी हरी सलवार बन सकती है और न बनेगी तो पड़ोसी से दस-पाँच रुपए और उधार ले लेगा। हाँ, यही ठीक है, उसने मन-ही-मन सोचा—पर...र वह सलवार तो पहनती ही नहीं, उसे पहनना पड़ेगा; कैसे नहीं पहनेगी ?

घड़ घड़ घड़ड़ घड़ड़ घड़ !

लो, गाड़ी आ गई। जल्दी में यह भी देखने का खयाल उसे नहीं रहा कि अब प्लेटफार्म जमीन में कितना और धँस गया है। गाड़ी रुकी तो, ओफ ! धक्कमपेल्ल भीड़ की

हद नहीं। दो डिब्बों को जोड़नेवाली जगह भी खाली नहीं, वहाँ भी लोग खड़े थे। कितना खतरनाक है यहाँ खड़े होना! जरा-सी पकड़ छूटी कि बस जिन्दगी के पार! उसने उस जोड़ को देखा और मुँह फेर लिया—नहीं, यह गलत है, उसकी जिन्दगी इतनी सस्ती नहीं है। वह वहाँ कभी खड़ा नहीं होगा। मरने का काम करना ही क्यों? मूर्ख हैं वे जो मरने की सोचते हैं। इस हसीन और ख्वाबी दुनिया में जीने से अधिक दिलचस्प और कुछ नहीं है। ये तितलियाँ—जीने का ही तो मजा है, जो इनकी हर बारीकी को वह नाप सका। और अब ठीक ऐसे ही कपड़े पहनकर उसकी बीवी भी खड़ी होगी। देखनेवाले जल-भुनकर रह जाएँगे। कितनी प्यारी यह भाग-दौड़ है, कितनी खूबसूरत यह जिन्दगी है! उसे अपने आप से लगाव हो गया—उसी के घेरे उसे कसने लगे। अपने बन्धनों में वह अपने आप बँधने लगा। एक उमर होती है जब आदमी भूलें करता है और पछताता है। पर उसके बाद वह उमर भी आती है कि जब आदमी पछताता है कि अब भूलें नहीं होतीं। लेकिन कई बार चन्द भूलें जिन्दगी बनकर रह जाती हैं और फिर ऐसी जिन्दगी काटे नहीं कटती। उसने तय कर लिया कि वह जाएगा तो इसी गाड़ी से, पर अपनी जान को जोखिम में रखकर नहीं। एकाएक उसके पैर उठे और वह सामने के फर्स्ट क्लास के डिब्बे में धँस गया।

वहाँ भी ठसाठस भीड़ थी। पर खड़े होने के लिए जगह काफी थी। डिब्बे का एक कोना रंगीन सलवारों और साड़ियों से भरा था। उसने देखा, वे चारों लड़कियाँ भी यहीं बैठी हैं। गाड़ी ने हलका-सा धक्का दिया और आगे सर्प की तरह सरकने लगी। उसने बाहर सिर निकालकर देखा, प्लेटफार्म पीछे छूट गया था और पूरी तरह साफ था, जैसे कोई भंगी अभी झाड़ू लगाकर वहाँ से हट गया है। उसे ताज्जुब हुआ कि इतनी सारी भीड़ कैसे इस गाड़ी में समा गई, जबकि गाड़ी पहले से ही भरी थी। जरूर कोई खास बात है। और वह खास बात क्या है, यह सोचना छोड़कर वह भीतर आ गया। उसने जेब को एक बार फिर टटोला। चैन की साँस ली। डिब्बे को देखकर वह और आश्वस्त हुआ। हाथ उसने नीचे कर लिए, 'यह फर्स्ट क्लास है, मिस्टर!' वह अपने आप बोला, 'यहाँ पॉकिट नहीं कटा करते। यहाँ चलनेवाले सब बड़े साहब लोग हैं।' मन के भीतर से यही आवाज फिर उठी और वह अपनी जेब के प्रति निश्चिन्त होकर खड़ा हो गया।

फास्ट गाड़ी थी। चलती गई—हवा को चीरती वेग गति से वह बढ़ रही थी। सायन चला गया और गाड़ी फिर धीमी हुई। माटुंगा, दादर और फिर रफ्तार! बस, अब आगे भायखला में ही रुकेगी। उसकी कोहनी किसी से छू गई। उसने नाक-भौं सिकोड़ी। दूसरा हाथ और किसी को छू गया। वह पीछे हट गया। तीसरा बोला, "क्यों जनाब, खड़ा होना नहीं आता!" दूसरा अपने आप बुदबुदाया "साला थर्ड क्लास का पैंसेंजर भी इहईच चलना माँगता! कोई देखता नहीं।" इस आदमी की ओर लौटकर उसने नजर भरकर देखा, फिर अपने आप हिल गया। उसकी जेब में थर्ड क्लास का पास था। एक भय उसमें जागा—कहीं टी.सी. खड़ा हो तो? गरदन ऊपर उठाकर उसने देखा, कहीं डिब्बे के उस ओर

तो टी.सी. नहीं है। भीड़ में कहीं छिपा हो। तभी उसने सफेद पैंट और सफेद कोट पहने एक आदमी की पीठ देखी और काँप उठा—अरे, यह तो टी.सी. है। बस, अब पास आया और··· । उस डिब्बे का भीतरी भाग घूमता-सा लगा। उसे अब चक्कर आ जाएगा। पर···क्यों ? दूसरे ही क्षण वह सम्भल गया। वह सीट पर तो बैठा ही नहीं, सिर्फ खड़े होने भर से फर्स्ट क्लास में चलना थोड़े कहलाता है ! उसे लगा, जैसे वहाँ खड़े सब थर्ड क्लास के पैसेंजर हैं। फर्स्ट क्लास के पैंसेंजर तो वे हैं, जो सीटों पर बैठे हैं। इस विचार के साथ ही उसका हाथ फिर अपनी जेब पर गया। जेब सँभालना जरूरी है। वह अकड़कर खड़ा हो गया—आने दो टी.सी. को। वह कुछ नहीं कह सकता। कहेगा, तो कानून की खाएगा। एक गहरा विश्वास उसके अन्तर में समाहित हो गया। पर, यह क्या ! अरे वह अपने आप पर हँस पड़ा। उसे लगा, अपनी मूर्खता पर वह जी खोलकर क्यों नहीं हँसता—अरे, वह तो कोई और है, टी.सी. नहीं। धक्के खाता वह उसके पास तक आ गया है और उसे अब पूरी तरह देख रहा है। इसे टी.सी. समझकर काँपे जा रहा था।

गाड़ी की रफ्तार कायम थी। उसने बाहर देखा, सब तेजी से उलटे भाग रहे थे। बस, वह घर पहुँचा और उसकी एक मुसीबत इसी तरह उलटी भागी। पर उसे साढ़े नौ बजे तक घर पहुँच ही जाना चाहिए। रात-भर जागा है। घर जाकर वह नहाएगा, एक कप चाय पिएगा; साथ में पुणताँबेकर का चिवड़ा। नुक्कड़ पर वह दुकान है। चार आने का चिवड़ा वह अपने साथ ले जाएगा···और पन्द्रह-बीस मिनट इस तरह खर्च हो ही जाएँगे। बस, दस बजकर बीस मिनट पर उसे घर से चले जाना चाहिए, वरना··· । उसका मस्तिष्क घूम गया। वह मुस्टंड, साला, हरामजादा पीछा नहीं छोड़ता ! पानी मिला दूध देता था और अब पैसे भी पूरे माँगता है। दो महीनों से उसे टाल रहा है। आज साढ़े दस बजे बुलाया है। सोचा था ओवर टाइम मिलेगा, तो उसका कर्ज चुक जाएगा। पर अब···समझ तो अब आई है। पानी के पैसे देना कितनी बड़ी मूर्खता है ! अच्छा हुआ, उसने अब तक पैसे नहीं दिए। आज भी वह साढ़े दस बजे घर से निकल जाएगा। ताला बन्द रहेगा, तब···तब फिर पहली तारीख तक पीछा छूटा। तब तक और कोई उपाय सोचा जाएगा। जरूर ऐसा कुछ सोचना चाहिए कि हमेशा-हमेशा के लिए उसका पीछा छूट जाए···उसने पास खड़े एक बाबू की कलाई देखी। नौ बजकर बीस मिनट। उसे सन्तोष हुआ। अभी समय काफी है।

गाड़ी की रफ्तार कम होने लगी और वह अपने आपको सँभालने लगा। किसी मुसाफिर के पास जैसे ढेर-सा सामान हो और स्टेशन आते ही सब समेटने की चिन्ता करने लगे। वह भी बेहद चिन्ता करने लगा। अपनी जेब उसने देखी। हाथ डालकर अँगुलियों से उसने पैसे गिने, पास देखा, वह पोस्टकार्ड देखा जो कल शाम उसकी सुसराल से आया है और··· ! और इसी समय फिर एक भय उसके मन में जाग गया। तब तो उसने सन्तोष कर लिया था, पर अब··· । वह जानता है कि फर्स्ट क्लास के डिब्बे के पायदान पर भी खड़े होकर चलने के लिए उस क्लास का टिकट चाहिए। उसने ऐसे कई मासूम लोगों को पकड़े

जाते देखा है। फिर वह तो डिब्बे के भीतर था। उसका मस्तिष्क घूमने लगा। उसके विचार कितने लचर थे ! उसे फर्स्ट क्लास में चढ़ना नहीं था।

गाड़ी रुकी और उसके साथ ही वह पूरी तरह काँप उठा। उसे लगा, उसने जो घरौंदे मन में बनाए हैं, बस, अब हवा हुए—वह नीचे उतरा और टी.सी. ने उसे पकड़ा। डिब्बे का दरवाजा पकड़ते-पकड़ते उसके हाथ काँप गए। वह नीचे उतरा, तो थोड़ी दूर पर सचमुच टी.सी. खड़ा था। उसे लगा जैसे वह उसी को घूर रहा है। वह वहीं खड़ा रहा—भागना और बड़ा जुर्म है। उसने अपनी जेब में हाथ डाला। एक आह उसके मुँह से अनायास निकल गई। सारे मनसूबे हवा में उड़ने लगे। अब उसने अपने को पूरी तरह तैयार कर लिया। पैसों का मोह उसके मन से यकायक जाता रहा। उसे याद आया बचपन में दादी रामायण सुनाती थीं। राम अयोध्या का राज्य यूँ छोड़कर चले गए जैसे कोई-कोई को छोड़ जाता है। फिर, फिर यह रकम उस राज्य से बड़ी तो नहीं। उसने अपने आपको विश्वास दिलाया, जो पैसे बचेंगे उनका चिवड़ा वह खरीद लेगा, बस। अब एक ही इच्छा उसकी रही कि टी.सी. देर न करे, अन्यथा वह घर से भी नहीं निकल पाएगा और दूध वाला उसका खून पिए बिना न रहेगा।

उसने फिर सामने देखा, टी.सी. दाईं ओर मुड़कर बुकस्टाल की तरफ चला गया था। वह आश्वस्त हो गया। उसकी साँस जैसे वापस आ गई थी। एक नई जिन्दगी उसे मिली। उसने ऊपर देखा—आकाश खुला और साफ था, कहीं बादल नहीं थे। कितना हसीन और खुशनुमा मौसम है यह ! उसने जेब से थर्ड क्लास का पास निकाला और 'एक्जिट' गेट की ओर बढ़ गया। एक अनजानी मुसकान उसके होंठों पर तिर गई।

प्रतीक्षा

सावित्री के लिए कुछ भी पुराना नहीं था। उसकी जिन्दगी धीरे-धीरे एक ढाँचे में ढलती जा रही थी। रामसिंह को समाज-सेवा करते आखिर एक जमाना बीत गया था और अब मजे में वह उसी का फल खा रहे थे।

उस शाम रामसिंह रोज की तरह बँगले में आए थे। सावित्री उनकी प्रतीक्षा में ही थी। वह जानती थी, एक बार यदि पापा कार से उतरकर अपने कमरे में पहुँच गए, तो उनसे मिलना मुश्किल हो जाएगा। नेताओं को घेरने वालों की कमी नहीं है, जनता से घिरे रामसिंह का नक्शा तब बदला हुआ रहता है। अपनी बेटी के लिए भी वे मिनिस्टर रामसिंह बन जाते हैं। उनकी आवाज रौबीली और चेहरा सख्त तथा भारी हो जाता है।

सावित्री इसीलिए बरामदे में बहुत देर से चक्कर काट रही थी। जैसे ही पापा की गाड़ी रुकी कि वह कार के दरवाजे के पास जा धमकी—"हैलो पापा।"

—"ओ हो, सावित्री बेटी, आज तुम कितनी खूबसूरत लग रही हो!"

जवाब पाप ने नहीं एक दूसरे आदनी ने दिया था। इसे सुनकर सावित्री ने हलका-सा मुँह बना लिया था। उस आदमी के उतरने के बाद जब पापा उतरे थे तो उन्होंने सावित्री को सिर से पैर तक देखा था। फिर एक हल्की-सी चपत उसके गाल पर लगा दी थी—"यू नाटी ब्वाय।"

—"पापा, क्लब जा रही हूँ।"

—"जाओ, जरूर जाओ। जब तक जनता से मिलोगी-जुलोगी नहीं, कैसे काम चलेगा।"

सावित्री कार में बैठ गई थी, लेकिन जैसे ही उसने पीछे का दरवाजा लगाया था, रामसिंह ने आवाज दी—"ड्राइवर, गाड़ी मत ले जाओ। उसे गैरेज में रख दो।"

"गैरेज में! क्यों?"— सावित्री के चेहरे पर क्रोध उतर आया था।

पापा पास आ गए थे। उनके साथ उनकी जनता भी आ गई थी। रामसिंह ने एक आदमी की ओर देखकर कहा था—"कल चीफ मिनिस्टर साहब ने एक नोटिस निकाला है—'कोई भी मन्त्री कार का उपयोग निजी काम के लिए नहीं कर सकता।' कल ही नोटिस निकला है और आज...!"

—"हाँ-हाँ, आप ठीक कहते हैं, साहब।"

सावित्री उन सबको फीकी और उतरी नजरों से देख रही थी। पापा को देखने वाली

उसकी नजरें भी एकदम बदल गई थीं। यदि उनसे कोई शब्द बन सकते हों तो वे होंगे—"कायर ! डरपोक !"

—"लेकिन मुझे क्लब जाना है, पापा, देर हो रही है !"

—"तुम क्लब जरूर जाओगी, बेटी, मैं कहाँ रोकता हूँ !"

रामसिंह ने सामने खड़े सूट पहने एक आदमी की ओर देखा। वह उनका प्राइवेट सेक्रेटरी था। वह जैसे रामसिंह की देखने की भाषा को भी समझता था। वेटिंग रूम में जाकर उसने देखा, कुछ आदेश देकर वापस आ गया—"गाड़ी अभी लगती है, सर।"

मिनिस्टर साहब से अनाज का जो व्यापारी मिलने आया था, उसकी गाड़ी पलक झपकते ही सामने आकर खड़ी हो गई—"एकदम नई एंबेसेडर।" सावित्री ने उस कार को देखा और मुँह बना लिया।

—"क्या बात है, बेटी ?"

—"यह कार, पापा ?"

—"एकदम नई है। कल ही डिलीवरी ली है।"

—"लेकिन पापा," उसने अपनी कमर पर झूलते हुए कहा था—"आपने मेरी इंसल्ट की है।"

—"इंसल्ट ?"

—"हाँ," उसके शब्दों में वजन था—"मुझे गाड़ी से आपने बाहर उतारा।"

—"क्या कहती हो बेटी ?"

—"हाँ पापा !"

सावित्री पैर पटकते हुए भीतर चली गई थी। रामसिंह अपनी बेटी के इस व्यवहार से चकित थे। उन्हें घेरे खड़ी जनता के चेहरे पर जैसे हवाइयाँ उड़ रही थीं। रामसिंह ने एक पल सोचा और वहीं रुक गए।

—"इंसल्ट ! आखिर यह कैसी इंसल्ट हुई ? और यदि यह इंसल्ट है तो मैंने जिन्दगी भर जो ......" उनका चेहरा एकदम बदल गया। एक फीकी मुस्कराहट फेंक कर वह अपनी जनता के साथ ड्राइंग रूम की ओर बढ़ गए।

सावित्री ने आइने के सामने खड़ी होकर अपने को इधर-उधर कई तरह से देखा था। दिल्ली के फैशन की नई लुंगी उसने आज पहली बार पहनी थी। हरे रंग की लुंगी पर आसमानी कुरता पहनकर उसने उस शहर में हिप्पी आन्दोलन चलाने का उसी दिन निश्चय किया था। उसे विश्वास था कि कम-से-कम क्लब में आने वाली सब लड़कियाँ अपना लिबास बदले बगैर नहीं रहेंगी।

सावित्री उस क्लब की जान थी। उसकी खूबसूरती और फैशन की चर्चा चारों ओर थी। वह ट्विस्ट करना जानती थी और फ्लोर-डांस में किसी के साथ भी वह शेयर कर सकती थी। और उस शहर में इतना ही बहुत था ! वह जब गाती थी तो उसके कोमल स्वरों

से एक आरकेस्ट्रा-सा बज उठता था। जब वह नाच के मूड में होती है तो वह दोनों हाथों और पैरों से अपने पूरे शरीर को मिला देती है और बीच-बीच में 'होप ऽ ऽ ऽ होप' की जंगली आवाजें भी करती है। क्लब के लिए यह मरने का मौसम होता है और अफसरों तथा व्यापारियों और उनके बेटों के लिए एक चैलेंज।

"आज सब ठण्डा होगा!"—उसके मुँह से एकदम ठण्डे स्वर निकले! गुस्से में आकर उसने लुंगी उतार दी और फिर कुरता भी उतारने लगी।

रामसिंह अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो चुके थे। मिलने वालों से जल्दी-जल्दी मिलकर अब वे अपने निजी कमरे में चले गए थे। उनके साथ अब केवल वह व्यापारी रह गया था, जिसकी कार में जाने से सावित्री ने इनकार कर दिया था। कमरे की बत्तियाँ हल्की हो गई थीं और व्यापारी ने अलमारी से दो गिलास निकाल कर शराब की बोतल खोलनी शुरू कर दी थी।

वह एक अजीब-सी बोतल थी। 'किंग ऑफ किंग्स' की। रामसिंह ने उसे झपटकर जैसे छीन लिया था। पूरी बोतल लौटा-पौटा कर अच्छी तरह देखी थी। उस पर जो कुछ लिखा था, सब पढ़ डाला था। फिर मुस्कान भरे चेहरे से बोतल को टेबल पर रखते हुए उन्होंने कहा था—"बढ़िया चीज है।"

"जी हाँ"—व्यापारी ने बोतल खोल दी थी। उसने कहा था—"साहब, ऐसी बढ़िया चीज के लिए भला कौन शराबबन्दी की बात करेगा। जनता रद्दी और नकली शराब पीती है, इसीलिए गांधीजी ने शराबबन्दी का नारा दिया था, क्या ख्याल है हुजूर!"

—"यह तो मजे की बात कही आपने। मैंने तो कभी इस तरह सोचा ही नहीं था, क्या कहने... !" मन्त्री ने व्यापारी की बुद्धि की तारीफ की थी। फिर पहला घूँट लेते हुए उन्हें अपनी एकलौती बेटी सावित्री की याद आ गई थी।

"बेचारी!"—उन्होने सोचा और स्वयं उठकर सावित्री के कमरे में चले गए, वहाँ जाते ही उन्हें जैसे शॉक लगा, वे कमरे के बाहर दरवाजे की आड़ में आकर खड़े हो गए। वहीं से उन्होंने आवाज दी—"सावित्री, बेटे।"

सावित्री चौंक उठी थी। कमरे के भीतर आते ही गुस्से में उसने अपने सारे कपड़े उतार फेंक दिए थे! उसने जल्दी-जल्दी अपनी लुंगी पहनी और ऊपर से कुरता डाल लिया। कुरते के बटन लगाते हुए उसने आवाज दी—"हाँ, पापा।"

रामसिंह अब कमरे में आ गए! रामसिंह ने उसके सिर पर हाथ रखते हुए प्यार से कहा—"बेटे, अब तुम सयानी हो गई हो। इस तरह की इंसल्ट को हाथों की हथेलियों में लेकर नहीं चलना चाहिए, सोचो तो, मैंने कितने इंसल्ट सहकर इस पद को पाया है। अब कोई क्लब के भीतर मेरी कार को जाते देख लेता तो?"

—"तो क्या पापा, क्लब जाना बुरा है?"

—" नहीं बेटे, बिल्कुल बुरा नहीं है, लेकिन हमारी जनता अजीब है। उसके लिए कुछ नाटक करने होते हैं, वरना सरकारी गाड़ी में या व्यापारी की गाड़ी में अन्तर क्या है ?"—रामसिंह ने सावित्री की पीठ थपथपाई—"यह एक बहुत बारीक बात है बेटे, इतने दिनों की समाज-सेवा के बाद मैंने सीखी है। बहरहाल चलो, तुम्हारा क्लब का खालीपन मिटाया जाए।"

रामसिंह सावित्री को जैसे जबरन खींच कर ले आए। कमरे में आते ही व्यापारी ने खड़े होकर 'नमस्ते' की। सावित्री ने एक बार उसकी ओर देखकर हलके-से मुसकरा दिया। व्यापारी ने तीसरा गिलास निकाल कर कोकाकोला से भर दिया और उन दोनों ने सावित्री के 'मूड' के लिए कई बार पैग चढ़ाए।

रविवार को सावित्री ने पिकनिक में जाने का इरादा प्रकट किया। उसे भला कौन रोक सकता था। तय हुआ कि सरकारी गाड़ी ही उसे पिकनिक पर लेकर जाएगी। यदि किसी ने विधान सभा में प्रश्न उठाया भी तो कई बहाने बनाए जा सकते हैं। 'डेवलपमेंट ब्लाक के इंसपेक्शन के लिए क्या कोई मिनिस्टर नहीं जा सकता··· !'

जंगल की खुली हवा में सावित्री ने बड़ी ताजगी महसूस की। घूमने-फिरने के बाद जब लंच का समय हुआ तो सब कार के पास आकर खड़ी हो गईं। वहाँ खड़े होते ही उन्हें मुरगे की आवाज सुनाई दी। फिर कुत्ते के भोंकने का शोर हुआ।

—"इस जंगल में भी कोई रहता है ?"

—"लगता तो ऐसा ही है।"

ड्राइवर ने बताया कि इस पहाड़ी के बाहर एक छोटा-सा खूबसूरत बँगला है। उसमें हुक्मसिंह रहते हैं—पुराने मिनिस्टर। वे शक्ति-परीक्षण में पराजित हो गए। वरना इस समय वे मन्त्री होते। अब अपने खराब दिनों को इस जंगल में रहकर बिता रहे हैं और तब तक बिताते रहेंगे जब तक उन दिनों का अन्त न हो जाए।

सावित्री ने ड्राइवर को आदेश दिया कि वे सब उसी बँगले में चलकर लंच लेंगी।

एक सावित्री की बात यम भी नहीं टाल सका था, फिर ड्राइवर की क्या बिसात कि इस सावित्री की बात टाल जाए। बात करते-करते उनकी गाड़ी हुक्मसिंह की 'कॉटेज' में पहुँच गई। सुन्दर छोटा-सा घर, दरवाजे पर लिखा था—'प्रतीक्षा'।

चारों ओर शान्ति देखकर सावित्री ने सबको शान्त रहने का इशारा किया। सब चुपचाप कुर्सियों पर जाकर बैठ गईं। इस घोर शान्ति से उसे तरावट मिली। लेकिन पल-भर में जैसे यह सन्नाटा उसे खाने लगा। अनजाने ही सावित्री की मुँह से 'होय···हूप' की आवाज निकली और उसी के साथ उठकर वह लॉन में ट्विस्ट करने लगी। उसी समय कॉटेज के भीतर से किसी ने दरवाजा खोला। दरवाजे के खुलते ही सावित्री के थिरकते पैर रुक गए। उसने सामने एक खूबसूरत युवा व्यक्ति को खड़े देखा। और इसके पहले कि वह उन लड़कियों को डाँटता या परिचय पूछता, सावित्री उचककर उसके पास पहुँच

गई—'हैलो'।

उसकी मुसकराहट का जवाब उस नौजवान को देना ही पड़ा। सावित्री उसे नीचे लॉन पर ले आई। और उसने एक-एक करके सबका परिचय उससे कराया। अन्त में अजीब ढंग से मुसकराकर उसने अपना परिचय दिया—"सावित्री, चेयरमैन लायंस क्लब, मिनिस्टर रामसिंह की बेटी।'

सावित्री और उसकी सहेलियाँ अपना लाया लंच नहीं खा सकीं। उनके लिए ताजा खाना वहीं बनवाया गया। इस बीच सावित्री ने उस युवक से गहरा परिचय भी कर लिया। उसका नाम सत्यवान था। सत्यवान ने बताया कि उसके पिता मन बहलाने के लिए शहर गए हुए हैं। माँ नाराज होकर अपने घर चली गई है। उसने उन दिनों के भी किस्से सुनाएं, जिन दिनों उसके पिता मिनिस्टर थे। सत्यवान ने तभी एम० ए० कर लिया था। और अब नौकरी की तलाश है।

दोपहर दोनों ने मजे में बिताई। सत्यवान का दर्शन अपने पिता का दर्शन था। वह जल्दी ही नौकरी करेगा और इस जंगल को छोड़ देगा, और किसी बड़े शहर में जाकर रहेगा यदि इसी बीच उसके पिता राजनीति में वापस आ गए तो फिर नौकरी की उसे जरूरत नहीं पड़ेगी। वह इस बार अपने पिता का पी० ए० बनेगा और तब ऐसा इंतजाम करेगा कि आगे न कभी नौकरी की जरूरत पड़ेगी और न मिनिस्ट्री की।

सावित्री ने इन बातों में बहुत रस लिया। यही सब तो वह चाहती है। बस, इसके साथ एक चीज और जोड़ दी जाए, वह है क्लब। यानी जब बँगले बनवाए जाएँ तो एक क्लब भी बनवा लिया जाए, ताकि उस पर जिन्दगी-भर कब्जा बना रहे। वह मंत्रीपद के साथ किसी तरह जुड़ा हुआ न हो। उस दिन सत्यवान और सावित्री दोनों ने अपने विचारों में इतनी समानता देखी कि उन्होंने कई वायदे भी कर लिए और कई तरह के ऐसे आदान-प्रदान भी हो गए, जिनकी दोनों को कल्पना तक न थी।

इसके बात सावित्री का जीवन-दर्शन ही बदल गया। उसे आवाजों से नफरत हो गई। क्लब का माहौल पराया और अनजाना-सा लगने लगा। उसकी नजरें पूरब के उस जंगल की ओर लगी रहतीं, जिसके पार एकान्त में एक शान्त कुटी है। जहाँ विश्वास भरा पड़ा है और आशा के फूल खिलते हैं। उसे अपने पिता का बँगला काटने लगा, क्योंकि उसकी नजर में वह पका हुआ फल था और राजनीति के दाँव में लगा हुआ एक फड़। किसी भी समय वह बरबाद हो सकता था।

उसे अब 'प्रतीक्षा' थी और इसी में वह भले घर की लड़कियों की तरह सुबह नौ बजे से पहले न उठती थी। लेकिन एक और परिवर्तन उसमें एकदम नए ढंग से हुआ था। उठने के बाद वह सीधे बाथरूम में जाती थी। नहाकर वह आध घंटा वहीं पूजन करती थी। बाथरूम में पूजन करने का रहस्य यही था कि कहीं वह 'एक्सपोज' न हो जाए। जो काम वह कभी नहीं करती रही, अब करने लगेगी तो क्या होगा?

बाथरूम में वह बड़ी आस्था और श्रद्धा से ध्यान करती और उस समय दो वरदान माँगा करती। वह कहती—"हे भगवान्, आपने एक सावित्री को तीन वर दिए थे, इस सावित्री को केवल दो वर चाहिए—एक सत्यवान, दूसरा सत्ता !" सत्ता का वर माँगते समय उसके विचार एकदम साफ थे। वह चाहती थी कि फिर दल-बदलू जोर दिखाए और 'प्रतीक्षा' वाली तख्ती वहाँ से उठकर इस शहर के बीच में लग जाए।

सावित्री की भक्ति सत्यवान के प्रति अटल हो गई और बढ़ती गई। पहली सावित्री ने सत्यवान को पाकर खोया था और फिर पाने के लिए प्रार्थना की थी। दूसरी सावित्री के सामने खोने का प्रश्न ही नहीं था।

सावित्री के विचार निराधार नहीं थे। उसने क्लब जाना छोड़ दिया था। वह सारी छुट्टियाँ जंगलों में बिताने लगी थी। सत्यवान न जाने कब का उसकी मुट्ठी में बन्द हो चुका था। अब उसके सामने दूसरी बात ही रह गई थी, सत्ता की। उसके लिए भी उसने सत्यवान की गतिविधियाँ तेज करवा दी थीं ! सत्यवान यह मानने लगा था कि राजनीति में न कोई सिद्धान्त होता है, और न कोई आदर्श। किसी दल-विशेष पर आस्था रखना और उसके आदर्शों को अन्तिम वाक्य मान लेना स्वामियों और तपस्वियों का धर्म है। समय के साथ चलने से बड़ा कर्म इस दुनिया में दूसरा नहीं है।

समय बीतता गया। सावित्री की प्रार्थनाएँ तेज होती गईं, और एक दिन··· ! सत्यवान अपने दल-बदलू वित्त-मंत्री पिता के प्राइवेट सेक्रेटरी बनकर रहे। सावित्री जब अपने पिता के घर में थी, तब भी 9 बजे सोकर उठती थी, जब वह सत्यवान की बाँहों में आई तब भी उसने 9 बजे से पहले सोकर उठना ठीक नहीं समझा। अब उसने बाथरूम में बन्द प्रार्थनाओं को मुअत्तिल कर दिया था और दिन-रात 'जेम्सबांड' पढ़ने लगी थी।

सत्यवान हर रोज दोहराता—"हनी डियर, इस तरह के घटिया उपन्यास मत पढ़ा करो।" सावित्री आधी ढँकी हुई नजरों से देखकर उसे अपने पास खींच लेती और कहती—"जानते हो, कम्पनियों में हमने किस तरह शेयर लगाए हैं ? किस तरह हम शेयर-बाजार को कन्ट्रोल कर रहे हैं···लेकिन नहीं, तुम यह नहीं समझ सकोगे।"

सत्यवान जब 'न' कहकर अपनी पराजय स्वीकार कर लेता तो सावित्री के चेहरे पर खुशी की परछाइयाँ उभरने लगतीं। वह उसके गले में हाथ डालकर कहती—"डियर, यह सब इन्हीं घटिया उपन्यासों का चमत्कार है। इन्हीं के सहारे रेसकोर्स के घोड़े दौड़ते हैं और क्लब चलता है। और आगे की योजनाएँ भी उन्हीं में से निकलेंगी···देखते-भर जाओ !

सत्यवान चुपचाप सावित्री के चेहरे की ओर देखता रहता—उसकी समझ में सचमुच कुछ नहीं आ रहा !···कुछ भी तो नहीं !

एक औरत से इन्टरव्यू

वही और वैसी ही शाम ! ऐसा ही आज का सवेरा था—सूरज का वही खुलापन और आकाश में पुती हुई स्याही को सोखने के बाद के धब्बे ! धूप—कुछ झुकी हुई, उभरी हुई ! छायाएँ—काँपती और फैलतीं ! सरसराती हवा—कभी इधर, कभी उधर, कभी खिंचती और कभी खींचती !

शाम न उदास है, न भरी-पूरी ! बचपन और बुढ़ापे के बीच दबे हुए उभार के पास भी और दूर भी। क्या कुछ है, मेरी समझ में नहीं आता ! यूँ कितनी शामें आईं और गुजर गईं हैं ! एकरस बीतते अतीत के सामने सब अ-रस (नीरस नहीं) हो गया है ! इसलिए मेरा मन कुछ भी समझ नहीं पा रहा। अनुभव और प्रस्तुति से दूर वह खोया है, शायद अपने-आप में। बिगड़ी हुई आँख के परदों-जैसी शाम मेरी मेज पर आकर सीधे बैठ गई है ! मैं उसे देख रहा हूँ और उससे एक साथ ढेर-से सवाल पूछने का जी होता है। मैं आखिर पूछ बैठता हूँ—"आपका नाम ?"

"आप ही बताइए !"

"मैं जानता तो आपसे पूछता क्यों ?"

"बिना नाम जाने ही और कुछ पूछ लीजिए, नाम में ही क्या है !"

"यानी आप अपना नाम नहीं बताना चाहतीं ?"

"मैंने तो यह नहीं कहा।"

"तो ?"

"…. !"

मैंने देखा, वह सिसकने लगी है। हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ने की कोशिश की तो उसने हँसते हुए कहा, "इन्टरव्यू देना मेरा धर्म नहीं है।" न मेरे पास इतना समय है ! जो है, उसका उपयोग कभी कोई करता है ! मुझे याद है, एक बार, सैकड़ों साल पहले किसी ने इसी तरह पराभव और विजय के लिए मुझे चुना था—यानी वह समय जब न दिन हो, न रात ! उसने तुम्हारी तरह पाखण्ड नहीं किया, नाम पूछने का ! सभ्यता की दौड़ में तुम्हारे-जैसे मूर्ख लोग छोटी-छोटी बातों में ऐसे ही समय को खो देते हैं—नाम जानने-जैसी बातों में। कई बार प्यार-मोहब्बत की दुनिया नाम पूछने में ही चली जाती है ! आखिर इस अ-सार्थक संज्ञा से इतना लगाव क्यों ? हर जगह, हर सीमा पर एक संज्ञा लाकर ही खड़ी कर दी जाए—क्यों आखिर ? व्याकरण-कोश से क्या 'संज्ञा' नहीं निकाली जा सकती ! यह निकल जाए तो

इसके अर्थ विशेषण ले लेंगे और फिर देखिए…'

अपनी बात पूरी किए बिना वह चुपचाप सरककर न जाने कहाँ गायब हो गई ! मैंने हाथ बढ़ाकर चारों ओर टटोलना चाहा, परन्तु सब निरर्थक ! बहुत हाथ मारा तो एक और चीज हाथ लग गई—निहायत लिजलिजी, छिपकली की तरह बेहूदा और दुर्गन्ध-भरी !

बिना मेरे कुछ पूछे वह मेरी दोनों हथेलियो में मक्खन की तरह फिसलकर लेट गई। अपनी चमकदार आँखों से वह मुझे निहारने लगी। मैंने वे आँखें देखीं—पता ही नहीं लगा, कितनी थीं। उनमें कुछ नीली थीं—गाय की आँखों की तरह, कुछ लाल थीं—मछलियों की तरह, कुछ हरी थीं—टिड्डियों की तरह, और कुछ मखमली-सी वीर-बहूटियों-जैसी नरम, कोमल और अपनी ओर खींचती हुई। उसका पूरा बदन फिसलकर मेरी दोनों हथेलियों के बीच सीधा पसर गया ! सिर के ऊपर (जाने बाल थे या नकली रेशम के धागे !) अमरबेल-से फैले छितने को एक नए उभार के साथ झटका देकर उसने करवट बदली और मेरे ठीक आमने-सामने हो गई। मेरी ओर देखकर वह मुसकराई और बोली, "मेरा नाम औरत है !"

"अच्छा !" मैं अभी तक यह नहीं भूला था कि उसके पहले इसी जगह जो चीज थी, उसने अपना नाम बताने से इनकार कर दिया था। यह बिना पूछे अपना नाम बता रही है ! उसने मेरी ओर अजीब-सा संकेत करते हुए दोहराया—"मेरा नाम औरत है !"

"जी…मैंने सुन लिया…' मैंने टूटे हुए शब्दों में कहा, 'लेकिन आप अब भी… !"

"अब भी क्या ?" वह लिजलिजी आवाज में बोली।

"आप अब भी औरत हैं ?"

"हाँ !" उसने कहा, "कल भी थी, आज भी हूँ और कल भी रहूँगी। तुम्हें अचरज होता है ?"

मैंने सिर हिला दिया, क्योंकि उसकी नरम भुजाओं के बावजूद मेरे मन में भय की एक सुरसुरी दौड़ गई थी। उसने उसी तरह लेटे हुए कहा, "मुझे पहचानना तुम्हारे वश का नहीं है ! तुम्हें मिटाकर भी मैं औरत रहूँगी। तुम जानते हो न, कई कीड़े ऐसे होते हैं, जो एक बार मिलकर मिट जाते हैं। क्यों ? उन्हें उनकी औरत खा जाती है ! मैं यही प्रयोग आदमी नाम के जानवर पर करना चाहती हूँ ! अभी तक वह अपने तौर-तरीकों से हमें मिटाने की कोशिश करता रहा है ! हमें छोड़कर भी हमारे पीछे भागता रहा है। हमें दुत्कार कर भी, हमें ही जिन्दगी मानता रहा है ! यानी वह हमारी मुट्ठी में बन्द होकर भी जब चाहे मुट्ठी खोलकर बाहर जाता और फिर भीतर आता रहा है ! हमने वर्षों यह सहा, विद्रोह करना चाहा, उठना-उभरना चाहा, परन्तु हर बार आदमी नाम के लिजलिजे और लचीले जानवर ने हमें मजबूती से पकड़कर विवश कर दिया !

वह भोगकर दुत्कारता रहा, दुत्कारकर भोगता रहा ! हम इसे इसलिए सह रही हैं कि इसी में हमारे प्राण पनपते हैं लेकिन अब इन पनपते प्राणों की जड़ खोदकर हम इन्हें

अमरबेल बना देंगी। ठीक उस दिन, जिस दिन मकड़ी की तरह या बिच्छू या मधुमक्खी की तरह हम आदमी नाम के जानवर को आहार बना लेंगी ... !'

वह एकाएक जोर से उछली, जैसे उछलकर वह मेरा मुँह नोच लेगी। ऐसे ही जैसे अब तक कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका को न पाने की निराशा में उसका मुँह नोचता रहा है या तेजाब से विकृत करता रहा है। उसने अपनी दसों अँगुलियाँ सामने कीं। उनके नाखून एक-एक इंच लम्बे थे, सामने से नुकीले और खूनी लाल रंगवाले। उन्हें दिखाकर वह मुसकराई। बोली, "डरो मत। इनका गलत उपयोग नहीं करूँगी। तुम्हारे बिना मेरा अस्तित्व ही क्या है ? आदमी से सुन्दर और कोई चीज इस दुनिया में नहीं है !... आओ !"

उसकी आँखों में देखते-देखते प्यार का एक नया सैलाब उमड़ आया। अभी क्या था, अभी क्या है ! मुझे लगा, यह सब एक बड़े नाटक की भूमिका है। उसने एकाएक मेरे पास आकर स्वयं मुझे आलिंगन में कस लिया। अपने घने बालों को मेरे चेहरे पर डालते हुए वह एकदम मौन हो गई। मैं छटपटाने लगा। बहुत कोशिश की पर छूटने का रास्ता नहीं मिला तो मैंने अपने को एकदम आसन्न और रिक्त छोड़ दिया। निस्पन्द और निश्चल ! उसने अपने चेहरे को उठाते हुए कहा, "यही चाहिए था ... जिस दिन तुम अपने को यूँ सरेण्डर कर दोगे, सबसे ज्यादा सुखी रहोगे।"

वह मेरे सिरहाने बैठ गई और मेरे बालों को, आँखों को, पलकों को, मेरी छातियों को, पेट को और फिर पूरे शरीर को हलके-हलके सहलाने लगी। उसकी नुकीली आँखों में ओस जैसी नमी उतर आई थी। थोड़ी ही देर में वह सिसकने लगी और फिर फूट-फूटकर रो पड़ी। मुझे अचरज हुआ। मैंने पूछा, "क्या बात है ?"

"कुछ नहीं !" उसने अपने दोनों हाथ मेरे ऊपर बाज की तरह बिछा दिए, ताकि मैं उठ न सकूँ। फिर उसने अपने आप कहा, "तुम्हारे लिए रो रही हूँ। तुम मुझे कितना गलत समझते हो ! तुम्हीं गलत समझने लगे तो मेरा क्या होगा ! तुम्हारे बिना मैं कभी कुछ नहीं रही। जब-जब मैंने कुछ बनने की कोशिश की है, मैं टूटी हूँ।"

मैं आँखें बन्द किए इस नाटक को देखता रहा। मैंने उसी स्थिति में कहा, "अब गलत नहीं समझूँगा। अब तक समझा, उसके लिए माफी माँगता हूँ।"

वह कितनी खुश हुई, कह नहीं सकता। उसका अट्टहास चारों ओर फैल गया। लेकिन इस बीच एक बड़ा दर्द उभरा और मैं उठकर बैठ गया। मैंने अपने मन को कड़ा किया। यह नाटक चलता रहा, तो समय यूँ ही गुजर जाएगा ! मैंने उठते ही उसके सौन्दर्य का गुणगान किया। उसके भीतर छिपी हुई खूबियाँ कह डालीं। मैं पूरी तरह उस नाटक में शामिल हो चुका था। यह मेरा एक पाखण्ड था। मैं जानता हूँ, कोई औरत कभी खूबसूरत नहीं होती। खूबसूरती आदमी की आँखों का गुण है। लेकिन बहुत बार बहुत चीजें मरजी के खिलाफ सोचनी और कहनी पड़ती हैं। मैं उठकर दूसरी कुरसी पर जा बैठा। मैंने कहा, "थोड़ी काम की बातें कर लें।"

'ओफ !' उसने अँगड़ाई ली और बोली, 'यानी अब तक बेकाम की बातें होती रही हैं ! यह मेरी इन्सल्ट है ! यू ईडियट ! डैम !'

मैंने देखा, गालियों की एक कतार उतरकर मेरे सामने बिखरने लगी। मैं चुपचाप आँखें लगाए उसके बदलते चेहरे, बदलती आवाजों और बदलती हरकतों को देखता रहा। उसने अपने ही नाखूनों से अपने बाल खींचने शुरू कर दिए। फिर अपना ब्लाउज फाड़ने लगी। सुनहरे गोटेवाली अपनी काली साड़ी फाड़कर उसने टुकड़े-टुकड़े कर दी। तब भी वह बचे हुए कपड़ों के उन टुकड़ों को भी फाड़ती रही, जो उसके जिस्म के साथ सटे हुए थे। मैंने कहीं अवरोध नहीं किया। कितनी बदसूरत ! कितनी घिनौनी ! जलहीन और सूखी हुई पथराई आँखें ! वह बोली, "लीजिए, कहिए, क्या काम है ?"

मैंने इशारा करते हुए कहा, "बैठिए।"

लोहे के पुतले की तरह वह एक कुरसी खींचकर बैठ गई और आगे के आदेशों के लिए मेरी ओर देखने लगी। मैंने कहा, "मुझे आपका इन्टरव्यू लेना है !"

"लीजिए !" उसकी आवाज फटी हुई और सख्त थी।

"तो आप औरत··· ?"

मैं कह ही रहा था कि उसने रोककर कहा, "तो अब तक आप मुझे कुछ और समझते रहे हैं ?"

"जी नहीं ! आप कुछ और हो ही नहीं सकतीं !···मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ।"

"पूछिए।"

"कहते हैं, आप भविष्य-ज्ञानी हैं। दुनिया का भाग्य आपकी मुट्ठी में है। क्या यह सही है ?"

"हो सकता है।"

"तो बताइए, आज क्या होगा ?"

वह खूब जोर से हँसी। बहुत देर तक हँसती रही। फिर एकाएक गम्भीर हो गई। उसने प्रश्न किया, "अब तक क्या हुआ है ?"

"कुछ भी तो नहीं···बहुत कुछ हुआ है !" मैं सही बात कह ही नहीं सका।

"घबराओ नहीं", उसने कहा, "जल्दी की जरूरत नहीं है। बहुत समय है। एक अनन्त, अ-काल मेरे सामने ठहरा है ! इसे कोई नहीं छीन सकता। मैं प्रकाश को रोक सकती हूँ। इस स्थिति को बरसों अपनी मुट्ठी में बाँधकर सीधा खड़ा रख सकती हूँ। इसलिए बहुत इत्मीनान से बातें करो—और घबराओ नहीं !"

मैंने अपना प्रश्न दोहराया—"आज क्या होगा ?"

उसने व्यंग्य-भरे स्वरों में कहा, "तुम्हारी समझ में ऐसे नहीं आएगा। तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। तुम क्या जानना चाहते हो, मुझे मालूम है।"

थोड़ा रुककर उसने पूछा—"कल क्या हुआ था ?"

"मुझे याद नहीं !"

"जो याद न रहे, वह कोई होना हुआ ?"

"नहीं !"

"तो समझ लो कल कुछ नया नहीं हुआ ?"

मैंने अपना बायाँ हाथ सिर पर रखते हुए कुछ याद किया और बोला, "हा, एक बात याद आई। पड़ोसी की लड़की वसुन्धरा को कल कोई भगा ले गया था। तब खून के प्यासे एक सौ आदमियों ने शपथ ली थी कि जो भी उसे भगा ले गया है, उसका वे कत्ल कर देंगे। यह वाक़या एक बड़ी घटना है !"

मैंने उसकी ओर देखा। वह निर्विकार और दृढ़ भाव से बोली, "वे कुछ नहीं कर सकते ! सब नपुंसक और मूर्ख हैं ! भगने और भगाने का काम नया नहीं है। इसका सम्बन्ध कहीं और है। लैला-मजनूं, रोमियो-जूलियट—इन्हें तो जानते हो न ?"

मैंने सिर हिलाकर हामी भरी, तो उसने कहा, "कोई किसी को भगा नहीं सकता ! प्यार अपने आप भाग जाता है और जिनके हाथ से प्यार छूट चुका होता है या चुक जाता है या दगा दे जाता है, वे यूँ तमाशा खड़ा किया करते हैं। देख लेना—कल वसुन्धरा का भाई उसके पैर पड़ेगा। बाप कन्यादान के लिए तड़पेगा और प्रेमी अपने को लानत भेजेगा। वह उसी तरह दृढ़ रहेगी और जो झुण्ड-के-झुण्ड मर्द अपनी ताकत का तमाशा दिखाने खड़े हैं, वह उन सबको दुतकारती हुई दूसरी ओर निकल जाएगी।"

उसकी बातों में वजन था। मुझे लगा, अब सँभलकर बातें करनी चाहिए। मैंने पूछा, "अकाल, भुखमरी, महायुद्ध—इनसे कब त्राण मिलेगा ?"

"कभी नहीं !" उसने कहा, "ये सब आयाम पुराने हैं। आदिकाल से युद्ध होते आए हैं और अनन्त तक चलते रहेंगे। युद्ध अनिवार्य है।"

उसने अपनी ओर देखा और देखकर अपनी नजरें अपनी ही देह पर केन्द्रित करते हुए बोली, "युद्ध क्यों होते हैं, जानते हो ?"

मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना उसने कहा, "युद्ध मेरी शक्ति है ! मूँछ से लेकर पूँछ तक सब स्त्रीलिंग हैं। लड़ाइयाँ भी मेरे कारण हुई हैं। जरा मेरी बात को गौर से सोचो। अंग्रेजी में भी राष्ट्रों को 'शी' ही तो कहते हैं !"

"और अकाल ?" मेरा अगला प्रश्न था।

"कीड़ों के पंख क्यों निकलते हैं—बता सकते हो ?"

"नहीं !"

"बुद्धि से काम लो !' उसने किसी महाज्ञानी की तरह उत्तर दिया, "अकाल तभी पड़ता है, जब आदमी के पंख निकलते हैं ! इसी तरह महामारियाँ फैलती हैं और फैलती रहेंगी।" उसने अपनी सधी हुई आवाज में कहा, "मित्र, कभी किसी जमाने में कोई नई बात नहीं हुई।

नई बात शायद तभी हुई है, जिस दिन यह दुनिया बनी है और बनी हुई दुनिया न कभी मिटती है और न मिटकर कभी नई बनती है। कुछ मिथ्या भ्रम पालने के तुम आदी हो! उनसे मुक्ति लो··· !"

वह उठकंकर खड़ी हो गई और कमरे में यहाँ-वहाँ घूमने लगी। घूमते हुए उसने मेरे पास आकर मेरी पीठ पर अपना हाथ रखा, तो मेरा पूरा शरीर तार-तार हो गया। मैंने कहा, "दूर रहो!"

'क्यों?'

"अभी मैं और काम कर रहा हूँ।"

उसने हाथ नहीं हटाया। बोली, "यह स्पर्श क्या नया है?" अपने आप अँगड़ाई लेते हुए उसने कहा, "नहीं··· ! तम्हारे दिमाग में एक पुरजा है। वह तुम्हें हमेशा धोखा देता है। उसकी बात मानकर ही तुम किसी चीज को नया समझते हो, वरना यह स्पर्श शताब्दियों, सहस्राब्दियों पुराना है। आदमी के साथ आया है! उससे सिहरने की क्या बात है?"

मैंने यहाँ प्रसंग बदलना ठीक समझा, क्योंकि यह स्पर्श उसके इस समझाने के बावजूद मेरे लिए पुराना नहीं था। मैंने पूछा, "दुनिया कितना विकास कर गई! अणु से लेकर परमाणु तक··· ! आगे क्या होगा?"

"वही होगा जो हम चाहेंगी।" एक गर्वोक्ति के साथ वह फिर उस पूरे कमरे में घूमने लगी। सामने आकर उसने कहा, "देखो, सब कुछ इसी गहराई में बनता है। आदमी रात में ही बढ़ता है। फसलों के अंकुर रात को ही फूटते हैं। पैर का जूता रात में ही छोटा हो जाता है। बादशाहत रात में ही बदलती है। शादी-ब्याह-जैसे जश्न रात में ही होते हैं। अधिकांश मौतें रात में होती हैं। तानाशाह एक रात में बनते और दूसरी रात में बिगड़ते हैं। बुद्धि और योजनाओं का केन्द्र रात है! युद्ध और शान्ति के बीच की दीवार रात्रि है! यानी वह एक औरत है, जिसकी छाया में दुनिया बदलकर अपने को नया कहती है। यह सीमा-रेखा न रहे तो··· !"

उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें मेरे चेहरे पर गड़ाकर आगे कहा, "तुमने भूगोल पढ़ा है?" उत्तर और दक्षिण ध्रुव के बारे में जानते हो? वहाँ यह सीमा-रेखा एक लम्बे अन्तराल के बाद आती है। उसका परिणाम क्या हुआ है, बताने की जरूरत नहीं। इसलिए औरत को पहचानो! उसी ने अणु दिए, वही आगे कुछ और देगी! तुम चन्द्रमा के ऊपर पहुँच गए, लेकिन वहाँ पहुँचकर क्या किया? औरत से मुक्ति वहाँ भी नहीं। तुम्हारी कामेन्द्रियाँ वहाँ पहुँचकर अधिक सचेत हो जाती हैं क्योंकि तुम सूर्य के ज्यादा पास होते हो। कभी अणु का टुकड़ा खाकर देखो। तुम्हारी हालत जिस तरह दयनीय होगी, समझ जाओगे। तब तुम्हें मेरी चाह और अधिक होगी! मैं तुमसे एक छोटी-सी बात पूछती हूँ—यह बताओ कि हमने जब जो चाहा, क्या वही नहीं हुआ? हुआ है, तो मैं ही तुम्हारा भविष्य हूँ··· ।"

वह एकाएक चुप हो गई। खिसकते-खिसकते वह एक कोने में चली गई और अपनी

फटी हुई साड़ी, फटा हुआ ब्लाउज और दूसरे कपड़े उसी तरह पहनने लगी। जब वह कपड़े पहन रही थी तो मेरे पूरे जिस्म में एक भयंकर पीड़ा ने कब्जा कर लिया था। मैं पूरी ताकत के साथ अपने दर्द को दबा रहा था। वह कपड़े पहनकर लौटी तो उसे मेरी वेदना का भान हो गया। उसने निहायत ठंडी हँसी से मेरे गले में अपनी दोनों बाँहें डाल दीं। बोली, 'इसी दर्द से मुक्ति पाने के लिए रात्रि होती है। यहीं से काल का भेद शुरू होता है। यहीं आकर आज, कल बनता है। भूत और भविष्य की सीमा-रेखा देखना चाहते हो तो मेरी ओर ध्यान से देखो।"

वह एक सीधे डण्डे की तरह तनकर खड़ी हो गई और एकटक मुझे देखने लगी। मैं उसकी ओर अनजाने देखने लगा, तो उसने कहा, "तुम्हारा वर्तमान मेरी आँखों में है। यही 'आज' है। मेरे वक्षों के साथ तुम्हारा 'कल' बँधा हुआ है। वह तुम्हारा भविष्य है और कमर के नीचे तुम्हारा बीता हुआ 'कल' यानी अतीत है! और इनकी सीमा-रेखाएँ—एक गले के पास है, दूसरी कमर में! इन्हें पहचान लो, सारी चिन्ताओं से मुक्त रहोगे!"

उसने पास आकर मेरा दाहिना हाथ पकड़ लिया, बोली, "तुम पुरुष हो, दुनिया के सबसे सुन्दर प्राणी! तुम्हारे लिए मैं तीनों कालों को लुटा देती हूँ, लेकिन तुम्हारी बुद्धि तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ती—उसी के भ्रम में तुमने नए और पुराने का भेद किया और भटकते रहे! आओ, उठो और अपनी बुद्धि मेरे हवाले कर सुख का जीवन व्यतीत करो!"

उसकी बातों में मिठास थी, लेकिन···लेकिन यह क्या, वह तो मेरा पुरुषत्व छीन रही थी। क्या यही नया है? क्या यहीं से नई सदी का आरम्भ होगा? इतिहास यहीं से करवट लेगा? मेरे सामने एक बड़ा प्रश्नचिह्न था—युद्ध हमेशा से होते आए हैं। राज्य बनते और मिटते रहे हैं। महामारी और भुखमरी कब नहीं रही! ज्ञान-विज्ञान का विकास और शोध-अनुसन्धान कब नहीं हुए! धरती बदली है, नक्शे नए बने हैं! तब? इक्कीसवीं सदी में नया क्या हुआ! मेरा मस्तिष्क घूमने लगा और जोरो से चक्कर खाकर अपने को खो बैठा। थोड़ी देर बाद मैंने देखा, मेरा सिर उसकी गोद में है और वह मेरे सिर के भीतर की शिराओं को यहाँ-वहाँ कर रही है। मैंने जब आँखें खोलीं तो उसने कहा, "गड़बड़ी यहीं है। मेरे सिर के भीतर ऐसी शिराएँ नहीं हैं। इसीलिए वह स्थिर है! मेरा कहा मान जाओ। बात छोटी-सी है। मैं तुम्हारे मस्तिष्क की शिराओं को अभी निकाले देती हूँ!"

"नहीं! नहीं!" मैं अपना सिर खींचते हुए जोर से चिल्लाया—"यह नहीं हो सकता। अब तक नहीं हुआ, अब कैसे होगा?"

वह जोर से हँसी। बोली, "इतनी जल्दी भूल गए! तुम तो नई सदी में कुछ नया ढूँढ़ने आए थे! फिर?"

"आया तो था···" मैं अपना सिर खुजलाने लगा।

"तब?"

"तब कुछ नहीं!"

"मेरी एक बात और मान लो।...." उसने कहा, "अपने देश के झण्डे में मेरा आज का चित्र अंकित कर दो। हर देश के झण्डे में वही चित्र अपने आप अंकित हो जाएगा। हर औरत एक होती है न; देश, काल और युग के परे!"

"पुरुष भी तो..." मैंने मुँह खोला, तो उसने जोर का अट्टहास किया — "नहीं, पुरुष एक नहीं होता। एक घर के दो पुरुष एक नहीं होते, फिर देश-काल के पुरुषों की बात तो अलग है।"

मेरी बुद्धि ने तुरन्त साथ दिया और मैं उठकर खड़ा हो गया। मैंने कहा, "इसका अर्थ यह है कि दुनिया में कुछ नया नहीं है, नया केवल पुरुष है!"

उसका हँसना बन्द हो गया था। उसकी आँखें गुबरीले कीड़े की तरह भयंकर हो गई थीं। नाक फैल गई थी । होंठ जोंक की तरह सिमट गए थे और गरदन समुद्र के बीच लटके हुए धरती के सख्त टुकड़े की भाँति दिखने लगी थी। उसके सारे फटे हुए कपड़े अपने आप सिल गए थे और पहले की तरह उसकी देह से लोच और नरमाई के सारे चिह्न मिट चुके थे। वह मुझे निहायत बदसूरत और बदबूदार लग रही थी। मुझे लगा, यहाँ से तुरन्त भाग जाना चाहिए, लेकिन जैसे ही मैंने भागने के लिए अपने कदम उठाए, वह जोर से चीखी और धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ी। मैं बेतहाशा उसकी ओर लपका। उसे उठाकर मैंने सीधा लिटा दिया। थोड़ा पंखा किया। मुँह में पानी के छींटे मारे। [illegible] थरथराती हुई आवाजें मुँह से निकालती रही। फिर एकाएक उसके मुँह से फेन निकलना शुरू हो गया। अपने कपड़ों की परवाह किए बिना मैं उस फेन को पोंछने लगा। उसका नाम ले-लेकर मैंने प्यार-भरे शब्द दुहराए। फिर अपनी गोद में उसका सिर रखकर मैंने उसके बाल-सहलाए । मुझे भय था, कहीं एक बड़ी हत्या का जघन्य पाप मेरे सिर पर न टूट पड़े। किसलिए निकला था, क्या होने लगा! मैंने अत्यन्त आर्द्र स्वरों में उसकी अभ्यर्थना की और परेशानी से उसे सचेत करने के यत्न करता रहा। थोड़ी देर बाद एकाएक उसने अपनी आँखें खोलीं। उसकी नन्ही-सी आँखों में एक पूरा सपना तैर रहा था। उसने अपनी दोनों बाँहें मेरे गले में डालते हुए अपना चेहरा ऊपर उठाया और बोली, "यही नया है, और इस दुनिया में कुछ भी नया नहीं!" उसके बाल छितराकर मेरे चेहरे पर बिखर चुके थे और मैं, मैं नहीं था, मैं अपने को खो चुका था! मैंने कहा था, "मुझे नहीं मालूम!"

"ऐसा भी हो सकता है ?" उसने सहज भाव से पूछ लिया।

"हो क्या नहीं सकता, मानव-मूल्यों को परिभाषित करते समय तुम यह क्यों भूल जाते हो कि मानव शब्द से एक बड़ी इकाई का बोध होता है, जिसे तुम सामाजिकता कहते हो। इसलिए मूल्यों की परख करते समय यह बोध छोड़ना होगा और व्यक्ति के धरातल पर उतरना पड़ेगा।" रेम्बल जैसे खुले रेस्तराँ में शाम के वक्त ऐसी चर्चाएँ एक मजाक से अधिक कुछ नहीं है। लेकिन वह उत्तर भी और क्या देता, जहाँ दो-चार दोस्त बैठ जाएँ, राजनीति की चर्चा। सारा मन्त्रिमण्डल बहसों में बनता और बिगड़ता है। इसलिए आमतौर से उसे राजनैतिक बहसें पसन्द नहीं हैं, तब भी कभी फँसना ही पड़ता है।

उस शाम बहसों में फँसे रहते हुए भी वह वहाँ नहीं रह पाता। बहुत बार हम वहाँ नहीं रहते, जहाँ रहते हैं। उसकी नजरें घूम-फिरकर श्यामसुन्दर मार्ग के बँगला नम्बर दस में टिक जाती थीं! हाँ। बँगला नम्बर दस ! आदमियों की भीड़, मोटरों का ताँता। पहरेदारों की सलाखदार आँखें। बँगले के सामने तारकोल की सड़क पर से गुजरते हुए भी उसकी कार का गेयर अचानक दस नम्बर के सामने आकर चार से खिसककर दो नम्बर में पहुँच जाता था। उसे वैसा ही कुछ लगता था, जैसे सवारी गाड़ियाँ अक्सर हनुमान जी की हट्टी या किसी पीर के मजार के सामने आकर एक मिनट को रुक जाती हैं। कहते हैं, कभी किसी ने ऐसा नहीं किया था तो उसकी कार खड्ड में गिर गई थी। उसके मन में भी यही धारणा बन गई थी कि उतने प्रभावशाली मन्त्री के बँगले के सामने से यदि कार एक ही स्पीड में गुजर जाए तो खैर नहीं। परिणाम कुछ भी हो सकते हैं—नौकरी जाने से हवालात तक और अस्पताली पट्टियों से हत्या तक। एक शानदार रौब। हाथ की मुट्ठी में समन्दर-भर पानी की सत्ता।

उसे लेकिन इससे खुशी थी। मन्त्रीजी उसके निजी दोस्त रहे हैं। भय का कोई कारण नहीं आया। एक कष्ट उसे सालता आ रहा है कि दोस्त होते हुए भी पिछले दो-तीन वर्षों से मन्त्रीजी ने कभी ठीक समय पर उसे भीतर नहीं बुलाया। छः बजे शाम का समय दिया है, तो सात या आठ बजे से पहले वे कभी नहीं मिले। उसे यह तब और भी अखरता था जब उसके परिचित मिलने वाले वहाँ पहुँच जाते थे।

"सोम साहब, आपको भी बैठना पड़ता है !"

"मन्त्रीजी बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य में लगे हैं। आपने कल की संसद् की रिपोर्ट अखबारों

में नहीं पढ़ी ?"

"हाँ भाई, कमाल का भाषण था—यह आजादी नहीं दी जा सकती। ऐसे लोगों को हम बन्द कराकर रहेंगे।"

मन्त्रीजी के इस भाषण के बाद सभी पढ़े-लिखे लोगों में और अखबारों के कर्मचारियों में दहशत फैल गई है। वहाँ बैठे हुए हर आदमी के चेहरे को वह गौर से पढ़ता था—दो-चार घण्टे की प्रतीक्षा के बाद भी जब मन्त्रीजी बँगले की पोर्च में खड़ी कार में बैठकर सर्र से चले जाते थे, तब भी वे सब बिना शिकायत किए और मुँह से एक भी शब्द निकाले, मुस्कराते हुए वहाँ से खिसक जाते थे। उसे लगता था, यह मन्त्री का बँगला नहीं, किसी नवाब की कोठी है, जहाँ का सफाई-जमादार अपनी एक झाडू से हर सस्ती और कीमती चीज को बुहार कर नाली में फेंक देता है। प्रतीक्षारत ये सभी कृपाकांक्षी वैसे ही फेंके जा रहे हैं। उसे संतोष था, मन्त्रीजी दो घण्टे देर से भले मिलें हों, वह बुहारा नहीं गया। उन्होंने उसे बुलाकर पूछा है, "क्यों सोम, कोई खास बात तो नहीं ?"

सोम जवाब नहीं दे सका और मन्त्रीजी की कार पोर्च से खिसक गई, परन्तु सोम उस भीड़ के बीच अपने को वी॰ आई॰ पी॰ समझकर सन्तुष्ट होता रहा। यह सन्तोष बनावटी था, क्योंकि कार खराब होने से बिना कार पैदल बँगले से बाहर निकलते हुए अपने भारी पैरों को वह सड़क पर उसी तरह पटकता था, जैसे सिपाही कैदियों से कबूल कराने के लिए अपने नाल-भर जूते पीठ पर पटकते हैं। जब तक किसी कैफे में वह पहुँच नहीं जाता, आत्मग्लानि और अपने छोटेपन से वह ग्रसित रहता। वरना वह जानता है हजारों की संख्या में उसे सुनने श्रोता आते हैं। उसकी कविता की एक-एक पंक्ति पर उसे तालियाँ मिलती हैं। जिस अखबार के दफ्तर में वह काम करता है, उससे मिलने वालों की वहाँ भीड़ लगी होती है। समारोहों में आटोग्राफ देते हुए उसके हाथ थक जाते हैं····परन्तु ····परन्तु वह मन्त्री नहीं हैं, वह बुद्धिजीवी है।

रेम्बल के एक कोने से अचानक ठहाका उठा था। तीन-चार लोग एकसाथ मुँह फाड़कर हँसे थे—उनमें से एक ने कहा था, "बुद्धिजीवी ?"

दूसरे ने उत्तर दिया था, "किस जानवर का नाम है ?"

तीसरे ने एक मन्त्री को उद्धृत किया था, "भाइयो; मुझे पढ़ने का मौका नहीं मिलता। वैसे भी पढ़ने से ज्यादा इस देश के गरीब और भूखे लोगों के बारे में सोचना दिलचस्प है। मैंने तब भी अपने ड्राइंगरूम में और अपने कार्यालय के कमरे में ढेर-सी पुस्तकें सजाकर रखी हैं। इनके बीच बैठकर मुझे शान्ति मिलती है, लगता है, ये सभी पुस्तकें मेरी पढ़ी हुई हैं।"

सोम के पास तक ये आवाजें आईं तो वह भी ठहाका लगाए बिना नहीं रह सका। उसके दोस्त फिर राजनीति पर उतर आए और अगली बनने वाली नई कैबिनट के बारे में फिर जमकर चर्चा छिड़ गई और सोम का मस्तिष्क वहाँ से दुबककर दूर खिसक गया।

श्यामसुन्दर मार्ग। बँगला नम्बर दस। सोम ने देखा, आज वहाँ एकदम शान्ति है। गेट पर कोई पहरेदार नहीं है। गेट के सामने बँगले के भीतर की सड़क सूनी पड़ी है—किसी सुहागिन की माँग एक रात में उजड़ गई है। सूखे पत्तों से सड़क के दोनों किनारे भरे हैं। सोम उस सड़क पर आकर ठहर गया। उसने ऊपर वृक्षों को देखा, एक दिन में इनके पत्ते कैसे सूख गए! सड़क पर सूखा या एकभी हरा पत्ता पड़ा मिल जाए, मजाल है। उसने ऊपर फिर देखा, हवा के हल्के से झोंके से ढेर-से सूखे पत्ते टूट-टूटकर नीचे आ रहे हैं। समय कितना दुष्ट है। उसने लम्बी साँस ली, पहले भी ये पत्ते सूखते थे, लेकिन तब सूखकर ये सीधे आकाश की ओर उड़ जाते थे। जमीन पर उतरने की उन्होंने कभी हिम्मत नहीं की।

सोम ने गुलाब के फूलों को भी देखा, बिना पानी के फूल ही नहीं पत्ते भी मुरझा गए थे। उसने झुककर एक फूल को सूँघा। वह सुगन्ध से लबरेज था। उसकी खुशबू सूखने के बावजूद नहीं गई थी। वह कुछ देर गुलाब के फूलों को सूँघता रहा, आज उसने घड़ी नहीं देखी। वह जानता है, अब उसे ठहरना नहीं पड़ेगा।

—"साहब…"

सोम चौंका। चपरासी की आवाज थी, "साहब, आपका इन्तजार कर रहे हैं।"

"इन्तजार! मेरा…" बमगोले की तरह एक जोर का ठहाका उसके भीतर उठा और उसके खड़े होते ही शान्त हो गया।

—"कैसे हो रेवती?"

—"ठीक ही हैं हुजूर। अब हमारा का हुई?"

—" साहब से कह दो कहीं लगवा देंगे।"

—" हुजूर, साहब ही गिरफ्तं में हैं। का लगवै हैं। कहत हैं गाँव चले जाओ, खेती-बाड़ी में लगो। दस बरस हुई गए खेत का छोड़े… अच्छा साहब, जरा देखिए हमारे लिए…हम मिलब!"

सारा बँगला उदास था। कोई शोर नहीं और कोई आवाज नहीं। मन्त्रीजी के निजी सहायकों की टेबलें सचमुच बेजान थीं—उन पर न कोई टाइपराइटर, न फाइलें। धूल की परतों ने जैसे उनके चेहरे को बदल दिया था। टेबलों में लगी काल बेलों में बिजली तो थी, लेकिन वह रेत में पानी की बूँद की तरह समाई हुई थी। बँगले के बाहर पोर्च में कार अब भी खड़ी थी—बड़ी इम्पाला। यह मन्त्रीजी की निजी कार है। उनका क्या बिगड़ेगा! पोर्च पर पहुँचते ही मन्त्रीजी स्वयं मिल गए। बेचैन से वह इधर-उधर घूम रहे थे।

—"आओ सोम भाई।"

मन्त्रीजी ने सोम के हाथ पकड़ लिए। इतनी आत्मीयता उसे कभी नहीं मिली।

एक क्षण के लिए उसके मन में विचार आया 'काश, मन्त्री पद पर रहते हुए भीड़ के बीच उन्होंने ऐसे एक बार भी हाथ पकड़ लिया होता।'

—"कैसे हो? लगता है बहुत व्यस्त रहते हो, कवि सम्मेलनों की…।"

—"जी नहीं, इन दिनों बाजार ठंडा है, अखबार का काम, बस और कुछ नहीं। रोज मिलने की सोचता था आपसे लेकिन··· ।"

दोनों भीतर पहुँच चुके थे। इसी कमरे में मन्त्रीजी ने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर बहसें की हैं, सन्धिपत्रों पर हस्ताक्षर किए हैं, लोगों की फरियादें सुनी हैं। नौकरियाँ दी हैं। इसी कमरे में बड़े-बड़े सौदे हुए हैं—करोड़ों के काण्ट्रैक्ट। लाखों का कमीशन। सूरज क्लर्क की बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के पद पर नियुक्ति।और···क्या-क्या नहीं! भीड़, भीड़ और भीड़। जिन्दगी की भीख। जीने के माध्यमों की तलाश। आदेशों के जाले, जिनके तन्तु मकड़ी के जाले से ज्यादा मजबूत रहे हैं।

सोम मुश्किल से पाँच-दस मिनट इस कमरे में कभी बैठ पाया होगा। टेलीफोन···आगन्तुकों के कार्ड ···सचिवालय की फाइलें।

आज कुछ भी वैसा नहीं था। कमरे की बाईं बाजू का आलीशान सोफा धूल से भरा था। टेबल के सामने की कुर्सियाँ उत्तर-दक्षिण या पूरब-पश्चिम को मुँह किए खड़ी थीं। पाँच टेलीफोनों की जगह एक टेलीफोन बचा था।

मन्त्रीजी ने···नहीं, अब कहाँ के मन्त्री! लेकिन सोम उन्हें अब भी मन्त्रीजी कहता है, जैसे कुछ लोग सैकड़ों नेताओं के होते हुए भी किसी एक को नेताजी कहते हैं, या हस्तरेखा विशेषज्ञ को प्रोफेसर कहते हैं।

मन्त्रीजी ने यहाँ-वहाँ देखा, फिर टेबल के पास जाकर घण्टी दबानी चाही, तभी जैसे उन्हें करेण्ट लग गया। वापस आ गए। जेब से रूमाल निकालकर उन्होंने अपने हाथों से सोफे को साफ किया और फिर हँसते हुए दोनों बैठ गए।

बहुत देर सोम नहीं बोला, उसे लगा जैसे वह मातमपुरसी के लिए किसी के यहाँ गया है। मन्त्रीजी ने ही बातें शुरू कीं, "भाई, कभी आ जाया करो। तुम्हारी कविताएँ मुझे बेहद पसन्द हैं। तुमने चुनाव के पहले एक कविता लिखी थी, क्या कहने! सुनाओ भाई, उसे सुनने का बड़ा मन करता है।"

सोम ने अपने दोस्त—मन्त्री—के चेहरे की ओर गौर से देखा। उसके मन में प्रतिहिंसा के भाव उमड़ पड़े—यही कविता तो सेन्सर का शिकार हुई थी। उन्हीं के दूसरे सहयोगी मन्त्री ने उस अखबार के पूरे अंक पर पाबन्दी लगा दी थी। यदि वह मन्त्रीजी का दोस्त न होता तो जेल जाता।

"क्या सोच रहे हो? सचमुच कविता सुनना चाहता हूँ। पहली पंक्ति क्या थी···हाँ,

क्रान्ति के दरवाजे
खोल रही है जनता

"सुनाओ भाई··· ।"

"नहीं," सोम के मुँह से मन्त्री के सामने पहली बार जोर से आवाज निकली थी, "मैं यह कविता आपको नहीं सुनाऊँगा। मैं इसे भरी भीड़ और कवि सम्मेलनों में सुनाऊँगा और

जोर से कहूँगा··· ।"

"कहना चाहिए, अब तो कहने की आजादी मिल गई है ।"

सोम का मन हुआ, वह कह दे, आपने ही तो लूटा था इसे, अब··· ।

वह चुप रहा ।

"बुद्धिजीवियों का आदर होना चाहिए । वे ही हमारी सांस्कृतिक विरासत के गेटकीपर हैं," मन्त्री ने विश्वास प्रकट किया कि इस देश में ऐसा हुआ है और बराबर होता रहेगा ।

रेम्बल का खुला लॉन अब बिजली के प्रकाश से भर उठा था । बाजू की टेबल खाली हो गई थी । दूसरी ओर एक जोड़ा आकर बैठ गया था । लड़की कुछ फुसफुसा रही थी । एक शब्द सोम और उसके साथियों तक पहुँचा—"गेटकीपर ।"

वे अचानक मौन होकर आगे की बातें सुनने लगे थे । इंडिया गेट में कृषि भवन के बाहर गेटकीपर ने उन्हें 'किस' करते देख लिया था । वह पीछे पड़ गया और मुश्किल से दोनों ने जान बचाई ।

यही कुछ बातें वे कर रहे थे । लड़की उस लड़के को झिड़क रही थी, "आसपास तो देख लेना चाहिए, चोर-उचक्कों की तरह व्यवहार करते हो ।"

सोम को सदमा पहुँचा था—प्रेम करना मनुष्य का अधिकार है । इंडिया गेट सार्वजनिक सम्पत्ति है···फिर । उसने दाँत पीसे तो उसके एक साथी ने पूछा, "क्यों जलते हो ?"

—"नहीं, मुझे लगता है मैं कृषि भवन जाऊँ और उस चौकीदार को मजा चखाऊँ ।"

ठहाका ! जोर का ठहाका !

—"छोकरी देखी और बहक गए ।"

—"कवि जो हैं ।"

—"लेकिन लड़की खूबसूरत है ।"

—"आँखें··· ।"

सोम फिर वहाँ से उलट उठने लगा जैसे धुआँ धीरे-धीरे ऊपर जाता है । वह मन्त्रीजी के पास बैठा है । बरसों बाद इतनी आत्मीयता से बातें हो रही हैं । चपरासी चाय लेकर आ गया था । मन्त्रीजी ने अपने हाथ से चाय बनाकर कप सोम की ओर बढ़ाया था । सोम चाय का कप हाथ में लेकर चम्मच से चीनी चलाने लगा था । तभी टेलीफोन की घण्टी बजी ।

—"हाँ !"

—"ठहर नहीं सकते ?"

—"तो बताओ, दस-पन्द्रह मिनट में खाली हो जाऊँगा ।"

—"एक घण्टा ? मैं क्या करूँगा एक घण्टा यहाँ, पन्द्रह मिनट बाद कार लेकर आ रहा हूँ ।"

सोम चाय पी रहा था। वहाँ से कौन, क्या बातें कर रहा है, उसे पता नहीं, लेकिन उत्तरों से वह सब कुछ समझ रहा है।

—"शाम को जाना जरूरी है।"

—"अच्छा ! अब यह नौबत आ गई ! मेरे लिए शाम खाली नहीं है !"

—"बॉस क्या होता है ! नौकरी में मैंने ही तो तुम्हें रखवाया था न।"

—"देखो, बेहूदा बातें मत करो। मैं जानता हूँ, अब न मैं तुम्हारी नौकरी ले और न तुम्हें नौकरी दे सकता हूँ।"

—"क्या ?···अठारह सौ रुपए महीने तुम्हें दूँ, तभी शाम को मिलना सम्भव है ?"

सोम को बहुत अजीब लग रहा था। उसका मन हुआ, वह उठकर बाहर चला जाए। वह हल्का-सा कुर्सी से उठा भी, लेकिन मन्त्रीजी ने फोन करते हुए ही कह दिया, "नहीं, नहीं, आप बैठिए, अभी जल्दी नहीं है।"

—"किसी और से नहीं, सोम साहब हैं। इनका नाम तुमने जरूर सुना होगा।"

"हाँ, वही कवि सोमजी।···कभी मिलवा दूँगा, बेहद व्यस्त रहते हैं। यहाँ आने का उन्हें अवसर ही नहीं मिलता। हम तो मौसमी आम हैं, कवि, लेखक, साहित्यकार, बुद्धिजीवी ये सब कालातीत हैं··· ।"

सोम को लगा किसी ने जोर से उसके सिर पर चार-पाँच हथौड़े मारे हैं और उससे सिर फट गया है। भीतर-ही-भीतर रक्तस्राव होने लगा है। और···

—"तुम्हें ठहरना पड़ेगा···"

—"मानते क्यों नहीं यार, आज मन्त्री नहीं रहा तो ऐसी बातें ! शाम मेरे साथ बितानी होगी।"

—"तुम्हारे बॉस को देख लूँगा।"

—"शाम साथ नहीं रहोगे, जले में नमक छिड़कते हो, तुम्हारा बॉस मेरा नौकर था··· ।"

था··· ! था ···· ! था ···· ! था। एक झाईं जैसे सोम के मस्तिष्क में गूँज गई। वह निरन्तर गूँजती रही।

टेबल के पास बैठे युगल प्रेमियों में शायद समझौता हो गया था। वे शायद चौकीदार के सदमे से उबर गए थे। लड़की उस लड़के के बालों में हाथ फेर रही थी। कह रही थी, मेरी दोस्त बहुत परेशान है। एक मन्त्री से उसकी वर्षों की दोस्ती है। उसी ने अठारह सौ रुपए महीने में उसकी नौकरी एक बड़े प्रतिष्ठान में लगा दी है। बेचारी एहसान कभी नहीं भूलती, न भूलना चाहती है। अब उसका दोस्त मन्त्री नहीं है तो बॉस चाहता है कि हर शाम वह उसके साथ रहे। धमकी देता है नौकरी से अलग करने की।

—"उसे नौकरी छोड़ देनी चाहिए। प्रेम के भी कुछ अर्थ होते हैं।" लड़का तिलमिलाते हुए कह गया था।

—"यही तो वह भी चाहती है।" लड़की ने बहुत मद्धिम भाव से कहा था, "लेकिन

उसके माँ-बाप कोई नहीं है। उसने मन्त्री से कहा था, 'मुझे अठारह सौ रुपए महीने तुम ही दे दो, मैं नौकरी छोड़ देती हूँ।' "

लड़का उत्तेजित हो उठा था, "जब मन्त्री नहीं है तो अठारह सौ रुपए कहाँ से देगा ?"

लड़की ने उसकी नाक पकड़कर जोर से हिलाई थी, "मासूम दोस्त ! पाँच लाख रुपए तो एक ही दिन में उस लड़की ने मन्त्री को दिलवाए थे।"

—"पाँच लाख !"

—"हाँ, और तुम यह क्यों नहीं समझते कि वह उनकी बहुत गहरी दोस्त है।"

—'जैसे तुम मेरी हो !"

—"मजाक छोड़ो, उससे भी आगे," लड़की ने चाय का खाली कप नीचे रखते हुए कहा था, "वह मन्त्री के बारे में सब जानती है, तब भी बेचारी अठारह सौ रुपए महीने ही तो माँगती है। अथवा··· ।"

—"अथवा चाहती है कि अपने सही बॉस के साथ शाम बिताए। सारी लड़कियाँ एक जैसी होती हैं, सेल्फिश और बेईमान !"

—"शटअप !" लड़की क्रोध में आ गई थी। सोम और उनके साथी फिर उनकी तरफ कान लगाकर उन्हें आँखों से घूरने लगे थे। लड़की उठकर खड़ी हो गई थी, "मैं नहीं ठहर सकती। बिल काउण्टर पर दे देंगे।"

—"लेकिन इतनी-सी बात··· ।"

—"तुम्हें इतनी-सी बात लगती है, तुम नहीं समझते मेरी मित्र का क्या होगा—वह सड़कों पर आवारा घूमेगी और उसका मन्त्री दोस्त···छोटी-सी बात है, कुछ तो कम्प्रोमाइज करना होगा, लड़की मन्त्रीजी को बेहद चाहती है।"

लड़के के रोकने के बावजूद लड़की के पैर आगे बढ़ गए थे और सोम के दोस्त फिर गहराती हुई शाम के ठहाकों में डूब गए थे। ऑक्सीजन भरा हुआ एक गुब्बारा रीगल से लगे हुए लॉन पर अचानक फूट पड़ा था। सोम गुब्बारे से उठता हुआ धुआँ देख रहा था और पल-भर में ही उसमें समा गया था।

—"तुम्हारी जैसी मरजी, घण्टे-भर बाद सही, मैं बोर हो लूँगा तब तक, मैं आऊँगा जरूर, और देखो हाथ जोड़कर कहता हूँ, इतने दिनों की दोस्ती इन खोटे दिनों में मत तोड़ो, शाम तुम्हें मेरे साथ चलना होगा।"

सोम को यह महसूस होते जरा भी देर न लगी कि लड़की ने जोर से पटककर टेलीफोन का रिसीवर नीचे रख दिया है।

"तो सोम भाई, मुद्दतों बाद फुरसत में मिले हैं, तुम्हारी कविता··· ।"

मन्त्रीजी ने कलाई बँधी घड़ी देखने के लिए नीचे नजर झुकाई तो सोम उठ खड़ा हो गया। हँसते हुए बोला, "कॉफी हाउस जाना है, आज थोड़ी देर आप बोर हो लीजिए, मुझे बहुत देर हो रही है। आपकी बात और थी, आप आम सभाओं में दो घण्टे लेट पहुँच सकते

थे, कवि-सम्मेलन के आयोजक मेरी ज्यादा प्रतीक्षा नहीं करेंगे। मेरे एक हजार रुपए का नुकसान हो जाएगा। सौदा तय हो गया तो एडवान्स मिल जाएँगे। लेकिन।"....

मन्त्रीजी सोम के साथ बाहर तक आए थे, "आते रहिए, आपसे बातें करने में मजा आता है। हाँ, जाएँगे कैसे? कहिए छोड़ दूँ। अभी तो मेरे पास समय है।"

"जी नहीं, पुरानी कार है। खराब पड़ी है, कहीं से पैसे आएँ तो ठीक कराऊँ, लेकिन उससे क्या। बाहर स्कूटर मिल जाएगा।" —सोम के पैर तेज हो गए थे। उसे लग रहा था वामन की तरह ये क्यों नहीं फैल जाते। वह बहुत शीघ्र उस बँगले के बाहर जाना चाहता था, जितनी जल्दी यह दूरी पार हो, उतना अच्छा है। इसके पहले कभी उसके मन्त्री दोस्त ने आने-जाने के माध्यमों की चिन्ता नहीं की थी।

बँगले के बाहर निकलकर वह ठहर गया था, उसने लौटकर पीछे देखा था, दस नम्बर के सामने जो तख्ती लगी है, पाँच-दस दिन में बदल जाएगी, कौन जाने फिर यहाँ आने को मिले या न मिले।

तभी बैरे ने बिल सामने लाकर रख दिया। सोम वापस लौट आया था, अब वह पूरी तरह से रेम्बल में था और दोनों के बीच डूब गया था। उसने बिल अदा करते हुए अपने एक दोस्त से पूछा, "दोनों चले गए?"

—"हाँ, लेकिन अलग-अलग!"

एक और ठहाका—"ऐसा भी हो सकता है?" सोम का प्रश्न हवा में तैर गया।

डूबते हुए क्षण

एक भ्रम था, जो नहीं रहा।

लेकिन, सूमा अब भी सिहर जाता है। बूढ़े बाप की खाँसी उसे हिला जाती है। रोज वह यूँ ही खाँसता है। खाँसते-खाँसते उसकी साँस कई बार टँग जाती है। तब वह आँखें फेर देता है। उसकी आँखों के लाल डोरे न जाने कहाँ गायब हो जाते हैं और पूरी आँख धतूरे के फूल की तरह सफेद हो जाती है। तब सूमा की आँखों का खून भी पानी बन जाता है। वह घबरा उठता है और अपने-आप चिल्लाता है—"दद्दा, ओ दद्दा, अब कैसा लगता है ?"

दद्दा सुध में हों, तब तो सुनें। वह छटपटाता है। उसे लगता है, मन के पिंजरे को छोड़कर सुआ अब उड़ा, अब···। पर, सुआ नहीं उड़ पाता। छाती का पसीना ठण्डा हो जाता है। धतूरे के फूल तुरइया के लाल फूल बन जाते हैं। साँस किसी भटके और थके हुए राही की तरह आराम करने लगती है। सूमा तब खुश होकर बाप के सिर पर हाथ फेरने लगता है—बड़े प्यार-दुलार से, बडे दुःख-दर्द से। थोड़ी देर बाद उसका बाप सो जाता है। झोंपड़ी का फटका धीरे से लगाकर वह बाहर आ जाता है और पिंजरे से छूटे पंछी की तरह खुलकर साँस लेने लगता है। उसे फिर यह फिकर नहीं रहती कि बाप की नींद फिर भी खुल सकती है, उसे खाँसी का दौरा फिर भी आ सकता है, और···।

यह रोज का नियम है, इसलिए आज जब फिर उसने बूढ़े बाप की खाँसी की आवाजें सुनीं, तो वह अपनी जगह से नहीं हटा। बड़े आराम से धीरे-धीरे ¯ह अपने सिर की पगड़ी को बाँधता और खोलता रहा और अपनी थकी पिंडरियों को खटिया के पाट के सहारे पीटता रहा। थोड़ी देर खाँसकर उसका बाप चुप हो गया और सूमा ने फिर उस दर्द-भरी, दहलाने वाली आवाज से छुट्टी पा ली। सूमा ने अपनी कमर का करडोरा ढीला किया और उसी खाट पर चित लेट गया।

परकी साल से चिरईडोंगरी में डेवलपमेंट ब्लाक खुला है। ढेर-से अफसर और ढेर-सी मोटरगाड़ियाँ। बेकारों को काम मिल गया है और कहते हैं, कुछ ही सालों में यह गाँव बदल जाएगा। सरकार ने यहाँ जादू की मशीनें लगा दी हैं और जादूगर अफसरों को तैनात कर दिया है। उनके चाहने की बात है और बस, गाँव का नक्शा बदल गया! सामने की टौरियाँ काटी जा रही हैं। इसे सीधे धार की तरह काटा और तराशा जाएगा और फिर नीचे का सूखा मैदान लहराता तालाब बनेगा।

तालाब में जवानी की अँगड़ाइयाँ लेती लहरें होंगी। पहाड़ियाँ उसका मुकुट बनेंगी। तालाब उन पहाड़ियों का चन्दनहार होगा। ऊपर नीलगगन का चन्दोवा होगा और हरी झाड़ियों के बीच की पगडंडियाँ साड़ी के किनारों की तरह चमकने लगेंगी। सूरज दिन में आरती उतारेगा। चाँद हिचकोले दे-देकर रात को सुलाया करेगा। बाँध उस गाँव की जिन्दग़ी होगी। आज जो सूखे से परेशान है, पानी पाकर खुश हो उठेंगे। सूमा ने एक बार अपनी जीभ अपने ही होंठों पर फिराई।

ब्लाक का अफसर कहता था—"सूमा, हम तुम्हारे दिन बदल देंगे। तुम्हारी बहनें कल तक घास काटती थीं, अब वही स्कूल में पढ़-लिखकर मिडिल पास करेंगी।"

सूमा हँस पड़ा था। यह सब उसके लिए सपना है। उसने कहाँ सोचा था यह। सोचता भी है तो एक ही बात—बहनें पढ़-लिख लेंगी तो क्या होगा? घास काटना छोड़ देंगी तो क्या होगा? तब भी अफसर की बातें उसे सहला जाती हैं। थोड़ी देर के लिए वह अपना सूनापन भूल जाता है। बाप का दर्द उसे नहीं सालता। डेवलपमेंट अफसर कहता था—"यहाँ जल्दी ही एक अस्पताल खुलेगा। उसमें सबसे पहले तेरे बाप का इलाज होगा।"

चलो अच्छा है, एक बार इलाज हो जाए तो रोज-रोज की यह किल्लत मिटे। दर्द बाप को होता है, टीस सूमा को उठती है। ऐसे दर्द से मौत भली—हे हरदौल, इसे उठा ले अब। कब तक यूँ तड़पेगा!

सूमा के सिवा उसका और कौन है? इसलिए भी सूमा को लगता है, जैसे उसे किसी ने रस्से से बाँध रखा है। वह जब बाँध में काम करता है, तब भी उसे लगता है जैसे बाप को खाँसी आ रही है। उसकी आँखों के लाल रेशे सफेद हो गए हैं और उसकी छाती पसीने से सराबोर है। वह जैसे सूमा को बुलाना चाहता है, पर उसके मुँह से एक भी शब्द बाहर नहीं आ पाता। उसका मन तब वहाँ नहीं लगता। वह उचाट-उचाट-सा अपनी बँधी नजरों से अपने घर की ओर जानेवाली गैल को देखता रहता है। कभी-कभी उसके मन में बड़े भयावने विचार आते हैं—कहीं ऐसा न हो कि खाँसते-खाँसते…।

सूमा ने करवट ली। दद्दा सचमुच परेशान है। सूना घर कटा खेत होगा, यदि…।

"सूमा, ओ सूमा।" एक खाँसती कराहती आवाज उसे सुनाई दी। यह आवाज उसके बाप की थी। उसकी खाट एक बार जोर से चरमरायी और वह उठकर बाप के पास चला गया।

"हाँ, दद्दा।" उसने अपनी विवश और बँधी नजरों से बाप की ओर देखा।

बैठ जा, आ!"

सूमा बाप की खाट पर बैठ गया। बाप ने बड़े प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा। सूमा को लगा, जैसे उसके हाथ फेरते ही उसके सिर का वजन एकाएक उतर गया है। वह हलका हो गया है। उसे चिन्ता ही किस बात की है।

"अब तबीयत कैसी है, दद्दा?"

बाप ने कराहते हुए करवट बदली और कहा, "अब तबीयत का क्या है, सूमा! साँस की पतली डोर ही तो एक सहारा है। कब टूट जाए, क्या पता? पर···।"

वह कहते-कहते रुक गया। उसके शब्द अपने आप भीतर-ही-भीतर घुल गए। वह चाहकर भी कुछ नहीं कह सका। सूमा ने अपने बाप के चेहरे को देखा और देखता रहा। वह जैसे पूछना चाहता था—दद्दा, पूरी बात कहो न। अब मैं सयाना हो गया हूँ, समर्थ हूँ, नौकरी करता हूँ। मुझे डेढ़ रुपए दिन मजूरी मिलती है, कमी काहे की है। पर, वह कुछ नहीं बोला। बाप ने सहमी नजरों से सूमा को देखा और कहा, "बेटा, पानी पिला दे।"

सूमा ने पानी लाकर पिला दिया।

बाप ने झिझकते हुए पूछा, "एक बात कहूँ, सूमा।"

"कह, दद्दा।"

"तू बार-बार टाल जाता है। मेरी सुनता नहीं। अब तू सयाना और समझदार हो गया है। इस साल ब्याह कर ले—हाँ, मुझे भी नाती का मुँह···।"

सूमा ने मुँह फाड़ दिया। दद्दा कितनी आगे की बात सोच गया। अभी ब्याह ही होना बाकी है, वह नाती देखने की बात करने लगा। फिर कहेगा—उसका ब्याह भी देख लूँ और फिर···! सूमा ने लम्बी साँस ली। यह तृष्णा भी कितनी विचित्र होती है! उसने कोई जवाब नहीं दिया। जवाब न पाकर बाप क्षुब्ध हो उठा, "तू हर बार यही करता है। मैं कहता हूँ और तू सुनकर चुप रह जाता है। यदि तेरी माँ होती तो···।"

माँ की याद आते ही सूमा पिघल गया। वह भी बहू के लिए तड़प उठी थी। बार-बार कहती थी, "बेटा ब्याह कर ले। मैं बहू का मुँह देख लूँ।" पर सूमा ने ब्याह नहीं किया। कहता था, "औरतें अच्छी नहीं होतीं, अम्मा! तुम अभी उसके लिए तरसती हो, आते ही तुमसे झगड़ेगी।"

माँ हँस देती थी। कहती थी, "झगड़ा-फिसाद तो चलता ही रहता हैं। जहाँ दो बरतन होते हैं, आपस में भिड़ते ही हैं।"

पर, सूमा का विचार औरतों की तरफ से अच्छा नहीं है। वह इन्हें जहर की पुड़िया समझता है। वह अपने दो दोस्तों को जानता है—एक की औरत ने अपनी सास को जहर दे दिया था और दूसरी दिन-रात इतनी लड़ी कि उसका बाप वैसे ही परेशान है। शादी कर लेगा, तो उसकी परेशानी बढ़ ही जाएगी, लेकिन वह यह भी जानता है कि उसकी माँ अन्त तक कितना तड़पती रही है, उसकी साँस जा-जाकर लौटी है। वह जैसे बहू का मुँह देखने के लिए बेहद व्याकुल रही है। वह नहीं चाहता कि उसका बाप भी इसी तरह छटपटाये और फिर उसके मरने के बाद वह अपनी शादी करे। इसलिए इस बार उसने अपने बाप को ढाढस दिया, "दद्दा, अब तुम चिन्ता न करो। मैं तुम्हारी बात टालूँगा नहीं।"

सुनते ही उसका बाप उठकर बैठ गया, जैसे वह बीमार नहीं था, बीमारी का बहाना बना रहा था। अपने बाप का यह संकल्प देखकर सूमा खुश हुआ। उसे लगा, हो सकता है,

यदि वह ब्याह कर ले तो उसके बाप का मनोबल और बढ़ जाए और वह अच्छा हो जाए। वह असल में नहीं चाहता था कि उसका बाप किसी तरह की परेशानी उठाए।

सूमा जिस बात को टालता रहा था, वह पूरी हो गई। घूमधाम से उसका ब्याह हो गया। ऐसे लड़के के लिए लड़कियों की कमी नहीं रही। ज्यादा खोज नहीं करनी पड़ी। सूमा को लगा कि जैसे न जाने कितने शिकार वैसे ही तीर-कमान साधे निशाना लगाए बैठे थे। उसने 'हाँ' कहा नहीं कि सब चढ़ दौड़े। अपने मन से उसने शादी कर ली। बाप ने कह दिया था, "जिसे तू चाहे, चुन ले। जिन्दगी तेरे साथ कटेगी।"

सूमा के लिए इतनी छूट बहुत थी। कौन बाप इतनी छूट देता है। वह तो कहते हैं कि अपने लड़के का अच्छा-भला हम खुद जानते हैं। क्या जानेंगे ? जिन्हें साथ रहना है, वे नहीं जानते, ये जानते हैं! सूमा के सामने ऐसी स्थिति नहीं आई। यह भी हरदौल बाबा का परसाद है। जय हो बाबा हरदौल की!

शादी हुई और जंगल में आमों के झाड़ों ने अँगड़ाई ली। फागुन के दौरों के साथ डोलती अलमस्त बौराई हवा ने धरती के रग-रग में कम्पन पैदा कर दी, खेतों ने धानी साड़ी पहन ली। सबेरे का सूरज उनके साथ मिलकर एकरंग हो जाता, तो रात का चाँद साँवरी की कलाइयों में कंगन बनकर अटक जाता, गेहूँ के पौधे भार से जमीन पर झुक-झुक जाते, चना की घेंटिया माला बनने के लिए गुरियाँ तैयार कर जातीं और सूमा, साँवरी के गले में बार-बार झूल जाता। जैसे कोई बड़ी प्यास उसे जनम-जनम से सता रही थी, अब पूरी हुई है तो वह खूब जी भरकर पी लेना चाहता है।

दोनों अक्सर बाहर ही होते। खेतों की मेड़ों पर खड़े-खड़े दोनों हवा के तैरते उन झोंकों को देखा करते जो बार-बार खेतों की छाती से घूम-घूम जाते और एक उफान-भरी लहर वहाँ छोड़ जाते। बूढ़ी और सूखी फसलें भी जवानी की अँगड़ाई में डूब जातीं और उन्हें इस तरह देखकर साँवरी का मन भी अपने में नहीं रह पाता। वह सूमा के गले में हाथ डालकर झूल जाती और जब झूलती तो सूमा चुपचाप यूँ झुक जाता, जैसे गेहूँ की कोई बाल झुक जाती है। वह अपलक साँवरी की उस सूरत को देखता रहता, जो कहीं भी साँवरी नहीं थी। जो बहुत उजली और साफ थी और जिसकी ठोढ़ी के पास एक गोल काला तिल था, जैसे वह काला तिल नहीं, सम्मोहन का एक बड़ा केन्द्र हो। जैसे वही था जो सूमा को अपनी ओर खींचता था। सूमा ज्यों-ज्यों साँवरी में सिमटता साँवरी त्यों-त्यों खिलती जाती थी। वह कई बार खेतों की मेंडों पर ही अपने मन के सुरों को खोलकर धरती को जगा देती और जब वह धरती जो उस समय न अलसाई होती और न किसी की प्रीत की पीर में ही उदास होती थी—जाग जाती, तो सूमा का मन अपने आप कट जाता था। सभी यह देखते हैं, क्या कहेंगे ? क्या सोचेंगे उसके बारे में। सूमा कई बार हिचककर रह जाता, पर साँवरी को किस की फिकर। वह गुच्छों के उभरे रंग की गोलाई लिए थे और जिन्हें देख-देखकर अपने आप उसके मन में समर्पण का एक अनजाना भाव जागता था।

कल ही जैसे साँवरी इस गाँव में आई है। पिया के नेह में रात बीती थी और आज खेतों की देह में उसका दिन बीत रहा है और बीत रहा है तो उसे काट रहा है। वह सोचती है, यह दिन ही क्यों होता है, सूरज क्यों निकलता है, किसके लिए निकलता है, उसे तो इसकी जरूरत नहीं है और जिसकी जरूरत नहीं है, उसका मिलना कितनी खराब बात है। साँवरी तब रूठकर भाग जाती और जब सूमा उसका पीछा करता, तो किसी एकान्त झुरमुट में ही वह दम लेती थी।

सूमा का बाप खुश था। उसे सन्तोष था, वह अपनी औरत की तरह एक अतृप्त आकांक्षा लिए नहीं मरेगा। बेटा सपूत निकला, बाप के मन को जानता है। अब एक ही बात रह जाती है—वह भी सूमा पूरा कर ही देगा। वह अक्सर साँवरी को बुला लेता है। उसे अपने पास बिठाकर उसके सिर पर हाथ फेरता है और अपनी स्वर्गीय मिहरिया के उन विचारों को बतलाता है, जिन्हें लेकर वह इस दुनिया से चली गई। साँवरी सुनती है और सुनती है तो झुक जाती है और झुक जाती है तो लजाकर रह जाती है । तब वह उठकर भीतर भाग जाती है और अपने आप घूमने लगती है।

पड़ोस की औरतें कई बार उसे घूमते देख लेती हैं। सुखिया ने भी उसे देखा था और उसके पास आ गई थी। कहती थी⋯"बड़ी भागवान है री तू साँवरी, जो तेरी सास नहीं है। तू ही राज करती है। वरना⋯ ।"

साँवरी को यह अच्छा नहीं लगा। सास नहीं है, यह तो एक बड़ी कमी है, पर सुखिया उसे समझाती है कि जिस घर में सास होती है, बहू के लिए वही नरक है। उसकी सास दिन-रात उसे परेशान किए है। जरा भी दम नहीं लेने देती। ब्याह के दिन से ही उसने जो काम देना शुरू किया है, तो फिर पीछा नहीं छोड़ती। उसका कहना है कि ये सारी सासें अपना बदला अपनी बहुओं से लिया करती हैं। ये न हों तो बहुएँ खुली साँस ले सकें। सुखिया अपनी बातें तर्क के साथ रखती है, पर साँवरी को अनुभव नहीं है, वह सुखिया की बातों को बुरा समझती है और इस कान से सुनकर उससे निकाल देती है।

खाँसी का दौरा आया और सारे घर में छा गया।

सूमा का बाप अपने को सम्हाल न सका। सूमा काम पर गया था। साँवरी घर में अकेली थी। खाँसी की आवाज सुनी, तो दौड़ गई। अपने ससुर को पकड़कर उसकी पीठ सहलाती रही। छाती पर हाथ फेरती रही, पर किसी का असर नहीं हुआ। वह खाँसता गया। उसकी सिकुड़ी और बँधी आँखें धतूरे के फूल की तरह सफेद होकर निकल आईं।

"साँवरी, इसी तरह इसे दौरे आते हैं। तू काहे को परेशान होती है। सूमा जानता है और इसलिए कभी इस तरह पागल नहीं बनता।"

साँवरी ने सुखिया की ओर देखा और देखती रही। सुखिया ने कहा, "हाँ, री। सच कहती हूँ।"

खाँसी का दौरा उसी तरह चलता रहा। किसी तरह वह वश में नहीं आ रहा था।

साँवरी चाहती थी कि वैद्यजी की दवाई ही पिला दे, पर कहाँ से और कैसे पिलाए। सुखिया थोड़ी देर खड़ी रही और चली गई। साँवरी थोड़ी देर उसे सहलाती रही और जब कोई आराम न लगा, तो वह भी भीतर चली गई। बूढ़ा उसी तरह अपनी जिन्दगी के साथ लड़ता रहा। सबने उसे जैसे अकेले लड़ने के लिए छोड़ दिया है।

साँवरी भीतर आकर भी दम न ले सकी। खाँसी के दौरे रह-रहकर उसे भी कँपा रहे थे। वह अनुभव कर रही थी कि ससुर को बड़ा दर्द है, पर अपने को निस्सहाय पाकर वह किसी तरह समझा रही थी।

थोड़ी देर के बाद दौरा खतम हो गया और बूढ़ा कटे हुए झाड़ की तरह वहीं बिस्तर पर लुढ़क गया। साँवरी ने जाकर देखा, वह औंधा पड़ा था और उसकी आँखें अब भी खुली थीं। उसने देखा, वह साँस ले रहा है। तभी सुखिया आ गई। वह मुस्करा रही थी। बोली, "मैंने कहा था न, इसे इसी तरह दौरे आते हैं। यह इसी तरह मरने लगता है; पर⋯।"

"बेचारा!" साँवरी ने कहा और भीतर चली गई।

उसे यह घर उचाट लगने लगा। सूमा दिन-भर काम में लगा रहता है और बाँध बनाने जाता है। वह भी चाहती है, कहीं उसे काम मिल जाए, वह भी काम करने लगे। पर, यह बूढ़ा काम नहीं करने देता। उसे देखनेवाले कोई तो चाहिए। साँवरी को यह बात बहुत अखरती है। वही उसे देखने के लिए है। वही सब करने के लिए है। अपने घर से क्या इसीलिए आई है? एक परेशानी वहाँ भी थी। उसका बाप भी दमे का रोगी था। वर्षों वह बीमार रहा और जब तक बीमार रहा, साँवरी ही उसकी सेवा करती रही। उसकी माँ जरा भी परवाह नहीं करती थी। जिस दिन वह मरा, उस दिन भी वह भीतर नहीं गई। मरने के बाद ही उसने देखा और देखा तो इस तरह रोई, जैसे दुनिया-भर के सारे पहाड़ उसी के सिर पर टूट पड़े हैं। साँवरी बड़ी लड़की थी और बड़े होने का धरम अन्त तक चुकाती रही। किसी तरह वहाँ से छूटी है, तो यहाँ आकर फँस गई।

उसे पहली बार लगा, जैसे वह गलत जगह आ गई है। ब्याह ही करना था, तो कहीं और चली जाती। लेकिन इसके साथ ही सूमा का चेहरा उसके सामने झूलने लगता है। सूमा उसे अपनी आँखों में बन्द रखने के लिए कितना उत्सुक रहता है। जब तक घर पर रहता है, उसका साथ नहीं छोड़ता। उसकी हर बात मानता है? तब⋯? लेकिन इससे क्या? मुसीबत तो उसे ही उठानी पड़ती है। वह सोचती है सूमा क्या, जो भी उसे मिलता, इसी तरह उसकी चाकरी करता। सूमा जो कुछ करता है, नई बात नहीं है। उस जैसी उजरी और साफ लड़की किसे मिलती है। ब्याह के पहले गाँव के ही नहीं आन-गाँव के दर्जनों लड़के उसके पीछे लगे रहे हैं। हर कोई उसे अपनी आँखों की पुतलियों में बैठाने के लिए आतुर रहा है।

इस विचार के साथ ही सूमा के प्रति भी उसके मन में विरक्ति के भाव जागे। उसे लगा यहाँ चैन नहीं है, न मिल सकता है।

बूढ़ा अब सम्हल गया था। उसकी आवाज साँवरी ने सुनी। वह पानी माँग रहा था। साँवरी ने मुँह बनाया और पानी ले जाकर उसके हाथ में दिया। वह कुछ और कहना चाहता था, पर साँवरी एक घृणित नजर डालकर वहाँ से चली आई। बूढ़े ने पहली बार देखा, साँवरी ने उसकी बात नहीं सुनी। वह कितना चाहता है, अपनी बहू को। बहू भी उसके लिए, सब करती रही, पर अब पहली बार··· ।

शाम को सूमा घर लौटा, तो साँवरी बाहर नहीं आई। यह भी अजीब बात थी। सूमा दौड़ते भीतर आया। साँवरी रोटियाँ सेंक रही थी। सूमा को लगा, वह रोटियाँ नहीं सेंक रही है, उसके कलेजे को निकालकर भून रही है। उसने कितना चाहा है कि उसके आते ही साँवरी उसे दरवाजे पर हँसती-मुस्कराती खड़ी मिले। बोला, "मैं आ गया हूँ, सावँरी।"

साँवरी के उसकी ओर देखे बिना ही कहा, "खाना तैयार है। हाथ-मुँह धोकर खा लो।"

सूमा के मन पर पहाड़ टूट पड़ा। तब भी उसने पूछा, "दद्दा।"

"हाँ, अभी जिन्दा हैं वह।"

सूमा चौंक पड़ा। ऐसी बात वह साँवरी के मुँह से सुन रहा है। उसे गुस्सा आ गया। लगा, वह साँवरी को पकड़े और दो घूँसे उसकी पीठ पर जड़ दे। पर, उसने कुछ नहीं कहा। अपने बाप के पास चला गया। बाप कटे हुए खेत की तरह निढाल पड़ा था। सूमा को देखते ही जैसे जाग गया। सुबह से उसे खाना नहीं मिला। उसने खाना माँगा, तो सूमा का खून खौलने लगा। साँवरी ने खाना क्यों नहीं दिया! बाप ने बात रख ली। बोला, "बेटा, आज बड़े जोर का दौरा पड़ा था। बहू बेचारी क्या जाने। उससे जितना बना, उसने किया। फिर मैं सो गया। सो क्या गया, हिम्मत नहीं रही सो पड़ रहा। उसने समझा होगा मैं सचमुच सो गया हूँ। बस, इसी से खाना नहीं दे पाई, शायद।"

सूमा भी जानता था कि साँवरी अपने ससुर का बराबर खयाल रखती है। बाप की बात उसे समझ में आई। हँसता हुआ वह रसोईघर में चला गया। उसने जाते ही बड़े प्यार से साँवरी के गाल दबा दिए और उसका घूँघट खोल दिया। साँवरी ऐंठी रही। सूमा ने बाप को खाना खिलाया।

फिर खुद आकर खाने बैठ गया। साँवरी आखिर औरत थी। औरत में समझ की कमी होती है। अपनी बात किस तरह पति के सामने रखनी चाहिए, कम औरतें जानती हैं। मुँह फुलाए वह खाना परोसती रही। सूमा मजाक करता रहा। साँवरी पर कुछ असर नहीं हुआ। बहुत देर बाद वह बोली, "देखो, मुझे अब अपने घर पहुँचा दो।"

"आखिर क्यों, साँवरी। सबेरे तक तो तू··· !"

"हाँ, पर अब मैं नहीं रहना चाहती।"

सूमा काँप गया! क्या हो गया? दद्दा ने कुछ कह दिया! उसने पूछा, "दद्दा ने··· ।"

"हाँ।" वह चिल्लाई, "तेरे बाप की यह खाँसी मुझसे नहीं देखी जाती और इतनी सेवा

मुझसे नहीं होती। अपना घर छोड़कर आई थी कि फिर वही परेशानी नहीं होगी। किस्मत ऐसी कि यहाँ भी वही बात है !"

"तो इसके लिए मैं क्या करूँ, साँवरी।" उसने बड़े प्यार से कहा।

"तुम कुछ न करो। मैं ही चली जाती हूँ।"

"तू जानती है, दद्दा को कितना सदमा लगेगा। उसकी···।"

"इसकी फिकर तू कर। वह तेरा बाप है।"

यह सुनते ही सूमा को क्रोध आ गया। साँवरी को कितना प्यार करता है, और एक वह है, जो उसके लिए ऐसे शब्द कहती है। सूमा को लगा, जरूर कुछ हुआ है, किसी ने इसे भड़काया है, वरना अब तक उसने कभी कुछ नहीं कहा। बराबर लगन के साथ वह ससुर की सेवा करती रही है। सूमा इस से भी चुप रहा। खाते-खाते उसने साँवरी को पकड़कर अपनी ओर खींच लिया। साँवरी बिगड़ी रही। इस प्यार और मनुहार के सामने भी वह नहीं पिघली। पर, थोड़ी देर के बाद उसने मुस्करा ही दिया। इस तरह उसका रूठकर मुस्कराना सूमा को बहुत अच्छा लगा। उसने कहा, "साँवरी, तू इसी तरह रोज रूठकर मुस्कराया कर। तेरा इस तरह मुस्कराना ज्यादा अच्छा लगता है।" औरत की जात, उसकी भी अपनी बिसात होती है। सूमा ने रूठ कर मुस्कराने की बात कही तो साँवरी को लगा, उसके इस तरह रूठने से भी सूमा को खुशी होती है। तब··· ? वह अब नहीं रूठेगी। अपनी खुशी वह क्यों किसी को दे ? साँवरी का चेहरा बदल गया। वह जोर से मुस्कराने लगी। वह फिर प्यार जताने लगी, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। सूमा का सूखा मन फिर फैलकर फूल गया। वह हँसता-गाता बाहर आ गया।

अब बूढ़ा जीना नहीं चाहता। इस तरह जीना भी कोई जीना है ! पर, मरना उसके हाथ में हो तब न ! उसने सूमा को बुलाया और बड़े प्यारे से कहा, "बेटा, अब यह सब नहीं भोगा जाता। पाप के फल बहुत भुगत चुका। कोई तो रास्ता निकाल !"

सूमा ने उदास होकर कहा—"दद्दा, आज वैद्यजी से कहूँगा !

"अरे, वैद्य के किए क्या होगा। सूमा, तेरे ब्लाक में अस्पताल बनने वाला था न ?"

"हाँ, दद्दा। बनेगा तो, पर अभी समय लगेगा।"

"कितना ?"

"ब्लाक-आफीसर कहता था, जाँच हो गई है। आर्डर आने में देर लगेगी।"

जाँच हो गई है, तब भी आर्डर आने में देर लगेगी, यह बात बूढ़े की समझ में नहीं आई। उसने कहा, "यह तो कुछ अजीब-सी बात लगती है, सूमा।"

सूमा के लिए यह बात अजीब नहीं थी। दो बरस से वह ब्लाक में काम कर रहा है। वह देख रहा है, हर बात यहाँ इसी तरह होती है ! न जाने ऐसी कितनी बातें हैं, जिनकी जाँच दो साल पहले हो चुकी है, आर्डर अब तक नहीं आया। मन्त्री आते हैं और चले जाते हैं। आते हैं तो दौड़-धूप मच जाती है, जाते हैं तो आशा की एक गठरी सबके हाथों में थमा जाते

हैं, पर उसकी गाँठ कभी नहीं खुलती। न जाने किस तरह गाँठ बँधी होती है कि कोई उसे नहीं खोल सका! सूमा को यह बात अजीब लगी। उसका बाप तो उसी अस्पताल के सहारे साँसे ले रहा है। उसे भरोसा है—आज नहीं तो कल जरूर अस्पताल खुलेगा और कल दूर नहीं है। और अस्पताल खुलने-भर की देर है, वहाँ कोई ऐसा जादूगर डॉक्टर होगा जो बस अपना हाथ धर देगा और उसकी खाँसी हमेशा के लिए ठीक हो जाएगी। सूमा को लगा, ऐसी गलत आशा लेकर उसका बाप कब तक चल सकेगा! इससे तो अच्छा है, वह इस दुनिया से ही चला जाए! साँवरी भी रूठना बन्द कर देगी और उन दोनों की जिन्दगी में जिस विष का मिलना आरम्भ हो गया है, वह छँट जाएगा। पर··· !

साँवरी रात को सब भूल गई थी। ससुर के साथ उसने जो किया था, उसका उसे पछतावा हो रहा था। बेचारा बूढ़ा, वह भी क्या करे! उसके हाथ कुछ हो तो··· ! लेकिन यह सब कब तक वह भोगेगी?

सूमा ने कहा, "साँवरी, तू ठीक कहती है। दद्दा का दर्द बढ़ता ही जाता है।"

साँवरी ने प्यार-भरी आँखों से उसकी ओर देखा और मुस्करा दिया। बोली, "यह तो तू ठीक कहता है।"

"तब?" सूमा ने पूछा।

साँवरी ने उसी तरह जवाब दिया, "जैसा तू कह।"

"मेरी बात मानेगी?" सूमा ने पूछा।

"क्यों नहीं। कह तो।"

"अभी-अभी तो रूठी थी और अब··· !"

साँवरी ने कुछ इस तरह मुँह बनाया, जैसे वह कहना चाहती है, इस समय भी ऐसी बात कहता है। अनाड़ी कहीं का!

सूमा अब भी परेशान था। साँवरी को वह अपनी छाती से लगाए खाट पर बैठा था। रात साँय-साँय कर रही थी। दूर कुत्ते भौंक-भौंककर रात को जगाने को कोशिश कर रहे थे, पर रात की साँसें तेज थीं। वह जोर के खर्राटे ले रही थी। बूढ़ा सो रहा था। उसका गला अक्सर सोते समय जोर से बजता है। वह बज रहा था। सूमा परेशान था और साँवरी उसे चिढ़ा-चिढ़ाकर मजा ले रही थी। सूमा ने कहा, "साँवरी, तेरी परेशानी मैं नहीं देख सकता। अभी ब्याह हुए कितने दिन हुए हैं और तेरे सिर परेशानी आ गई। तू ऐसा कर··· !" साँवरी बँधी नजरों से उसे देखने लगी। सूमा ने कहा, "तू अपने घर चली जा। जब मेरा बाप अच्छा हो जाए, तू फिर आ जाना।"

साँवरी ने उसी तरह हलके ढंग से कहा, "तेरा बाप अच्छा हो जाएगा।"

"हाँ, साँवरी, किसी तरह तो अच्छा होगा ही—इस पार या उस पार।"

साँवरी ने मुँह फाड़ दिया। वह सूमा के हाथों से छूट कर दूर हो गई और सूमा की ओर आँखें फाड़कर देखने लगी। सूमा काँप गया। क्या कह दिया उसने। वह नहीं चाहता था,

साँवरी किसी तरह बिगड़े। ये दिन, कितने दिन रहते हैं। फिर तो वही दिन आते हैं, जो उससे बड़ी उमर के और लोगों में आ गए हैं। उसने कहा, "तू नाराज हो गई ?"

साँवरी ने आँखें फाड़कर कहा, "हाँ!"

"तो माफ कर दे।"

"कैसे कर दूँ।" साँवरी ने इस बार दाँत पीसे। बोली, "तू आदमी है ? कैसा आदमी है रे, तू ? अपने बाप से जरा भी प्रीत नहीं है। अरे, मेरा बाप था तो मरते तक मैंने उसका साथ नहीं छोड़ा। वैद्य कहता था, इसका रोग लगने वाला है, पर बाप से भी बढ़कर कोई बड़ा रोग होता है ? मेरी माँ छूत मानती रही, पर मैंने कभी नहीं माना—और तू।"

सूमा ने पल-भर कुछ सोचा और फिर सम्हलकर बैठ गया। जो काम वह कहने और डाँटने से नहीं करा सकता था, इस तरह उसने करा लिया। वह तब भी बनता रहा। बोला, "साँवरी, वह तो ठीक है, पर तेरी खातिर··· ।"

"मेरी खातिर तू अपने बाप को भी छोड़ देगा ? कैसा मरद है रे।"

"पूरा मरद हूँ, साँवरी, पूरा। इसीलिए तो बाप को भी छोड़ सकता हूँ, तुझे नहीं।"

"चल हट।" साँवरी ने उसे हलके से टाल दिया, "खबरदार, फिर मेरे ससुर के बारे में ऐसा कहा तो। वह मेरा भी बाप है। मैं उसकी सेवा करूँगी। तेरा सिर क्यों चढ़ता है।" सूमा के मन में आया, वह कह दे, मेरा सिर क्यों चढ़ेगा, पर वह कुछ नहीं बोला। उसने साँवरी को प्यार-भरी नजरों से देखा और देखता रहा। साँवरी दूसरे ही पल सिमटकर उसके बहुत पास आ गई। उसने सूमा के बाल पकड़कर खींचे—"अब भी देख रहा है रे, कायर··· !"

सूमा ने अनुभव किया एक बड़ा परदा हट गया है और एक भ्रम जो बनता जा रहा था, मिट गया है। यह सोचते ही उसे बड़ा सन्तोष मिला। वह साँवरी की साँसों में डूब गया।

महतू ने आगे बढ़कर माही के हाथ से खरहरा छीन लिया और अमराई के नीचे की जमीन साफ करने लगा। जिस जल्दी में और जिस लगन के साथ महतू यह काम कर रहा था, उसे देखकर उसकी मिहरिया को जलन हो रही थी। वह चुपके-चुपके आँखें उठाकर सयाने गुनियाँ की तरफ देख रही थी और गुनियाँ ध्यान लगाए महतू की पैंतरेबाजी देखने में मगन था। जब वह झाड़ चुका तो गुनियाँ ने आगे बढ़कर उसे थपथपाया और सुकवरिया की ओर देखकर बोला, "देख सुवकी, तू कहती थी, महतू अलाल है और दिनभर पड़ा-पड़ा खाता है, काम-धंधा तो उसके बाप से भी नहीं हुआ। आज देखा कमाल तूने उसका, अब शिकायत तो नहीं करेगी?"

सुकवरिया की आँखें नीचे झुक गईं। सब लोग खूब खिलखिलाकर हँसने लगे, उनकी खुशी का ठिकाना नहीं था।

जमीन ने जब सारा गोबर सोख लिया, तो सुकवरिया ने मक्का के आटे से चौक पूरा और उस पर कच्चे तथा पक्के चावल बगरा दिए। गुनियाँ ने अपनी चकमक महतू की ओर बढ़ाई। महतू ने दीपक की जोत जला दी। जोत जलते ही सब लोग ध्यान लगाकर गुनियाँ की ओर देखने लगे।

गुनियाँ नारायणदेव की प्रार्थना में व्यस्त हो गया। दो-चार मन्त्रों के बाद देवता को धूप दी गई और सारे लोगों की आँखें सुअर पर अटक गईं। वह जमीन में मुँह लगाए पूर्ववत् खड़ा था और सारे चावल उसी तरह बिखरे पड़े थे। गुनियाँ के चेहरे पर चिन्ता की दो-चार रेखाएँ उभरती दिखाई दीं। उसने देवता का नाम लेकर नारियल फोड़ा, उस पर लांदा (शराब) चढ़ाई और अपने मन्त्रों द्वारा वह सुअर की चेतना जगाने लगा। सुअर मन्त्रों के प्रभाव से झूमने लगा और जैसे ही उसने चावल के दाने अपने मुँह से उठाए कि पीछे से महतू ने आगे बढ़कर मूसर से उसकी पूँछ काट ली। पूँछ के कटते ही नारायणदेव की आत्मा सुअर पर उतर आई, फिर उसने खूब चावल खाए। गुनियाँ ने अक्षत-चन्दन से उसकी पूजा की और आरती उतारी। बूढ़ी बैसखिया तब तक बाजू में गड्ढा बना रही थी। जब गड्ढा खुद गया तो उसने उसमें गरम पानी भर दिया। तेलामी, महतू और गुनियाँ, तीनों ने सुअर की पिछली टाँगें पकड़कर उसका मुँह उस गड्ढे में जैसे ही डाला कि वह दर्द-भरी आवाज से चीख उठा। औरतों की खुशी का ठिकाना नहीं, उनका नारायणदेव जैसे प्रसन्नता से चिल्ला रहा था। देव प्रसन्न हो गए हैं, तो अब बरस-भर सारा गाँव बाधाओं से

मुक्त रहेगा, कोई बीमार नहीं पड़ेगा और न किसी को भूत-प्रेत या चुड़ैल सताएगी। सुकवरिया न जाने क्यों सबसे ज्यादा खुश थी। कमल को देखकर जैसे भौंरा गूँजने लगता है, सुअर के खून की धार को देखकर, काले बदन पर सेमल की तरह चमकते उसके ओंठ भी गुनगुना उठे—

तेर ना नी न ओ, तेर नाना के नाँव रे।
तेर ना ना, ना ना, तेर नाना के नाँव रे॥
तेरे ना ना ओ—

दूसरी औरतों ने सुकवरिया का साथ दिया, ढोलची भी मैदान में उतर पड़े, नगाड़े वालों ने जैसे इन पर विजय पाने की कोशिश की और देखते-ही-देखते वहाँ नाच-गाने का मजमा जम गया। गुनियाँ ने महतू की पीठ पर एक हलका-सा धक्का दिया और आँखों तथा ओठों के सहारे कुछ ऐसी बात कही कि उससे न रहा गया। उसने दौड़कर सुकवरिया की कमर में हाथ डाल दिया। उसकी देखा-देखी चार-पाँच जोड़े भी मैदान में उतरे और गाँव के बूढ़े इस उत्सव का आनन्द लेने में तन्मय हो गए।

ढोल और नगाड़े बजते रहे जवान जोड़े अपने रंगीन पैंतरे दिखाते रहे और अधेड़ औरतें अपने गुजरे जमाने की याद में मस्त उनके गीत का साथ देती रहीं। गुनियाँ और गाँव का बूढ़ा मुखिया बेहद खुश यह तमाशा देखते रहे। आज नारायणदेव ने उनकी पूजा स्वीकार कर ली थी। यह उत्सव शायद घंटों चलता यदि सुकवरिया की नजर काले घोड़े पर सवार उस गोरे अफसर पर न पड़ती। उसे देखते ही उसने नाचना-गाना बन्द कर दिया। महतू का हाथ छुड़ाकर वह बूढ़े मुखिया से जा लिपटी। बात-की-बात में सारी खुशी हवा में उड़ गई, जैसे पूर्णिमा का पूरा निखरा चाँद काले मेघों की छाया में ढक गया। गोरे अफसर के साथवाला दूसरा अफसर गरजा, "क्या बदतमीजी है?" उसकी आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ निकल रही थीं। सब लोग भयभीत खड़े थे। दोनों अफसरों के हाथों में पिस्तौल थी और उनके पीछे चार-पाँच सिपाही भी थे। वे हाथों में कोड़े लिए थे।

गोरा अपने काले घोड़े से नीचे उतर पड़ा। औरतों पर उसने एक उड़ती नजर डाली और अन्त में सुकुवरिया पर उसकी तीखी नजर अटक गई। सिर से पैर तक उसने उसे घूरा, उसके उभरते जोबन और दमकते चेहरे को देखकर मन-ही-मन वह न जाने क्या बुदबुदाया। साथवाले काले अफसर ने उसके सामने सिर झुका दिया, पर गोरे ने उसकी परवाह नहीं की। वह उसी बूढ़े मुखिया की ओर बढ़ा, जिससे लिपटी सुकवरिया एक सुकुमार लता की भाँति काँप रही थी।

"टुम ये किया करटा?"—गोरे ने आँखें लाल-पीली करते मुखिया से पूछा। मुखिया उसकी बात नहीं समझ पाया। सुकवरिया को छोड़कर वह दो कदम आगे बढ़ा। बढ़कर उसने दोनों हाथों से गोरे का अभिवादन किया और प्रश्न-भरी मुद्रा में उसके मुँह को निहारने लगा।

"क्या टुकुर-टुकुर देखता है, बदतमीज ?"

बूढ़ा अब भी चुप था। काले अफसर ने एक सिपाही के हाथ से कोड़ा छीनकर मुखिया की पीठ पर दो-चार जड़ दिए। वहाँ खलबली मच गई। औरतें एक तरफ इकट्ठी खड़ी हो गईं। महतू को खून सवार हो गया। अपने तरकस से एक तीर निकालकर उसने अफसर को निशाना साधा ही था कि गुनियाँ ने पीछे से उसका हाथ पकड़ लिया। काला अफसर और उसके सिपाही आगे बढ़े। वे महतू को पकड़ना चाहते थे, पर गोरे ने रोक दिया। काले अफसर को पास बुलाकर उसने पूछा,—"ये क्या गरबर है ?" काले अफसर ने यही बात गुनियाँ ने पूछी तो उसने बताया कि, "हम लोग 'लारूकाज'[1] मना रहे हैं।"

"लेडकाज ! ये क्या बाट है ?" गोरे ने जिज्ञासा से पूछा। अब उसने अपना कोड़ा बन्द कर लिया था और क्रोध की जगह मुसकान आ गई थी। यह देखकर सारे बैगा कुछ आश्वस्त हो गए थे। गोरे के साथवाले बड़े सिपाही ने, जो अपने सहायकों के साथ खुसमुस कर रहा था, आगे आकर साहब को बताया कि 'लारू-काज' बैगाओं का एक उत्सव है। इसे वे साल में एक बार मनाते हैं और नारायणदेव की पूजा करते हैं। नारायणदेव इन्हें विपत्तियों से बचाता है। वे प्रार्थना करते हैं कि अगले साल-भर में गाँव पर कोई आपत्ति न आए।"

गोरे ने पूछा, "यह नारायणन, कौन देव है ?"

गुनियाँ को जैसे अब गोरे की बात समझ में आ गई थी। बोला—"हुजूर, ये बीमारियों का राजा है। सारी बीमारियाँ इसी के कहने से आती हैं। हमारे गाँव में भूत-प्रेत और चुड़ैल भी हमला करते रहते हैं। यह देवता बड़ा तेज है, वह इन बाधाओं से भी हमें बचाता है।"

उसने गाँव के गेंवड़े पर बनी पत्थर की कोरी और झण्डे लगे स्थान की ओर इशारा कर बताया कि—"वह है हमारा नारायणदेव।"

गोरे ने सिर हिलाया, जैसे वह सब कुछ समझ गया हो। यहाँ-वहाँ उसने नजर फेंकी, उस गड्ढे की ओर जहाँ सुअर उल्टा खड़ा था, अँगुली दिखाते हुए उसने कहा,—"बड़ा जंगली आदमी है, टुम लोग। कैसा जानवर को मारटा है !"

'जंगली' शब्द सुनकर गुनियाँ ने प्रसन्नता से कहा, "हाँ हुजूर, हम जंगल में रहता है। सुअर हमने नहीं मारा, देवता को भेंट दी है। उसने यह भेंट मंजूर कर ली है। अब हम सब लोग यह प्रसाद खाएँगे।"

उसने महतू को इशारा किया। महतू ने सुअर को गड्ढे से निकाला और अपनी टँगिया से उसे काटने लगा। काले अफसर और सिपाहियों ने नाक-भौंह सिकोड़ी। गोरे ने कहा, "ट्रेमेन्डस ! ये आदमी बहुत बड़ा जानवर है।" काले अफसर की ओर लौटकर उसने कहा, "आज रात यहीं रेस्ट करेगा।" फिर सुकवरिया की ओर इशारा कर वह बोला, "बड़ा

1. ऊपर उत्सव का जो वर्णन कहानी में किया गया है, वह 'लारूकाज' का सही वर्णन है।

खूबसूरत लौंडी है।"

काला अफसर सबकुछ समझ गया। उसने अपने सिपाहियों को उचित आदेश दे दिए और सारी फौज गाँव के अन्दर चली गई।

गाँव के बाहर दूसरी ओर एक छोटा-सा पुराना टूटा-फूटा पक्का मकान था। लड़ाई के जमाने में उसे बनवाया गया था, पर कोई उपयोग नहीं हो सका। हवा और पानी की बौछारों को सहता वह जर्जर हो गया था। गाँववाले दिन में कभी उसकी परछी में बैठ-उठ लेते, पर रात में वहाँ कोई नहीं ठहरता। वे इसे 'राजामहल' के नाम से पुकारते थे। इस महल के बारे में उस गाँव में कई किस्से कहे जाते थे। यहीं गोरे अफसर के ठहरने का बन्दोबस्त किया गया।

गाँव के मुखिया को जब यह खबर लगी कि यह गोरा अफसर उस जिले का सबसे बड़ा साहब है और उसके गाँव की जाँच करने आया है, तो वह कोड़े की मार भूल गया। अपने को वह धन्य मानने लगा। इतने बड़े अन्नदाता के हाथ की मार उसे भगवान के वरदान-जैसी लगी। उसने सिपाहियों को सलाह दी कि सरकार को उस महल में न ठहराया जाए, पर किसी ने उसकी बात न मानी। मुखिया से न रहा गया। गाँव में आनेवाले हर अफसर की सेवा करना उसका काम था। वह जानता था कि इन्हीं अफसरों के बल पर गाँव सुखी रह सकता है। यदि कोई नाराज हो जाए तो न जाने कब, किस आदमी पर, कौन-सी विपदा आ पड़े। शायद यही कारण है कि इस गाँव के किसी आदमी ने कभी अदालत नहीं देखी। गाँव के सारे झगड़े वह मुखिया बड़ी होशियारी और निष्पक्षता से निपटा देता था। उसने कभी किसी का पक्ष नहीं लिया। इसलिए सारा गाँव उसे इज्जत से देखता था। मुखिया को डर था कि यदि रात को गोरे अफसर पर किसी भूत या चुड़ैल ने धावा बोल दिया, तो उससे ज्यादा नुकसान सारे गाँव का होगा। वह मालिक है, गाँव में आग लगवा सकता है, गाँव के एक-एक आदमी को जिन्दा जलवा सकता है। वह हाथ में लाठी लिए राजामहल आ पहुँचा। दरवाजे पर उसने माथा टेका, तो गोरा अफसर बेहद खुश हुआ। आगे बढ़कर उसने मुखिया के हाथ पकड़ लिए, बोला, "अमको बहोत रंज है, टुमको कोडा मारा··· अमको मुआफ कर दो।"

मुखिया ने सिर झुकाया—"यह क्या अन्नदाता! ऐसा 'भाग' किसे नसीब होता है!"

गोरा लज्जित हुआ। उसने मुखिया को बैठने के लिए कुर्सी दी, पर उसने स्वीकार नहीं की। वह दरवाजे के बाजू में दीवाल से टिककर बैठ गया। हाथ जोड़कर बोला, "गुस्ताखी माफ हो, हुजूर ने इस महल में ठहरकर अच्छा नहीं किया।"

गोरे ने सिगरेट की एक कश खींचते हुए कहा, "टुमारा मतलब अम नहीं समझा।"

"हुजूर"—हाथ जोड़कर मुखिया बोला, "इस बँगले में बहुत बड़ी बाधा है सरकार! हर रात को यहाँ चुड़ैल आती है, छम-छम करती हुई। लड़ाई के बाद यहाँ कोई नहीं ठहरा। लड़ाई के जमाने में यह बँगला बना था। तब यहाँ दो पंजाबी सिपाही रहते थे। उनमें से एक

तो थोड़े दिन बाद कहीं चला गया, दूसरा अकेला रह गया। वह बड़ा नेक आदमी था। सारे गाँव की उसके साथ दोस्ती थी, पर जब वह लाँजा की बेटी झिरिया से प्रेम करने लगा, तो सारा गाँव उससे चिढ़ गया। गाँव-भर में दोनों के प्रेम के किस्से कहे जाने लगे। जहाँ देखो, वहाँ उनकी चर्चा होती थी। ठीक भी तो है, हम बैगा पराए आदमी को भला अपने जात की बेटी पर आँखें उठाते कैसे देख सकते हैं। एक दिन गाँव के सारे बैगा अपनी टँगिया और फरसा लेकर इस बँगले पर आ धमके। मैंने उन्हें बहुत समझाया, तब कहीं मुश्किल से वे माने। पर दूसरे ही दिन झिरिया की शादी एक ऐसे लड़के से कर दी गई, जिससे वह चिढ़ती थी। जिस रात उसका ब्याह हुआ, उसी रात वह पीपल के झाड़ में फाँसी लगाकर मर गई।" मुखिया ने सामने अँगुली दिखाते हुए कहा, "वह रहा पीपल का झाड़, जिसकी डाल में झिरिया लटक गई थी। उसकी मृत्यु से वह पंजाबी सिपाही इतना दुःखी हुआ कि उसने अपनी वर्दी में आग लगा दी और झिरिया के साथ मरने को तैयार हो गया। गाँव-भर ने उसे समझाया, पर वह दीवाना था झिरिया के पीछे। जहाँ उसे दफनाया गया था, वह रोज वहाँ जाकर घण्टों बैठा रहता था। कई दिन उसका यही क्रम रहा और अन्त में एक दिन वह गाँव छोड़कर चला गया। आज तक फिर उसका पता नहीं लगा। जाते समय किसी से कहता रहा था कि—'झिरिया रोज रात को उससे मिलने बँगले में आती थी और उससे कहती थी कि वह उसके पास आ जाए।' पंजाबी चला गया, पर झिरिया की रूह रोज रात को इसी कमरे में, जहाँ वह सिपाही सोता था, आती है और उसे खोजती रहती है। मरने के बाद झिरिया चुड़ैल हो गई। इसलिए उसकी रूह से हर कोई डरता है।"

उसने आगे बतलाया, "मेरे घर का ही एक किस्सा है, सरकार। दो बरस पहले घर में लड़की हुई थी। मेरी बड़ी लड़की जब यह समाचार बताने बाहर आई, तो झोंपड़ी में एक उल्लू बैठा दिखा। उसे अशुभ समझकर उसने पत्थर मारा। उस पत्थर को उठाकर उल्लू भाग गया और उसके बाद से ही मेरी लड़की घुलने लगी…।"

इसी समय काले अफसर ने कमरे में प्रवेश किया, एक लम्बी सेल्यूट लगाकर बोला—"सब इन्तजाम हो गया है, सरकार। हुजूर के मन-बहलाव के लिए नाच-गाने का प्रबन्ध भी हो गया है।" फिर वह मुखिया की ओर मुड़कर बोला—"क्यों रे, सरकार से क्या शिकायत कर रहा था?"

"शिकायत नहीं हुजूर…।"

"हाँ, शिकायत नहीं तो क्या है, हुजूर को भय दिखाता है? उल्लू पत्थर ले गया, तो तेरी लड़की घुलने लगी! अभी झूठ बोलना सीख…।" काले अफसर ने बड़ी-बड़ी आँखें तरेरते हुए कहा।

मुखिया ने झुककर हाथ जोड़े, "सही कह रहा हूँ मालिक, उस उल्लू ने वह पत्थर पानी में भिगोकर किसी ऊँची टौरिया पर रख दिया होगा। जैसे-जैसे पत्थर का पानी सूखता गया, मेरी लड़की भी सूखती गई। ओझा (गुनियाँ) ने बड़ी कोशिश की, पर उस चुड़ैल ने मेरी

लड़की को न छोड़ा···झिरिया मरकर चुड़ैल बनी और न जाने कितने वेष में वह गाँव के चक्कर लगाती रहती है। मेरी मिहरिया गाँव में सयानी मानी जाती है। वही झिरिया और पंजाबी सिपाही के प्रेम के बीच सबसे बड़ी बाधक थी। इसी से झिरिया हम पर नाराज है और सताती रहती है। खैरियत तो यह है कि ओझा पड़ोसी है, सो रात-आधीरात मदद को आ जाता है।"

काले अफसर ने उसे डाँटा, "रहने दे ये किस्से, चला जा यहाँ से।"

गोरे ने मुस्कराकर कहा, "बहुत खूब, मुखिया, अम भूट नहीं मानटा।" खिलखिलाकर हँसते हुए वह बोला, "राट को अम तुम्हारा चुड़ैल देखेगा।" फिर काले अफसर की तरफ मुड़कर उसने पूछा, "छोकरी का क्या?"

"वह इन्तजाम भी हो गया हुजूर। रात को यहाँ करमा होगा, नाच के बाद सुकवरिया सरकार के कमरे में ठहर जाएगी··· ।"

"वो टयार हो गया। खूब, टुम बहोट अच्छा अफसर है।" कहते हुए गोरे ने उसकी पीठ थपथपाई।

"तैयार कैसे नहीं होगा हुजूर? ऐसा हो तो देश का शासन कैसे चले। मार-मारकर मैंने उसके मर्द महतू से हामी भरवा ली!"

मुखिया चुप रहा। दोनों को हाथ जोड़कर चला गया। उसके जाने के बाद गोरे ने कहा, "आज अम भूट देखेगा, और कोई काम नईं करेगा। महटू को बोलो, औरट कल भेजेगा।"

"तो क्या हुजूर हम लोग यहाँ कल भी ठहरेंगे?"

अफसर ने खड़े होते हुए कहा, "ओ येस" और कमरे में यहाँ-वहाँ टहलने लगा, "ए ग्रेट नाइट···स्पिरिट···व्हाट नॉनसेंस!"

सिपाही ने आकर खबर दी कि नाचने-गानेवाले आ गए हैं और हुजूर की प्रतीक्षा की जा रही है। वह निकलकर बाहर आया। सामने के मैदान में 25-30 स्त्री-पुरुष कौड़ियों की मालाओं और आभूषणों से सजे खड़े थे। पुरुष सिर पर जंगली भैंसे के सींग और मोरपंख बाँधे थे। गोरे ने उन्हें आश्चर्य से देखा, फिर यहाँ-वहाँ नजर दौड़ाई। मुखिया कहीं न था। पूछने पर पता लगा कि उसे रास्ते में साँप ने काट खाया है। सुनकर गोरे को दुःख हुआ। वह डर गया, बोला, "स्नेक, ओ गॉड, मर गया, बरा स्वीट आदमी था··· ।"

गुनियाँ ने तभी कहा, "नहीं हुजूर, वह नहीं मरा।"

"नईं मरा?"···अफसर ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ सरकार, साँप के काटने से कहीं कोई मरता है। अद्धाझारे[1] के पत्ते उसने वहीं इतने चबा लिए हैं कि साँप का जहर क्या लगेगा! फिर घर में करू तुरइया भी वह खूब खा गया

1. अद्धाझारा, एक प्रकार का झाड़ होता है जिसकी जड़ लम्बी और पत्ते छोटे होते हैं। इसकी जड़ दतौन के काम आती है।

है। और मैं भी झाड़ आया हूँ हुजूर, साँप ने अपना जहर वापस लेने को कह दिया है, मुखिया अभी आता ही होगा।"

गोरा आँखें निकालकर उसे देख रहा था। अपने-आप वह बोला, "अजीब आदमी है। स्नेक ने प्रोमिस किया।"

बाहर बरामदे में रखी कुर्सी पर वह जाकर बैठ गया। तभी मुखिया ने आकर सलामी ठोंकी। गोरे ने रूमाल निकालकर अपनी आँखें और सिर से पैर तक मुखिया को घूरा। उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। बोला, "वण्डर।"

ढोलिए ने ढोल पर थाप मारी, अन्दर से सिहरती आवाज निकली, टिमकी, निसान और किकिर भी बज उठे और जैसे ही बाँसुरी के सुरों ने हवा के लहराते झोंकों को पकड़ा कि औरत और मर्दों की टोली झूम उठी। मुखिया ने बीच में कूदकर तान छेड़ी, मर्दों ने साथ दिया—"ओर होऽऽऽ हाय रे हाय ऽऽऽ।" औरतों ने जवाबी स्वर छेड़े—"ये हे ऽऽऽ हाय रे हायऽ ऽ।"

धन रे अंगरिजवा
तोरी अक्कल भारी रेऽऽ, हाय रे हायऽऽऽ
अधरे चलाय रिलगारीऽऽ, हो राय रे हाय

मर्दों ने टेक पर बल दिया—

ओ होऽऽऽ, अधरे चलाय रिलगारी,
हाय रे हाय रिलगारी।
पतलून पहनथे गोरा, ऊपर बढ़िया कोट,
पावन में बिलनैती जूता, सिर बिलनैती टोप।
होऽऽऽ हाय रे हाय, बिलनैती टोप।

सुकवरिया ने इस गीत पर जो पैंतरे दिखाए, उसकी लचीली कमर ने नागिन की तरह जितने रंग बदले, गोरे अफसर की आँखों में छा गए। पहाड़ी नाले की तरह उचटती और हवा की तरह लहराती सुकवरिया उस झुण्ड में अकेली दिख रही थी। गोरा रह-रहकर जीभ से अपने होंठ चाटता और आँखें फाड़कर हरे बाँस की जवान शाखा की भाँति झूलती सुकवरिया को घूरता। गाने की तान और लय पर भी वह मुग्ध था। देहातियों के मुँह से अपनी प्रशंसा सुनकर उसका मन फूल रहा था। जहाँ कहीं समझ में न आता, वह बाजू में बैठे काले अफसर से पूछ लेता। वह तत्काल खड़े होकर अर्थ बता देता। गोरा मुस्करा देता, तो काले अफसर के चेहरे पर सन्तोष की एक रेखा खिंच जाती।

आधी रात तक नाच-गाना होता रहा। उसके बाद सब अपने-अपने घर चले गए। सुकवरिया को भी नहीं ठहराया गया। गोरा अफसर अपने कमरे में अकेला चला गया। उसके सहायक और सिपाही बाजू के कमरे में सो गए।

दो घंटे बाद जैसे किसी ने उसे झकझोर दिया। घबड़ाकर उसने आँखें खोलीं।

इधर-उधर देखा और फिर सोने चला गया, पर उसे नींद नहीं आई। उसके दिमाग में तरह-तरह के विचार चक्कर काटने लगे। तभी कमरे के दरवाजे की संध से ज्वाला की एक पतली-सी रेखा उसे दिखाई दी। ऐसा लगा, जैसे किवाड़ जल रहे हैं। वह काँपने लगा, क्या गाँववालों ने आग लगा दी ?—उसे कोई आवाज सुनाई दी, जैसे कमरे में कोई कराह रहा है। कराहने की आवाज धीरे-धीरे और रह-रहकर आती थी। वह कभी तेज हो जाती और कभी मन्द पड़ जाती। गोरे ने देखा—आग की उस रेखा के बीच से एक लम्बा घूँघट निकाले कोई औरत उसकी ओर बढ़ी चली आ रही है। दो-चार कदम सामने आकर उसने घूँघट उठा दिया। अब उसका चेहरा साफ दिखाई देने लगा। साँवले रंग की वह जवान लड़की गले में घुँघचियों की माला पहने थी। और आँखों से आँसुओं की धारा निकलकर उसके शरीर को जैसे धो रही थी। उसका चेहरा डरावना था। अंग्रेज का मुँह जैसे किसी ने बन्द कर दिया था। वह काँप रहा था और आँखों के सामने उसे केवल उस लड़की का भयानक चेहरा ही दिख रहा था। उसने जैसे ही उठने की कोशिश की कि किसी ने उसके पैर पकड़कर उसे पछाड़ दिया। उसने दो-तीन कुलाटें भरीं और बिस्तर से दूर जमीन पर जा पड़ा। नीचे गिरते ही उसके मुँह से जोर से चीख निकली।

आवाज सुनकर बाजू में पड़े काले अफसर और सिपाही लैम्प लेकर दौड़े। उन्होंने गोरे को जमीन पर अचेत पड़ा पाया। उसके सिर में चोट आ गई थी और वहाँ से खून निकल रहा था। लैम्प लेकर महल के चारों ओर सिपाहियों ने देखा, सभी ओर गहरी शान्ति छाई हुई थी। दूर की पहाड़ी से कभी रह-रहकर पाड़े की आवाज आ रही थी।

गोरे के घायल होने की बात, सबेरा होते ही सारे गाँव में हवा की तरह फैल गई। मुखिया ने जब यह सुना, तो दौड़कर ओझा के दरवाजे खटखटाए और शाम की सारी बात उससे कह दी। गाँव-भर में यह खबर फैल गई कि झिरिया ने हुजूर को दबा लिया है। मुखिया ने यही बात काले अफसर से कही, पर उसने बात नहीं मानी। बोला, "हम भूत-प्रेत कुछ नहीं मानता, यह तुम लोगों का वहम है।" आखिर गाँववालों के बहुत कहने पर उसका बिस्तर राजामहल से उठवा दिया गया और गाँव की झोपड़ी में उसे शरण दी गई।

शहर से डॉक्टर बुलवाया गया। उसने आकर परीक्षा की। 'स्टेथिस्कोप' लगाकर उसने कई बार गोरे को आगे-पीछे देखा, पर उसकी समझ में कुछ नहीं आया। वह चक्कर में पड़ गया। इतना कुशल डॉक्टर, फिर भी बीमारी उसकी समझ से परे थी। दो-चार किस्म की दवाइयाँ दीं, दो-तीन इंजेक्शन लगाए, पर असर किसी का नहीं हुआ। हताश होकर उसने सलाह दी कि उसे शहर के अस्पताल में तुरन्त भेज दिया जाए।

ओझा और मुखिया वहाँ हाजिर थे। मुखिया ने ओझा (गुनियाँ) की तारीफ के पुल बाँधने शुरू कर दिए। उसने बताया कि एक बार वह एक मरे लड़के को जिन्दा कर चुका है। उसे मरे दो घंटे हुए थे। जब ओझा को पता लगा, तो उसने उसकी झाड़-फूँक की। उसके सिर से एक जुआँ निकालकर उसके खून से हवन किया। फिर उसकी भस्म को एक

पत्ते में लपेटकर वह उसे नदी में बहाने ले गया। जब लौटकर आया, तो उसने लड़के को खेलते पाया। काले अफसर ने यह सुनकर मुखिया को डाँट दिया, बोला, "बेवकूफ बनाता है, हुजूर की जान लेना चाहता है।" लेकिन न जाने क्यों डॉक्टर को मुखिया की बात पर यकीन हो गया। उसने ओझा से प्रार्थना की कि वह मदद करे। ओझा जैसे तैयार बैठा था, वह गोरे अफसर की तबीयत बिगड़ने का कारण भी जानता था। उसकी इच्छा भी थी कि गोरा उस गाँव से बीमार न जाए। यदि बीमार चला गया, तो गोरा अपनी जान से हाथ धो बैठेगा और सारे गाँव पर कलंक का टीका लगेगा।

पास पड़ी झाड़ू का बड़ा-सा गुच्छा निकालकर वह जमीन पर बैठ गया। सामने एक सूप में उसने थोड़े चावल रख दिए। हाथ में पानी लेकर उसने मंत्र पढ़ने शुरू कर दिए। एक मंत्र खतम होता और पानी की अंजलि वह गोरे पर मारता। दूसरी अंजलि लेता और उसी तरह फिर मंत्र पढ़ने लगता। बड़ी देर तक यही चलता रहा। गुनियाँ ने धूप लगाई और जैसे ही पलंग के दो चक्कर काटे कि गोरा साँप की तरह अँगड़ाई लेने लगा। गुनियाँ ने आगे बढ़कर एक हाथ से उसकी बाईं कलाई पकड़ी और दूसरे से झाड़ू का टुकड़ा लेकर उसके चारों ओर घुमाने लगा।

उसने मंत्र दुहराए, जमीन पर थोड़ी लाँदा (शराब) डाली और दाहिने हाथ में पानी लेकर जैसे ही गोरे के मुख पर मारा कि उसने आँखें खोल दीं और न जाने क्या-क्या बड़बड़ाने लगा। गुनियाँ का चेहरा खुशी से फूल उठा। उसने खड़े होकर फिर मंत्र पढ़े। अब गोरा एकटक गुनियाँ की ओर देखने लगा, गुनियाँ ने उसकी आँखें बाँध लीं।

हाथ आगे-पीछे खींचते हुए उसने पूछा—"कौन है तू?"

गोरे ने उत्तर दिया,—"झि—रि—या।"

गुनियाँ ने मंत्र पढ़ा और फिर प्रश्न किया—"इसे छोड़, मालिक हैं गाँव के?"

"नहीं, नहीं छोड़ूँगी। मेरे पलंग पर क्यों सोया? नारायनदेव का अपमान किया, मुखिया को मारा। नहीं, मैं इसका खून पी जाऊँगी।"

"क्या कहा?" —गुनियाँ ने झाड़ू घुमाते हुए कहा, "खून पियेगी, मान ले, नए हैं, मालिक ने अनजान में सब किया, छोड़।"

"नहीं छोड़ूँगी।" गोरे के मुख से इतनी अच्छी हिन्दी सुनकर डॉक्टर और काला अफसर आश्चर्य में थे। वे अचरज के साथ खड़े यह तमाशा देख रहे थे। गुनियाँ और झिरिया के बीच खींचा-तानी मची थी। झिरिया गोरे को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थी और गुनियाँ छुड़ाने के लिए कमर कस चुका था। बातचीत की खींचातानी के बीच एकाएक उठकर गुनियाँ ने गोरे के गैल में जैसे ही तमाचा मारा कि उसकी आवाज लड़खड़ाने लगी। वह रोने लगा—"मुझे छोड़ दो—छोड़ दो—।" काले अफसर को क्रोध आ गया। गुनियाँ की हिम्मत देखकर उसकी आँखों से खून चुआ जा रहा था। वह आगे बढ़ा, लेकिन डॉक्टर ने उसे रोक दिया। डॉक्टर बड़े गौर से सारे परिवर्तन देख रहा था। अन्त में झिरिया गोरे को

छोड़ने के लिए तैयार हो गई। एक नारियल फोड़ा गया। उसने आँखें खोलीं, सारे लोग चारों ओर घेरे खड़े थे। डॉक्टर ने जब अपना 'स्टेथिस्कोप' गोरे के आगे-पीछे लगाया, तो हँस पड़ा, "आप अब ठीक हैं हुजूर !"

"ठीक हए।"—गोरा बिस्तर से उठ बैठा। उसने दौड़कर गुनियाँ को गले लगा लिया—"टुमनें हमारा जान बचाया।" और दस का एक नोट बक्शीस के रूप में उसे देने के लिए आगे बढ़ाया, पर गुनियाँ ने उसे स्वीकार नहीं किया। बोला, "नहीं सरकार, हम आप का दिया ही तो खाते हैं।"

अब गोरे के लिए वहाँ ठहरना कड़ा गुजर रहा था। उसने अफसर को आदेश दिया कि—हम लोग अभी, इसी समय इस गाँव को छोड़ देंगे। आज्ञा पाते ही सिपाही तैयारी में लग गए। दोनों घोड़े कस दिए गए। गोरे ने झोपॅड़ी से निकलकर चारों ओर देखा, सामने राजामहल दिखाई दिया। उसे देखते ही रात की सारी घटनाएँ उसकी आँखों के सामने घूमने लगीं। चलते-चलते उसने गुनियाँ और मुखिया दोनों की बड़ी प्रशंसा की और अपने सहायक अफसर को आदेश दिया कि दोनों को एक-एक एकड़ बेबर सरकार की ओर से मुफ्त दे दी जाए।

उन दोनों ने सरकार के सामने माथा झुका दिया। गोरे ने घोड़े को एड़ लगाई— घोड़ा आगे बढ़ा, तभी सामने से आती हुई सुकवरिया पर काले अफसर की नजर पड़ी। गोरे की बराबरी से अपना घोड़ा लाते हुए उसने कहा, 'हुजूर, खूबसूरत लौंडिया ! कहिए तो साथ—।"

"नो, नो"—गोरा झल्लाया—"जानवर आडमी ! अमको खा जाएगा—अम उसको डेखना नईं माँगटा !"

घोड़े हवा से बातें करने लगे और भागते हुए जंगल पीछे छूटते गए।[1]

---

1. यह कहानी प्रसिद्ध उपन्यास 'जंगल के फूल' का आरंभिक अंश है। पहले यह कहानी लिखी गई थी, बाद में बढ़कर उपन्यास बन गई।

जब मैं आया ही आया था, मैंने उसे कम जाना था। बस, हर घड़ी गिरती-उठती आवाजें और नौकर को जोर-जोर से डाँटने वाले हकलाते-लड़खड़ाते शब्द। जब मैं काम में लगा होता, तब भी अक्सर मुझे ऐसी ही आवाजें सुनने को मिलतीं। मैं कॉरीडोर में आ जाता और खिड़कियों से झाँककर उसे देखता—उसके घर के अन्दर मुझे हिलते-तैरते परदे दिखाई देते। बैंगनी रंग का जालीदार सोफा दूर से चमकता और घर के भीतर से विदेशों से स्मगल किए हुए तेल-इत्रों की सुगन्ध सड़क तक आकर बिखर जाती। कई बार वह अपने ड्राइंगरूम में लगे आदमकद शीशे के सामने खड़ा दिखाई देता। उसका उभरता अक्स अजीबो-गरीब शक्लें पेश करता। गोया वह रोज किसी नाट्य या फिल्म की रिहर्सल करता है। मैं देखता वह कई तरह से अपना सिर झटकता है, अपने बाल बनाता और बिगाड़ता है और फिर पीछे से निकल रहे छोटे-से चौखटे पर हलका-हलका दर्द-भरा हाथ सहलाता है।

उस रात जद्दनबाई के जलसे में उससे मुलाकात हो गई। उसकी भटकती आँखों ने मुझे यकायक पकड़ लिया।

"हाल ही आए हैं शायद!"

"जी, बिलकुल हाल ही।"

"पड़ोसी भी हैं, तब आप बेगानों की तरह रहते हैं।"

"अब नहीं रहूँगा।"

"प्रॉमिस।"

"प्रॉमिस।"

दूर की आवाजें पास आ गईं। नौकर कामचोर है, 'केना-केना' करता रहता है। पहाड़ी है, अल्मोड़े का। हिन्दी जानता नहीं। बराबर हर बात के आगे-पीछे 'केना' लगाकर बोलता है। "केना चाय लाऊँ, केना।"

एक बार ठीक, दो बार ठीक। फिर···। वह गरजता है। उसे डाँटता है। वह उसी तरह हँसता रहता है।

"हरामखोर कहीं का।"

"जी।"

"जा, जाकर अण्डे ले आ।"

वह लौटकर आता है, पूरे तीस मिनट बाद तो फिर वही आवाजें—"कितनी दूर है दुकान ?"

"................ ।"

"बोलता, क्यों नहीं, हरामजादा ! मार-मारकर तेरी तबीयत दुरुस्त कर दूँगा। समझा ?"

"जी !"

इस 'जी' का क्या जवाब है ? वह खीझता है ! और चुप हो जाता है। आदमकद शीशे के सामने जाकर फिल्टरवाली विल्स सिगरेट का पैकेट खोलता है। एक सिगरेट जलाता है और पीने लगता है। सिगरेट के दो-तीन कश लेकर फिर उसे फेंक देता है।

"चाय पीजिएगा ?"

"नहीं।"

"नहीं क्यों ?"

"नाश्ता भी करेंगे।····ओ ····ओ ····ओ, हरामखोर, अण्डे हैं, नहीं तो ले आ। चाय और आमलेट बना ले।"

वह अपने-आप खुश होता है, "अमेरिकी सिगरेट पिलाऊँ ?" वह 'कैम्प' का पैकेट निकालकर सिगरेट मेरी ओर यूँ बढ़ाता है कि मेरे हाथ आगे सरक ही जाते हैं। एक बड़ी फर्म में वह असिस्टेंट मैनेजर है। कुछ सालों तक अमेरिका में रहा है। वहाँ से लौटा है तो उसकी नजरें ही बदल गई हैं। लौटना जैसे एक मजबूरी रही है और अब यहाँ रहना उससे बड़ी मजबूरी है। वहाँ की फिजाएँ जैसे उसे खींच-खींचकर बुलाती हैं। याद करते-करते वह मूड में आ जाता है, तब एक के बाद एक लिफाफे खोलने लगता है।

"माई डीयर डार्लिंग,

....

पढ़ते-पढ़ते उसकी आँखें नम हो जाती हैं। मेरी ओर वह पत्र बढ़ा देता है। एक चिकने खूबसूरत कागज पर वह पत्र अंग्रेजी में लिखा है। लॉसएन्जिल्स से आया है :

"तुम्हारी याद आज भी आती है। मैनड्रेक एक छोटा-सा कस्बा है। आजकल यहीं हूँ। हमारा छोटा-सा खूबसूरत घर है। बाहर हमने एक बाग लगा रखा है। उसमें क्रिसेंथिमान के फूल हैं। इस समय वे फूल रहे हैं। नीले फूल देखती हूँ तो तुम्हारी याद आती है। कितने प्यारे हैं ये फूल !····मैं अब दो सुन्दर बच्चों की माँ हूँ। दोनों बड़े खूबसूरत हैं। मेरा पति इंजीनियर है। बच्चों को खूब प्यार करता है। सोचती हूँ, उससे शादी न करती तो शायद वह जिन्दगी की सबसे बड़ी गलती होती।"

वह पत्र मेरे हाथ से छीन लेता है। यह वाक्य एक काँटे की तरह चुभता है उसे, "ओफ···! एक जमाना था, मेरा चेहरा पकड़कर घूरा करती थी वह। पिकनिक से लेकर साँझ के घिरते अँधेरे में हम दोनों बाँहें डाले घण्टों एक-दूसरे से लिपट रहे हैं। पसीने से तर

होने के बाद, हमने एक-दूसरे से मद-भरी सुगन्ध पाई है। उसके नाजुक होंठ हमेशा मेरे पास रहे हैं। वायदों का तो बयान नहीं। जिस रात लॉस एंजिल्स से जा रहा था, बेहद सरदी थी। तब भी एक फ्राक के सिवाय उसने कुछ नहीं पहना था। इसलिए कि वह एक महीन फ्राक में ही मुझे खूबसूरत लगी है। उसके हर उभार को मैंने उसमें देखा है। हवाई जहाज उड़ गया तब भी मुझे लगा जैसे वह उसके पंखों में कहीं न कहीं फँसी है। बेचारी···बेचारी बड़ी डेसपरेट हुई, मैं शादी कर लेता तो··· ?"

वह रुक जाता है। एक लम्बी साँस लेते हुए चुप उस लेटर को करीने से तहकर फिर लिफाफे में रख देता है। लिफाफे को सूँघता है जैसे उसके पसीने की सुगन्ध उसमें उतर आई हो। वह उसे चूम लेता है और अलमारी खोलकर उस लिफाफे को रख देता है।

वह फिर दूसरा लिफाफा खोलता है—एक बंगाली लड़की का। कलकत्ते की है वह···फिर तीसरा···चौथा ···। सारे लिफाफे एक ही स्वर में, एक ही आवाज करते हैं। और वह सभी की सतहों पर एक ही तरह से अपनी छाया देखता है। हर प्यार उसका सहारा चाहता रहा है और अब हर जगह उसे खँडहर खड़े दिखाई दे रहे हैं। मुगलिया दरबारों की तरह उनमें जड़े हीरे-जवाहरात तो उखड़ चुके हैं, अब दीवालों के बीच से धीरे-धीरे उभरती सतह ही नजर आती है। आदमकद शीशे के सामने वह अपने को अब भी शायद वहीं देखता है। सपनों को इस तरह संजोना बुरा तो नहीं।

वह कहता है, "ड्रिंक हो जाए, शाम !"

"हो सकती है।"

"पर मैंने खरीदने की कसम खा रखी है।"

"और मुफ्त पीने की ?"

मैं जोर से हँस देता हूँ, पर वह गम्भीर हो जाता है और अपने ऊपर चढ़े एक लम्बे कर्जे का हिसाब समझाने लगता है। उस कर्जे का जो उसका अपना किया हुआ है लेकिन जिसे वह दोस्तों के पैसों से शराब पीकर उतारना चाहता है, क्योंकि उसने अपने पैसों से शराब न खरीदने की कसम खा रखी है। और शायद यह भी कसम खा रखी है कि पिएगा तो दोस्तों के ही पैसों से। दोस्तों के भी आखिर कुछ मायने होते हैं।

उसे अपने-आप पर भरोसा है।

वह यह नहीं जानता कि वह अपने को भुलाए हुए है और वह एक बहकावे में डाले है। उसकी जिन्दगी की किताब के कई पन्ने भर चुके हैं। हर पन्ने की अपनी एक कहानी—झूठ और फरेब की कहानी है, कहानी जो सिर्फ कहानी है।

एक फ्रेम लगी तसवीर के पीछे गत्ते होते हैं। और दर्जनों कीलें। तसवीर हाथ में न ले तो यह राज पता न चले। यह तसवीर अब मेरे हाथ में है। मैं उसकी उन कीलों को भी देख रहा हूँ। जिसमें अभी से जंग लग चुका है। तसवीर उस कील से लटकी है, वह भी मेरे सामने है। मैं अब उसके पड़ोस को भी जान लूँगा, जहाँ की जाली हमेशा चुरमराती हुई

खुलती है और भीतर का दरवाजा हमेशा गुमसुम, चुप और मासूम रहता है। उस गीत का राज भी मेरी समझ में आ जाएगा, जो रोज-ब-रोज उसी तरह से उभरता है, तैरता है और फिर खो जाता है। वहीं से चिकने ताश फिसलते हैं। बादशाह और बेगम के झगड़े में गुलाम बेकार खींचता है। फ्लैश के किसी दौर में ट्रेल कर बाजी मार ले जाना बड़ी बात होती है, तब वहाँ कबाड़ियों की तरह शोर होने लगता है।

वह निहायत शरीफ आदमी है। हर आदमी की इज्जत करना जानता है। किसी आदमी को भूलता नहीं। भुलाए वह अपने-आपको है—आसमान में उड़ने वाले पक्षी की तरह जो थकता तो स्वयं है, लेकिन सोचता है, यह थकान उसकी नहीं आसमान की है। इस भुलावे से वह खुश होता है, इसीलिए शाम को अपने घोंसले में घुस जाता है। एक अविजित और अपराजेय ताकत को हराकर वह अपने घोंसले में लौटा है। वह एक लम्बी साँस लेता है।

दीवार के उस पार से कुछ आवाजें आ रही हैं, हँसी-ठट्ठे की और हाथों के पीटने की। ये आवाजें नहीं, शोले हैं। इसकी गवाही है, यह बीच का दरवाजा। वह उठकर घूमने लगा है। अपनी दोनों मुट्ठियाँ बन्द कर बीच दरवाजे पर मुक्का दे मारता है, आवाजें एकदम बन्द हो जाती हैं, "बद्तमीज !"

वह मूड में आ जाता है। मुझसे कहता है, "जानते हो, यह किसकी आवाज है ?"

"नहीं," मैं सिर हिला देता हूँ।

"मिसेज सेठी की," वह कहता है। कहते-कहते झुकता-सा जाता है। फिर अपने को सम्भालकर टेलीफोन के पास पहुँच जाता है। कोई नम्बर डायल करता है। फिर सोफे पर यकायक चित्त लेटकर बातें करने लगता है, "हाऊ आर यू···लंच पर आ रही हैं···अजी ऐसा भी क्या काम है ?···'शीला' में नई फिल्म लगी है···'केन केन'···लाजवाब है। कहिए तो सीट रिजर्व करा ली जाए···क्या, यू···तीन सीट···तीसरी किसके लिए ? ओफ, तब तो सारा मजा ही जाता रहेगा···अच्छा, अच्छा, यह मजाक ठीक नहीं···तुम्हारी फ्रेंड है तो मेरी भी है···तीन सीट··· एँ··· टा-टा··· !"

रखने के पहले वह टेलीफोन को चूम लेता है फिर कहता है, "मित्र, मैं तो इन सबके मारे परेशान हूँ। रोज पिक्चर, रोज पिक्चर ! आज उसने तीन टिकट लेकर रखे हैं। जाना ही पड़ेगा।"

मैं चुपचाप मुसकरा देता हूँ। आदमी कितना बेखबर होता है। मेरे सामने ही तो बातें कर रहा था वह। पर उसके साथ ये बातें नई नहीं हैं। कुछ दिन पहले कह रहा था, "मेरा सोफा खरीद लो।"

मैंने पूछा, "कितने का ?" उसने कहा—"बस, पाँच सौ दे देना।" बाद में जब मैं नया सोफा सस्ते में ले आया तो कहने लगा, "मेरा सोफा देखा है न आपने, सिर्फ सौ रुपये का है। एक एम्बेसी में नीलाम हो रहा था, मैंने खरीद लिया।"

वह तरोताजा होकर बैठ जाता है। नौकर को आवाज देता है, "रामसिंह, अबे चाय ला।" वह चाय पिलाता है और उसका किराया भी वसूलता जाता है।

"आप इस दरवाजे को नहीं पहचानते?"

"नहीं!" मुझमें दिलचस्पी जागृत होती है।

"आप सचमुच नहीं जानते। कभी यह होते हुए भी नहीं था। मिसेज सेठी को जानते हो न?"

"जानता नहीं, बाहर के साइन बोर्ड में उनका नाम पढ़ा है।"

"तो जान लो, वही अक्सर इस दरवाजे को तोड़ती रही हैं—कभी टेलीफोन के लिए, कभी क्राकरी के लिए और कभी यूँ ही अपने दोस्त-मित्रों के उपयोग के लिए। रामसिंह मुझसे ज्यादा उनका नौकर रहा है। लेकिन···!" वह आवाज लगाता है, "अबे, हरामखोर के बच्चे, कहाँ गया था?"

नौकर धीरे से कहता है, "मेम साहब ने लेमन जूस मँगाया था।"

वह जोर से चिल्लाता है, इतने जोर से कि मिसेज सेठी सुन लें। "हरामखोर, नौकरी यहाँ की करता है या वहाँ की?" नौकर चुप रहता है। उसके चेहरे पर एक पतली-सी मुसकान खिंच आती है। उसने शायद वे दिन भी देखे हैं, जब मेम साहब का काम उसके हर काम से बड़ा रहा है। एक संकेत में उसे हवा की तरह भागना पड़ता रहा है। उसकी परेशानियाँ भी तब कम रही हैं। सुबह पकौड़े, समोसे। छुट्टियों में खाना। मिस्टर सेठी अक्सर घर देर से आते रहे हैं, अब भी आते हैं। जब वह घर आते मिसेज सेठी गोटे लगी सलवार या चमकदार साड़ियों में सजी मिलतीं।"

वह कहता है, "तब वह टेलीफोन बीच के खुले दरवाजे को पार कर उनके सोफे तक पहुँच जाता था। नौकर गिलास में कभी लेमन डालता होता, कभी ह्विस्की या कभी बीयर। चीअर्स हमेशा मिस्टर सेठी के आने के पहले ही हुए हैं।" तब वह कहती थी···"यह गलती उनकी है, यदि वह अपना नियत समय किसी काम की जगह या यूँ ही रास्ते पर गुजारें।" मुझे हैरानी होती है सुनकर। आदमी के इतने गहरे रिश्ते भी कैसे टूटते हैं। मिसेज सेठी का अकेले उसके सामने नाचना। उसका कभी हाथ पकड़कर या कभी कंधा पकड़कर सहलाना। बातें और बातें-ही-बातें···!

"मिसेज सेठी, आपकी शादी हुए कितने बरस हुए?"

"कोई दस।"

"आप झूठ बोलती हैं!"

"क्यों? नहीं, मैं सच कह रही हूँ!"

"दस ब···र···स। ओफ! लगता है आपकी शादी कल ही हुई है।" वह रोमांटिक हो जाता है और मिसेज सेठी उससे अधिक रोमांटिक होकर अपनी देह को अपने-आप घूरने लगती है। मैं पूछता हूँ,···"प्यारे भाई, तब भी दरवाजा बन्द हो गया?"

वह कुछ कहना चाहता है कि चूड़ियों के खनकने की हलकी-सी आवाज सुनाई देती है। वह बैठे-ही-बैठे झाँकता है। कहता है, "चुडैल कहीं की !"

मैं झाँककर देखता हूँ। वह मिसेज सेठी हैं। गाउन पहने हुए। मिस्टर सेठी को भेजकर लौटी हैं। अभी हाथ हिलाकर टा··· टा··· कर रही थीं। पीठ फेरते ही वह तेजी से लाउंज का गेट बन्द करती हैं। उनका हाथ गेट को इतनी तेजी से बन्द करता है, जैसे उन्हें अपने पीछे किसी के घुस आने का भय है। वह कहता है, "अजीब औरत है, यह गाउन पहने सड़क तक चली जाती है। बेशरम।"

मैं अपने कारीडोर से सचभुच मिसेज सेठी को रोज गाउन पहने देखता हूँ। बाहर वह एक चाल से आती हैं और भीतर वह दूसरी चाल से जाती हैं। मिसेज सेठी का इस तरह गाउन पहनकर सड़क तक आना मुझे कभी अच्छा नहीं लगा। वह हमेशा मिस्टर सेठी को पहुँचाने बाहर तक जाती हैं। और कभी-कभी कुछ बातें करने लगती हैं तो बेहद रोमानी हो जाती हैं और अक्सर ही मिस्टर सेठी की नाक दबा दिया करती हैं। मैं यह रोज ही देखता हूँ, इसलिए उसकी यह शिकायत सही भी है। मैं पूछता हूँ, "लेकिन···"

उसी समय टेलीफोन की घंटी बजती है। उसका दिल जोर से धड़कने लगता है। बाथरूम में भी वह हो तो टेलीफोन की आवाज सुनकर दौड़ा आता है। एक-दो बार फिसलकर गिर भी चुका है। बातें करता है तो लगता है, जैसे उसे आवाज के साथ-साथ कोई छाया भी दिखाई देती है। टेलीफोन करते समय उसकी मुद्रा कुछ और ही होती है।

टेलीफोन उसने रखा कि एक महिला आ गई···अधेड़-सी महिला। लेकिन इससे क्या ? औरत उसके लिए सबसे बड़ी कमजोरी है। कोई लड़की सामने हो तो उसकी आँखें ही बदल जाती हैं। वह दिल और दिमाग से सूना पड़ जाता है। तब वह यह भी नहीं चाहता कि और कोई उसके यहाँ आए या आने वाला और ठहरे। लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि उसके ये क्षण सीमित होते हैं। न हमेशा लड़की होती, न हमेशा टेलीफोन आते। उसके लिए टेलीफोन तनहाई के वक्त सारंगी है और लड़की उसके उजाड़ तथा दिवालिया मस्तिष्क की एक भूली-भटकी छाया। हर लड़की के सामने वह दूसरी लड़की की बातें करता है। उसके प्यार के किस्से सुनाता है। फल यह होता है कि वह अपना प्यार तो अवारागर्द की तरह लुटा देता है, बदले में उसे किसी का प्यार नहीं मिल पाता। वरना काफी रात गए भी मैंने उसके यहाँ कहकहों की आवाजें सुनी हैं। खाली टैक्सियाँ आकर रुकती देखी हैं। उन्हें भरे हुए वापस जाते देखा है। न जाने कितनी बार, कितने ढंग से मैंने उसके शब्द सुने हैं, "ओ, ह्वाट ए सरप्राइज !"

आज तक वह खुद कोई 'सरप्राइज' नहीं दे सका है। मैं वक्त-बे-वक्त उसके साथ घूमने जरूर चला जाता हूँ। उसके वे किस्से सुनता हूँ, जो उन चिरागों के होते हैं, जो कभी रोशन रहे हैं, और अब उनकी छाया तक नहीं है। वह खुद मुखौटा चढ़ाता है और खुद खोल देता है। अपने-आप रोना और आप हँसना अपने-आप में बड़ा गुण है। कभी वह

इतना खोखला दिखाई देता है कि उसकी प्यार-भरी बातें भी हँसी उड़ाती-सी नजर आती हैं। कई बार उसके चेहरे पर ऐसी मासूमियत उभर आती है कि उसकी हर बात सच-सी लगने लगती और उसके प्रति हमदर्दी पैदा हो जाती है और उसका दर्द अपना-सा दर्द लगने लगता है।

इतना गहरा पड़ौस टूट गया, उसे दुःख नहीं है। वह कहता है, "अच्छा हुआ जो यह दरवाजा बन्द हो गया। बन्द क्या हुआ, उसी ने करवा दिया। अपने दोस्तों से वह मेरे बारे में न जाने क्या-क्या कहने लगी। एक दिन कह रही थी, "अच्छा-खासा मूरख है। जरा-सा मुसकरा दो कि बस, फिस्स। मैं तो उसका खूब फायदा उठाती हूँ' देखा आपने।"

उसने मेरी ओर तिरस्कार-भरी नजरों से देखा। फिर कहने लगा, "इस तरह कोई मुझे कभी बेवकूफ नहीं बना सका। मैंने जिस दिन यह बात सुनी, उसी दिन दरवाजा भी बन्द कर दिया और बीच में यह पटिया भी लगा दिया कि कभी इसके खुलने की नौबत ही न आए।"

'इरोज' के सामने वह मेरे साथ घूम रहा था।

नुक्कड़ पर एक सज्जन मिल गए। मुझे अचरज हुआ यह जानकर कि उसका बॉस है···मिस्टर बोस। दो मिनट से ज्यादा दोनों की बातें नहीं हुई होंगी। 'वह भी कैसे हैं,' अच्छे तो होंगे', 'सब ठीक है····' जैसी बातें ही। उसके जाते ही उसने शिकायत करनी शुरू कर दी। ऐसी शिकायतें जो शिकायतों की हर गरमाहट से रीती हों। कैसे इन्हें समेटता है वह? वह बोला, "यह मेरा बॉस है!···निखट्टू, काम-धाम कुछ नहीं करता। मेरी शिकायतें किया करता है। क्या बिगाड़ लेगा मेरा?"

वह अपने बॉस को तुच्छ समझने लगता हैं। उसके पैर तेज हो जाते है और हम दोनों गर्ल्स स्कूल के पीछे वाली सड़क पर टहलने लगते हैं। तब वह पिछली सड़क को भूल चुका होता है। कहता है, "लाया तो यही था मुझे यहाँ।"

"तब?" मुझे अचरज होता है। बोस ने उसे नौकरी दिलाई। अब उसी की शिकायत करता है।

"तब क्या?" उसने कहा, "काम सारा मैं ही करता हूँ, नाम उसे मिलता है।"

मैं हँस देता हूँ इस तर्क पर। उससे कुछ कहना चाहता हूँ, पर लगता है, कहना बेकार है। उसे शिकायत किससे नहीं है—किसकी शिकायत उसने मुझसे नहीं की! मेरी शिकायत भी उसने जरूर किसी से की होगी।

सामने का मैदान अब तक खाली हो चुका है। नुक्कड़ पर एक नया मकान बन रहा है। चारों तरफ बज़री और नंगी ईंटें पड़ी हैं। इन्हें पार कर जरा आगे हम दोनों आए कि एक लड़की मिल गई। वह हम दोनों को घूरकर देखती है। मैं भी उसे देखता हूँ। जब वह मेरे करीब से गुजर कर दूर निकल जाती है, मुझे लगता है जैसे यह कोई पहचानी हुई शक्ल है।

हाँ, याद आया। मैं इस शक्ल को खूब पहचानता हूँ। उससे कहता हूँ

"यह तो..."

वाक्य पूरा होने के पहले ही वह अपना हाथ मेरी पीठ पर दे मारता है। कहता है, "यही है वह। अब तुम्हारा राज मालूमं हुआ। अपने कारीडोर पर खड़े-खड़े तुम क्या ताका करते हो! क्यों अपने-आप गुनगुनाने लगते हो—दिल कहाँ से लाऊँ।"

उसकी बात एकदम मेरी समझ में आ जाती है। यह वही लड़की है जो मेरे ठीक सामने रहती है और उसके ठीक ऊपर खड़ी होकर वह भारतनाट्यम् की वे मुद्राएँ दिखाया करती है, जिन्हें केवल मैं देख सकता हूँ या मेरा वह पड़ौसी देख सकता है जो हमेशा घर के भीतर ही घुसा रहता है। मेम-बादशाह के झगड़े भी उसी के यहाँ हुआ करते हैं और वहीं से आवाजों का हुजूम अक्सर मेरे कारीडोर तक आता है।

वह पास से तो निकल गई, लेकिन जैसे एक सरगरमी उसके जिस्म में छोड़ गई।

वह कहता है, "चलो, आइसक्रीम खा आएँ।" मैं उसकी बात मान लेता हूँ, गोकि आज ठंडक ज्यादा है और यह आइसक्रीम का मौसम नहीं है। वह मुस्कराता है। उसका चेहरा हलकी रोशनाई में तैरता-सा नजर आता है। पुरानी यादें उसे तड़पा जाती है। नीचे वाला पड़ौस टूट गया, इसका उसे कभी दर्द नहीं हुआ, पर ऊपर के पड़ौस के टूटने से उसकी साँस का एक तार जैसे टूट गया है। कहता है, "नजमा नाम है इसका; खूबसूरत ही नहीं है, खूबसूरत गाती भी है और नाचती भी है। पीछे के आँगन में उसके पायलों की आवाजें कई बार बिखरी और रुकी हैं। ऊपर से उसका साया शायद ही कोई दिन ऐसा रहा हो, जिस दिन मेरे आँगन पर न गिरा हो। उसे उठाने हर बार वही आई है, और जितनी बार आई है कुछ दे ही गई है।"

अब तक हम आइसक्रीम की दुकान तक पहुँच चुके हैं। वह जल्दी से दो चाक बार लेता है। बार लेकर हम दोनों बाईं ओर मुड़ने वाली उस सड़क पर चलने लगते हैं, जहाँ सर्द रातें और सर्द हो जाया करती हैं। झुके हुए झाड़ सड़क को ढक लेते हैं और निहायत तनहा माहौल में वहाँ का जर्रा-जर्रा खो जाता है। चाक का एक कतरा मुँह में लेकर वह मुसकरा देता है। उसके होंठों के दोनों कोरों पर फेन की तरह आइसक्रीम फैल जाती है और वह टूटी लहरों की तरह अपने बिखरे उफान को आगे फेंकने की कोशिश करता है। "बेचारी की सगाई दो बार हुई और दोनों बार टूट गई। दूसरी बहन-विधवा है और तीसरी बहन अधेड़ तथा कुँवारी। वह बेचारी बड़ी सीधी है, पर दोनों के बहकावे में आ जाती है। उन्होंने उसे कहीं बहका दिया कि उसके दोनों रिश्तों के टूटने में मेरा हाथ है। मैं हर जगह कहता हूँ कि यह लड़की मुझसे प्यार कर चुकी है। अब भी करती है यह।" वह मेरी ओर देखता है और कहता है, "सुना आपने? ये भी कोई कहने की बातें होती हैं!"

वह अपना कन्धा मेरे कन्धे से भिड़ा देता है। कहता है, "दोस्त, शादी न कर मैंने बड़ी गलती की। अब तक शादी कर लेनी थी मुझे।" उसके हाथ अनायास ही सिर के ऊपर चले

जाते हैं और उसे हल्के-हलके सहलाने लगते हैं।

मैं पूछता हूँ, "शादी क्यों नहीं की ?"

वह चुप रहता है जैसे कुछ सोचता है। इसका जवाब शायद वह सोचकर देना चाहता है। उसे चुप देखकर मैं पूछता हूँ, "वह रोज अपना गिरा हुआ साया उठाने तुम्हारे आँगन में आती थी, फिर ?"

"फिर क्या, उठाकर चली जाती थी।"

वह इतनी सरलता से कहता है कि मैं बरबस खिलखिलाकर हँस पड़ता हूँ। मुझे यूँ हँसता देखकर वह झेंप जाता है। कहता है, "क्या समझते हो मुझे। जिसे चाहूँ फोन पर बुला सकता हूँ। दौड़ी न चली आए तो कहना।" वह रुक जाता है। मेरी आँखों में देखता है। शायद इसकी प्रतिक्रिया जानना चाहता है। कहता है, "एक-एक चाक बार और हो जाए।"

आज न जाने वह क्यों खुश है और खुश है तो मुझे नाराज नहीं करना चाहिए। हम लौटकर फिर पीछे जाते हैं। वह दो-चार बार और खरीदता है और फिर हम दोनों घर की ओर मुड़ने वाली सड़क पर चलने लगे हैं।

चाक बार का एक कतरा उसी तरह दाँतों से काटकर वह अँधेरे में मुझे फिर देखता है। कहता है, "दोस्त, तुम भाग्यशाली हो।"

"किस मामले में ?" मैं पूछता हूँ।

"हर मामले में," वह कहता है, "उस कमबख्त ने बीच का दरवाजा बन्द कर लिया। यहाँ कभी अब उसका साया गिरता और कभी वह आती है। और तुम हो जो सुबह-शाम दोनों के करिश्मे देखते हो।"

मैं हँस पड़ता हूँ यह सुनकर कि किन मामलों में मैं भाग्यशाली हूँ। किसी तरह हँसी को रोककर कहता हूँ, "इस तरह दूर से देखने में क्या होता है ?"

वह इसका कोई जवाब नहीं देता। मुझसे उल्टे एक साथ कई प्रश्न करने लगता है, कहता है, "बता सकते हो, हर लड़की मुझे इसी तरह छोड़कर क्यों चली जाती है ? मेरे घर वाले क्यों मुझ पर लानत भेजते हैं ? दफ्तर का बॉस क्यों सिर खाता है ? दोस्त न शराब पिलाते और न पीने देते हैं। क्यों ? क्यों दुनिया बहरी है ? किसी बात को कोई सच क्यों नहीं मानता ? जो मैं देखता हूँ, सभी क्यों नहीं देखते ? जो मैं सोचता हूँ, सभी क्यों नहीं सोचते ? जिस रास्ते मैं चलता हूँ, कोई और क्यों नहीं चलता ?"

वह रुक जाता है। फिर अपने-आप कई बातें मिलाकर एक साथ कहने लगता है। उसका जी चाहता है कि आत्महत्या कर ले। लेकिन वह भी नहीं कर पाता। उसे एक ही बात हर बार याद आती है। वह हर बार एक ही सपना देखता है, किसी तरह फिर अमेरिका वापस चला जाए लेकिन कई बार उसे अमेरिका भी काटने लगता है। उसने तो शादी कर ली है। उसके दो सुन्दर बच्चे हैं। उसका पति इंजीनियर है। तीसरी बार वह पेरिस जाने की योजना बनाता है और उसे मजबूत कर लेता है। कल सुबह उठते ही वह पहला काम जो

करेगा, वह होगा पासपोर्ट बनवाने का।

वह भूल जाता है, इसके पहले भी उसने कभी कुछ कहा था। अँधेरा हर चीज को छिपाने के लिए संघर्ष करता है, वह अपनी हर बात को मजबूती से थामे रहना चाहता है, पर वह हर बार फिसल जाता है। जैसे बिना पाँव वाला झूठ लाख कोशिश करने पर भी नहीं थम पाता। मुझे भरोसा है, कल की वह बात भी उसे याद नहीं है, जो उसने 'लगूना' में कॉफी के गर्म प्यालों के साथ कही थी, "दोस्त, सब भूल सकता हूँ, उस बेहया औरत को नहीं भूल सकता जिसने दस बरस पहले मुझसे शादी की और दस बरस बाद अपने-आप घर से भी चली गई। आज तक उसका पता नहीं है। जाना ही था तो इस तरह भागकर तो न जाती कि मैं बदनामी के काले दागों को हर सफेदी से बचाता फिरूँ।"

एक सिपाही की मौत

एक ठण्डी और उदास शाम।

चमकती हुई फुलझड़ियाँ जैसे एकाएक बुझ जाती हैं और फिर वही काला अन्धेरा रह जाता है। किसी तूफानी बरसात से नदी के मटमैले पानी पर जैसे एक शरमाती और लजीली किरण किसी नई दुल्हन की तरह पल-भर के लिए बिखरी और फिर सिमटकर खो गई। बड़ी कोशिश की, किसी तरह मन लग जाए, पर सब निरर्थक रहा। ढाल से पानी की तरह न जाने कितने और कैसे विचार मन में आते रहे और उन सबको समेटना कठिन हो गया। कल तक एक हल्की-सी उदासी थी। कल की शाम सूनी-लग रही थी। और सबेरा एकदम कुहरा लेकर आया। मन हाथ में रहे तो शायद कभी परेशानी न रहे, पर··· !

किसी तरह दिन गुजर गया। शाम को फिर लौटा—वही स्टेशन, वही गाड़ी और शायद वही डिब्बा और वही चिरपरिचित यात्री। आज घर जाने को जी नहीं हुआ और इसलिए 'स्लो' गाड़ी में ही बैठ गया। फर्स्ट क्लास का वह डिब्बा भी पूरी तरह भर चुका था। खिड़की के पास एक कोने में जगह खाली थी, वहीं जाकर बैठ गया। मेरे हाथ में आज का ताजा 'टाइम्स' था और उसी को खोलकर मैं पढ़ने लगा। उस पृष्ठ पर उन सैनिकों की सूची छपी थी, जो चीनियों द्वारा हाल ही में भारत सरकार को सौंपे गए थे। मैं सरसरी तौर पर वे नाम पढ़ गया, लगभग तीन सौ नाम—हजारासिंह, तोताराम पाण्डे, मानसिंह् थापा, राम किनारीवाला, तेनसिंह पंचलोथिया, हरनामसिंह, घनराम कानफटे, सी. वाय. फर्नाण्डीज··· । इनमें सार्जेंट थे, कमाण्डेण्ट, लेफ्टिनेण्ट, ब्रिगेडियर और साधारण सिपाही भी। मेरा किसी से परिचय नहीं था। कोई नाम जाना-पहचाना नहीं था। सब नए थे, किन्तु सभी अपने-से लग रहे थे। एक बार सारे नाम पढ़ गया और फिर एक उड़ती-सी नजर मैंने अपने सामने डाली —मेरे ठीक सामने सफेद पायजामा और कुर्ता पहने एक साँवला युवक बैठा था। चेहरा झुका हुआ, मलिन और उदास। उसके पास ऊनी सूट पहने दूसरा युवक था—पर खिला चेहरा और खुला रंग। काले रंग का ऊनी कोट, पर उसे वह पहने हुए नहीं था, दोनों बाँहों के सहारे पीछे लटकाए था, किन्तु सामने की बटनें बन्द थीं और इसलिए वह कोट पहने ही लग रहा था। फिर सँकरी मोरी का फुलपैंट और नए ढंग की चेन वाली बुश्शर्ट पहने एक लड़का—लड़का इसलिए कि उसके हाथ में किताबें थीं। उसके बाद पतले सफेद कपड़े का बन्द कालर का कोट और धोती पहने सिर पर काली गोल टोपी लगाए एक अधेड़, शायद व्यापारी। मैं उसे जानता नहीं हूँ, पर इस पोशाक से परिचित

हूँ—मस्जिद स्टेशन में अक्सर ही ऐसे लोग बैठा करते हैं और ये सब व्यापारी होते हैं। उसके पास वैसे ही दो-तीन लोग और बैठे थे और ये सभी आपस में बातें कर रहे थे। उस 'रो' की आखिरी खिड़की के पास एक औरत गोद में लगभग साल-भर का बच्चा लिए बैठी थी। मेरी वाली 'रो' में जो बैठे थे, उन्हें साफ नहीं देख पा रहा था। मुझसे सटे दो सज्जन बैठे हुए थे—फुलपैण्ट और बुश्शर्ट में, शायद मेरे ही हमसफर हों। उनमें ऐसी कोई खास बात नहीं थी और वैसे खास बात तो किसी में नहीं थी। लगभग ऐसे ही लोग रोज आते-जाते मिलते हैं। एक हल्की-सी नजर सब पर डालकर मैं फिर अखबार पढ़ने लगा। मन अच्छा रहे तो ताक-झाँक में मन लगता है और ताक-झाँक की जाए, तो परिचय भी हो जाया करते हैं। पर उस दिन बेहद उदासी थी। 'स्लो' गाड़ी, लगता था, चींटी-सी चाल से चल रही है, गो कि चाल वही थी, जो रोज होती है।

सामने बैठा व्यापारी शुरू से ही बातें कर रहा था। न जाने क्या-क्या बातें करता रहा। मुझे सरोकार क्या था, किन्तु जब आज की सरकारी नीति पर बातें करने लगा, तो मेरे कान सहसा खड़े हो गए। वह कह रहा था, "अरे, साहब, सरकार ने तो जीना हराम कर दिया है। भाव बेहद बढ़ गए हैं और सोना तो चला ही गया। अब बचा क्या, आप ही बताइए?" उसने अपनी गर्दन हिलाकर मेरी ओर देखा तो अचकचा गया। क्या कहूँ उससे! मैं वैसा ही बैठा रहा। मेरे चेहरे पर शायद किसी तरह की रेखाएँ न बनीं और न मिटीं, तो उसने कहा, "कहिए, गलत कह रहा हूँ?" मैंने व्यर्थ विवाद करने की अपेक्षा चुपचाप उसके पक्ष में ही हामी भरना ठीक समझा और सिर हिला दिया। इससे बड़ा सहारा मिला उसे और बोला, "देखिए साहब, मेरी सोने-चाँदी की दुकान है मस्जिद में। आपने नाम सुना होगा—पारेख एण्ड कम्पनी।"

मैंने फिर हामी भरते हुए सिर हिलाया। वह कहता गया, "तो साहब सारी दुकान की चमक चली गई। चौबीस कैरेट से चौदह कैरेट! सोना रहा कहाँ? पहले लोग गिनी गोल्ड खरीदना पसन्द नहीं करते थे, अब सभी कुछ तो गिनी गोल्ड हो गया। आप कभी मेरी दुकान में आइए, लगता है किसी ने एकदम पानी फेर दिया है। अरे, साहब, असल सोने की चमक असल होती है। आप जानते हैं, सरकार क्या करेगी? सोना लेकर सब अमरीका भेज देगी। आपके पास, बस, चौदह कैरेट रह जाएगा और साहब, आप ही बताइए सोना-चाँदी बेचना मेरा पेशा है। हम और आप दोनों जानते हैं कि जो हम बेच रहे हैं और जो आप खरीद रहे हैं एकदम शुद्ध सोना नहीं है। फिर हम चौदह का बारह कैरेट की बनाकर आपको चौदह कैरेट कहकर दे दें, तो आप क्या करेंगे?"

पारेख की बातें मुझे आकर्षित कर गईं। बात तो पते की कही है। मैंने सिर हिला-हिलाकर उसकी इस बात का समर्थन किया। वह आगे कहता रहा, "तो साहब, यूँ सोना गया, टैक्स देखो तो बेहद! इनकम-टैक्स और बढ़ गया। सुपरटैक्स ने तो हत्या ही कर दी। मुसीबत है और कुछ नहीं। आप मानेंगे मेरी बात, हम लोग इन सारे टैक्सों को

देकर कम-से-कम दस प्रतिशत घाटे में रहते हैं और मजे की बात तो यह कि घाटे पर भी टैक्स देते हैं।"

"और फिर भी आप लोग व्यापार करते हैं!" सहसा ही मेरे मुँह से निकल पड़ा। उसे विश्वास हो गया कि मैं उसकी बातों में पूरी तरह दिलचस्पी ले रहा हूँ। इससे वह बड़ा उत्साहित हुआ, बोला, "साहब, लगी कहीं छूटती है। यह भी एक नशा-सा बन गया है हमारे लिए। व्यापार न करें तो क्या करें?"

"लेकिन ऐसा भी व्यापार कैसा, पारेख साहब," मैंने अब पूरे उत्साह से कहा, "जहाँ घाटा-ही-घाटा हो और इस तरह कब तक आप घाटा उठाते रहेंगे।"

"सो तो हम नहीं जानते, साहब। बस, सेवा किए जा रहे हैं।" और झुककर उसने अखबार को गौर से देखा और बोला, "आप बार-बार वहाँ क्या पढ़ रहे हैं? कोई रिजल्ट-विजल्ट निकला है? मेरा लड़का भी यूनिवर्सिटी में पढ़ता है···।"

"जी, नहीं, यह हमारे यहाँ के उन सैनिकों की सूची है, जो चीनियों द्वारा कुछ दिन पहले मुक्त किए गए हैं। बेचारे सभी घायल हैं।"

"आप इनमें से किसी को जानते हैं?"

"जी, नहीं। बिल्कुल नहीं।"

"फिर? आप तो ऐसे पढ़ रहे हैं बार-बार जैसे···।"

मुझे यह बात अच्छी नहीं लगी। मैंने कहा, "इनमें बेगाने कौन हैं, पारेख जी। सब अपने ही देश के तो हैं। देश की आजादी के लिए ही लड़ रहे हैं। न जाने कितने मरे, कितने घायल हैं—कैसे घायल हैं, कौन जाने।"

वह पूरी तरह मेरी ओर घूम गया और अब तक गाड़ी भी करी रोड में रुककर आगे खिसकने लगी थी। उसने कुछ इस तरह कहा, जैसे मानो कुछ कह भी रहा हो और कुछ पूछ भी। "लेकिन इन्हें तो वेतन मिलता है न! और वेतन इन्हें ही नहीं मिलता, इनके परिवार को भी मिलता है और यदि मर जाएँ या घायल हो जाएँ तो जिन्दगी-भर उनके परिवार को और इनको सरकार पालती है। तो क्यों, साहब, यह कहाँ की सेवा हुई—यह भी तो बिजनेस हुआ न! बिजनेस यानी सर्विस से मेरा मतलब है। यहाँ तो कोई पूछनेवाला नहीं अपने को—न सरकार और न जनता, दोनों···।"

मैंने अपने-आप दाँत पीस लिए! सारे शरीर में आग लग गई। मन हुआ कि उठकर उसका गला घोंट दूँ और उठाकर दरवाजे के बाहर चलती गाड़ी से फेंक दूँ। कितनी अजीब बात है, जो हमारे लिए जान हथेली में रखकर लड़ रहे हैं वे भी बिजनेस कर रहे हैं। गुस्सा रोकना मेरे लिए मुश्किल हो गया। मैंने गले में जोर देकर कहा, "पारेख साहब, आप क्या कह रहे हैं···!" मुझे बीच में ही रोक दिया उस सज्जन ने जो काला कोट कन्धे पर डाले मेरे सामने ही बैठा था और अब तक एकदम चुप था। वह बोला, "पारेख साहब ठीक कहते हैं, वह बिजनेस ही तो है—एक प्रकार की नौकरी ही। आप दफ्तर में काम करना पसन्द करते

हैं। पारेख साहब इतनी बडी दूकान खोलकर घाटे में व्यापार चलाते हैं और घाटे के बाद भी सरकार को टैक्स देते हैं और तब भी बराबर दुकान चलाए जा रहे हैं, जिन्दगी भी उसी तरह जी रहे हैं, यह भी नौकरी ही है और ऐसी ही नौकरी वे करते हैं, जो सैनिक हैं।"

मुझे ताज्जुब हुआ कि ऐसी बातें यह भी कैसे कर रहा है ! सूरतशक्ल से व्यापारी नहीं लगता—हो भी नहीं सकता, मुझे भरोसा था। बड़ा अफसर होगा या कोई बड़ा आदमी ! आदमी हाँ···नहीं ···· ! पर मन यही कहता था, वह भी नहीं हो सकता। आखिर चेहरे का आइना इतना धोखा तो नहीं दे सकता। मैंने पूछा, "आपकी भी कोई दुकान है ?"

"जी नहीं।" वह बोला।

"तो··· ।"

"नहीं साहब, मेरी कोई दुकान-वुकान नहीं है। पर बात तो बात ही है न ! आप बताइए, पारेख साहब क्या गलत कह रहे हैं? मुझे तो उनकी बात में कोई गलती नहीं दिखती—क्यों जाते हैं, साहब, लोग फौज में भरती होने ?"

"इसलिए कि सेठजी उनसे जाने को नहीं कहते। जो जाते हैं, उसे व्यापार नहीं मानते। आपने पढ़ा होगा—सैनिकों के लिए खून की जरूरत थी। खून देने इतने लोग अस्पतालों में पहुँच गए, कि कुछ का खून लेकर बाकी को वेटिंग लिस्ट में रखना पड़ा। इन सबने मुफ्त में खून दिया—क्या यह भी कोई व्यापार था !" मेरे शरीर का ढीलापन दूर हो चुका था और मुझे इन दोनों पर बेहद गुस्सा आ रहा था। मैंने जोर देकर कहा, "आप दोनों पागल हैं, या दोनों गद्दार। माफ कीजिए, आपकी इन बातों में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है।" पारेख सुनकर हँसने लगे, किन्तु ऊनी कोट वाले सज्जन ने कहा, "आप ठीक कहते हैं, साहब···हम गद्दार हैं—माफ कीजिए, हमसे मेरा मतलब है केवल मेरे अपने-आपसे, केवल मुझसे।"

मैंने पूरी तरह आँख फाड़कर उसकी ओर देखा और फिर नियामत उपेक्षा से सिर घुमा लिया और वही अखबार खोलकर फिर नजरें दौड़ाने लगा—घायलों की उसी लम्बी सूची में।

लोकल गाड़ी अब माटुंगा स्टेशन से चल रही थी। शाम वैसे ही ठण्डी और उदास थी। वह नफरत से भर उठी। अजीब लोग हैं, अजीब ख्याल हैं ! मेरे सामने की सूची हिलती-सी नजर आई। मन के भीतर से एक आह उठी—इनमें कई बेपैर होंगे, कई बेहाथ। कुछ की आँखें चली गई होंगी और कुछ··· । जाने किसकी क्या हालत होगी और कहा जाता है वे सब व्यापारी हैं, फायदे के लिए मैदान में जाते हैं···· । मन उड़ता रहा और दो दिन पहले की एक रात मेरे सामने घूम गई। गेलार्ड का दायाँ कोना। ज्यूक बाक्स से एक रसीली धुन उठ रही थी :

'इफ आई से आई लव यू··· !'

मैं अकेला एक गोल टेबिल पर बैठा एस्सप्रेसो पी रहा था। बीच की टेबिलें साफ की जा रही थीं और वहाँ जगह निकाली जा रही थी। थोड़ी ही देर में वहाँ डांस होगा और

म्यूजिक 'केन केन' की धुनें, रॉक एन राल की रिदम, फाक्स के स्टेप्स ! मैं अक्सर वे शामें यहीं गुजारता। हूँ, जो कभी-कभी अनायास बेहद सूनी हो जाती हैं और मुझे ऐसा लगने लगता है जैसे बम्बई-जैसी अथाह जन-भरी नगरी भी एकदम सूनी है, जैसे इनमें मेरा अपना कोई नहीं है। अथाह समन्दर के बीच जैसे एक जहाज अकेला चलता रहता है और चलता रहता है। कुछ ऐसा ही जब मुझे लगता है (और मेरा ख्याल है इस नगरी में बहुतों को बहुत बार ऐसा ही लगता होगा), तो मैं अक्सर यहीं आ जाता हूँ और प्रायः इसी टेबिल पर यूँ ही बैठे जागता हूँ। एस्सप्रेसो के घूँट और लगातार सिगरेटें, एक अच्छी-सी राहत मुझे मिलती है—आसपास की टेबिलें तब खुशनुमा हसीन नए ब्लाटिंग पेपर की तरह नजर आती हैं और मुझे लगता है, जैसे ये सब मेरे अपने हैं, इनमें कोई पराया नहीं है, कोई दूर नहीं है—फ्रॉक पहने और ऊँची सेण्डलों वाली वह क्रिश्चियन छोकरी, पतली जारजेट की हल्की-गुलाबी साड़ी नंगी बाँहों की ब्लाउज वाली वह दूध-सी चमकती गोरी स्त्री, सुनहले बालों वाली वह विदेशी महिला, सूट-बूट पहने किसी फिल्म का वह हीरो और कसे हुए सटे कपड़ों वाला वह 'बीटनिक-सा' लगने वाला लम्बा-तगड़ा जवान आदमी। ये सब मेरे हैं, सबसे परिचय है। आँखों-ही-आँखों में इन सबसे मैं न जाने कितनी तरह से कितनी बातें कर लेता हूँ। और तब सारी उदासी एकदम छू हो जाती है।

ज्यूक बॉक्स अब भी चल रहा है···वह गीत अब खत्म होने में आया है—'हाऊ···हाऊ···हाऊ···हाऊ···!' किसी ने उठकर फिर पैसे डाल दिए हैं और फिर वही रेकॉर्ड शुरू से बजने लगा है : 'इफ आई से···'

मेरे सामने एक टेबिल एकदम खाली है—आज ही न जाने क्यों खाली है वह। मैं सोचने लगता हूँ और तभी दो व्यक्ति उसपर आकर बैठ जाते हैं। एक सफेद धुले हुए उजले कपड़े पहने है, कुछ वैसे ही जैसे 'सनलाइट' या 'सर्फ' के विज्ञापनों में दिखाए जाते हैं—बन्द कालर का सफेद कोट और वैसा ही सफेद फुलपैण्ट। दूसरे के कपड़े कुछ गन्दे हैं। वह धोती पहने हैं, और कुर्ते के ऊपर जवाहरबण्डी। दोनों के चेहरे बहुत दूर हैं—एक खिला हुआ सूरजमुखी है, तो दूसरा मुरझाए गेंदे का छोटा-सा फूल।

आकर बैठते ही बैरे ने मैन्यू उनके सामने रख दिया है और मैनेजर अपना काम छोड़कर खुद आर्डर लेने वहाँ पहुँच गया है। मैन्यू उनमें से किसी ने नहीं देखा और बिना देखे ही खिले चेहरे वाले ने कह दिया है, "कोना कॉफी।"

"और, सर···।"

"देट्स आल राइट।"

मैनेजर विचित्र ढंग से मुँह बनाता है और एक बैरे को इशारा कर वहाँ से चला जाता है।

"सेठ जी!"

"हाँ।"

अब म्यूजिक बन्द हो गया है। शायद ज्यूक बॉक्स का अब काम नहीं रहा। अब बीच में रौनक आ गई है। पतली कमर वाली लड़की वैसे ही सटे कपड़े पहने एक लड़के का हाथ पकड़कर हाथ लचकाने लगी है और म्यूजिक बॉक्स से तीन-चार लोग अपनी पूरी देह मटका-मटकाकर सुर और ताल छेड़ने लगे हैं और इन सबसे वह आदमी बहुत खुश है। सिर झुकाकर वह दूसरे आदमी की ओर देखता है और कहता है, "क्या बात है, मैंने कह दिया आज दो हजार रुपए नहीं दे सकता··· ।"

"पर कल ही तो मेरी लड़की की शादी है और आपने ही कहा था··· !"

"कहा होगा, दीवान जी, तुम तो जानते हो टैक्सों ने कमर तोड़ दी है। घाटे पर घाटा और फिर घाटे पर टैक्स ! अब तो जीना हराम है··· !"

"हाँ, सेठ जी, आप ठीक कहते हैं, लेकिन··· ।"

"लेकिन-वेकिन क्या ?" उसकी आवाज तेज हो जाती है और कोना कॉफी का सामने आया प्याला, एक ही घूँट में वह खाली कर देता है। गर्मी से शायद उसका कलेजा जलने लगा है, उसका पूरा शरीर एक बार सिहरकर ऐंठ-सा जाता है। मैं नीचे नजर किए बैठा हूँ, परन्तु मेरा ध्यान उसी की ओर है। आज न वहाँ नाच मुझे खींच रहा और न वह बड़ी आँखों वाली औरत, जो मेरे सामने कोने पर अभी-अभी आकर बैठी है और जिसके जिस्म का हर भाग बराबर झलककर मेरे पास तक आ रहा है। मुझे उस उदास, सूखी लकड़ी की तरह कमजोर और थके हुए मुनीम ने अपनी ओर खींच लिया है, जिसकी लड़की की शादी कल होने वाली है और··· । "सेठ जी, यदि रुपए नहीं मिले तो मेरी बेटी की शादी नहीं होगी। बाकी इन्तजाम तो कर लिया है, दहेज का इन्तजाम नहीं हुआ और बारात के आते ही दो हजार रुपए उन्हें पहले सौंपने हैं। जिन्दगी-भर आपकी सेवा की है, सेठ जी, फिर किससे··· ।"

"दीवान जी, तुम जानते हुए भी जिद करते हो और इसी से मुझे नफरत है। मुनाफा होता रहा, तो तुम्हीं बताओ मैंने कब बचाया··· ।"

मुनीम ने बड़ी दीनता से सिर हिला दिया है, जैसे सही-गलत से उसे कोई सरोकार नहीं। उसे सिर हिलाने की आदत हो गई है और अब वह उस आदत से लाचार है। मैंने उसे देखा, वह अपनी नन्हीं-सी बँधी आँखों के साथ अपने मालिक की ओर देख रहा है, जो अब कोना कॉफी का दूसरा कप भी लगभग खाली करने को है और वह है कि उसने अब तक एक घूँट भी कॉफी नहीं पी। उसका कप उसी तरह भरा हुआ रखा था। सामने नाच के साथ-साथ शोर और तालियों की आवाजें उठती जा रही हैं और चहलकदमियों से पूरा समां निखर गया है। सेठ जी की उठी हुई निगाहें उसी ओर कहीं हैं और तभी दरवाजा खुलता है और उसके साथ सेण्ट की भीनी-भीनी सुगन्ध अन्दर फैल जाती है।

"ओ, यू। डियर !"

वह उठकर तपाक से हाथ मिलाता है, "यू डियर, कम ऑन।"

कुर्सी थोड़ा पीछे खींचकर वह एक नए अन्दाज से बैठ जाती है और तभी मैनेजर फिर कहीं से उठकर वहाँ आ धमकता है, "गुड नाइट मैडम।"

बिना कुछ जवाब दिए, बालों को झटका देती है और मैन्यू पर सरसरी नजरें दौड़ाती हुई कहती है, "कसाटा।"

"थैंक्यू मैडम," मैनेजर चला जाता है।

मैं उसे गौर से देखता हूँ—उसके गोरे शरीर का हर अंग साफ झलकता है। उसकी हर साँस के साथ सीने का उतार-चढ़ाव भी साफ झलकता है। हॉफ् स्लीव्ज के ब्लाउज के नीचे से कसकर बंधी हुई चोली साफ नजर आती है। पीले नायलोन की साड़ी के नीचे से रेशम का मुलायम साया भी बार-बार चमक-चमक जाता है। वह अपनी अनजानी नजरों से मुनीम की ओर देखती है, तो सेठ जी कहते हैं, "दीवान जी, कल मिलिए, मैं देखूँगा, आपको कितने दे सकता हूँ···।"

"कितना नहीं सेठ जी···कम···।"

"ठीक है, ठीक है! सुबह घर पर मिलना।"

मुनीम हाथ जोड़कर सिर झुकाता है और हर टेबिल को बचाता बाहर चला जाता है, जैसे कोई बेआसरा कुत्ता दुबककर चोरी से घर के बाहर जा रहा हो।

मैं देख रहा हूँ, अब वह कुर्सी खींचकर और नजदीक आ गया है।

"कहाँ रहीं इतने दिनों से रानी?"

"कुछ न पूछिए, साब, मुश्किल से काम मिला है। किसी तरह आज ही काण्ट्रैक्ट हो पाया है—मिस्टर चोपड़ा की नई फिल्म 'घर के आगे' में छोटा-सा रोल है।"

"छोटा क्यों कहती हो, नीलिमा, कभी तो तुम्हारा भी जमाना था। मैं आज तक नहीं भूला, क्या नाम था उस पिक्चर का···हाँ···हाँ, याद आया 'दिल की राहें'। क्या कमाल का काम किया था तुमने! और ये प्रोड्यूसर भी ऐसे हैं कि तब भी तुम्हें कहीं हीरोइन का काम नहीं देते। पर···।" वह हल्के से मुसकरा देती है। उसकी हँसी न जाने क्यों अपने आप क्रूर-सी हो उठती है। मुझे ऐसा लगता है जैसे वह मुश्किल से हँस पा रही है। कोई विवशता है, जो उसे हँसा रही है।

बैरा 'कसाटा' सामने रख जाता है और बड़े अन्दाज से चम्मच उठा कर वह एक कतरा तोड़ती है और सेठ जी की तरफ देखकर 'शुक्रिया' कहती हुई मुँह में रख लेती है। और तभी वह हल्का-सा चाँटा उसके गालों पर छुआ देता है। वह जोर से हँस पड़ती है। जब हँसी रुकती है तो कहती है, "एक काम से आई थी, आपके पास।"

"बताइए मैं किस काम के लायक हूँ।"

वह हिचकती है। उसकी हिचकिचाहट मुझे बनावटी-सी लगती है। उसने अब अपना हाथ बढ़ाकर सेठजी की बाँहों पर रख दिया है और कहती है, "जिस मकान में रहती हूँ वह लीव-लाइसेंस का है। कल सबेरे मकान मालिक आनेवाला है और यदि उसे पूरे ग्यारह

महीने का एडवांस किराया नहीं मिला तो वह काण्ट्रैक्ट रिन्यू नहीं करेगा और तब मैं सबेरे ही बेघर हो जाऊँगी। माँ अलग बीमार है और कम्बख्त चोपड़ा ने काण्ट्रैक्ट तो कर लिया है, पर एडवांस के नाम पर इक्कीस रुपए दिए हैं। क्या करें, देसाई साहब, काम के पीछे कितनी खाक छाननी पड़ती है··· ।"

मुझे अब पता लगा कि यह कोई देसाई है और उसका कोई बहुत बड़ा व्यापार है। यह लड़की फिल्मों में काम करने वाली छोटी-मोटी हीरोइन है और इसका नाम नीलिमा है और दोनों खासे अच्छे दोस्त हैं।

उसने कहा, "तो, देसाई साब, पाँच सौ रुपए महीने फ्लैट का किराया है, आप तो जानते ही हैं, पूरे साढ़े-पाँच हजार कमबख्त को सबेरे देने हैं। मैं अभी आपकी दुकान गई थी, पता चला आप इस ओर आए हैं। अच्छा हुआ मिल गए। वरना आपके घर आना पड़ता।" उसके इन शब्दों में बड़ा जोर था। वह बड़े अधिकार के साथ कह रही थी, जैसे साढ़े-पाँच हजार रुपए पाना उसका अपना निजी अधिकार है और यदि देसाई उसे दे भी देगा, तो कोई बड़ा अहसान नहीं करेगा। देसाई अब उसकी नंगी बाँहों पर हाथ फेरने लगता है। कहता है, "डियर, पिछले हफ्ते खण्डाला चलने की बात थी, फिर कहाँ गायब हो गई।"

"साब, बस इसी फिल्मी चक्कर में लगी रही। पूरे पन्द्रह दिन की मेहनत के बाद यह छोटा-सा काम मिला है, पर अब फ्री हूँ। आप जब कहें··· ।"

"तो पूरे दो दिन का प्रोग्राम हो जाए," देसाई कहता है, तो वह तपाक से कह देती है, "मेरी तरफ से तीन दिन सही।" देसाई एकाएक उसे अपने पास खींचने का उपक्रम करने लगता है, तो वह खीझ-भरी रूमानी अदा से कहती है, "अरे, यहाँ नहीं।"

देसाई संभलकर बैठ जाता है। मैं उनकी मुख-मुद्रा देखता हूँ। वह अजीब ढंग से मुँह बनाता है, "नीलिमा, साढ़े पाँच हजार बहुत होते हैं। तुम जानती हो टैक्सों ने परेशान कर दिया है। घाटे में व्यापार चल रहा है। और आजकल तो··· अभी-अभी उस कम्बख्त मुनीम को भगाया है। वह भी दो हजार चाहता था। कहाँ से दूँ उसे।"

"नो, नो प्लीज, आई नो एवरी थिंग। यहाँ न हो, तो चलिए आपके घर चलूँ, घबराइए नहीं, बाहर ही खड़ी रहूँगी। पर, माई डियर, स्वीट देसाई साहब··· । और वाह साहब, मुझमें और आपके उस मुनीम में कोई अन्तर नहीं है जो··· ।"

"ऐसी कोई बात नहीं है।"

देसाई फिर अजीब तरह से मुँह बनाता है और कहता है, "वह तो मैं वैसे ही बता रहा था तुमसे रानी, कहाँ तुम और कहाँ वह खूसट बूढ़ा! पर सच मानो नीलिमा, बेहद परेशानी ला दी सरकार ने इन दिनों। मुनाफा तो समझो रहा नहीं और अब बिजनेस, बस, एक नशा रह गया है। इससे तो नौकरी अच्छी है।"

वह रूमानी तिरछी आँखों से देसाई को देखती है। एक लम्बी साँस लेती है और फिर सामने नाचने वाली लड़की की ओर देखकर कहती है, "ओ! इसे तो मैंने देखा ही नहीं।

मिस्टर देसाई, यह बम्बई की सबसे अच्छी राक डान्सर है। इसकी कमर नहीं रबर है रबर। आप मिलेंगे उससे ?"

"अभी !" देसाई चौंक उठता है, तो वह उसके हाथों पर अपनी हथेली रख देती है, अभी नहीं, अभी तो अपने बिजनेस में है। फिर···।" वह मुसकरा देती है और देसाई कुछ इस अन्दाज से कहता है, मानो कह रहा है, नेकी और पूछ-पूछ। कभी भी मिला दो। बन्दा हमेशा तैयार है। मुझे कुछ अजीब-सा लगने लगा है। मन हुआ बाहर चला जाऊँ, किन्तु मेरे सामने एक सजीव कहानी है और मैं उस कहानी को पूरा देखना चाहता हूँ। नीलिमा का जादू कहाँ तक काम करता है।

मैं बैरा को बुलाकर कोना कॉफी का नया आर्डर देता हूँ और सिगरेट जलाकर कुर्सी पर टिककर आराम से बैठ जाता हूँ।

"तो, मिस्टर देसाई, निकालिए न, नौ बज रहे हैं। कोई लाख रुपए तो माँग नहीं रही। और आपकी जेब में इतने रुपए न हों ऐसा नहीं हो सकता।"

"तो, नहीं मानोगी, नीलू !" वह बेहद प्रेमिल बन जाता है और मैं देखता हूँ कि नीलिमा उससे भी एक कदम आगे है। वह इतनी प्रेम-विभोर हो जाती है, मानो उसे छूने की देर है। उसे यूँ छुआ और वह यूँ फिसली—रेत की ढेर की तरह ! वैसी ही मुद्रा में वह सिर हिलाकर कहती है—"नहीं, नहीं, काम ही ऐसा अटका है, देसाई साहब, वरना तुम्हें तकलीफ न देती। अब तुम ही जानो, कल मुझे सड़क पर बेइज्जत देखना हो तो मत दो।" गजब के अधिकार से वह बात कर रही है और मैं देखकर दंग रह गया हूँ कि अन्दर की जेब में हाथ डालकर कुछ रुपए देसाई ने निकाले हैं। मैं आँखें फाड़कर देखने लगा हूँ—पूरे साढ़े पाँच हजार गिन कर वह उसका वेनेटी पर्स उठाता है, उसे खोलता है और खोलकर रुपए उसमें एक अन्दाज से रख देता है और फिर पर्स उसके गले में डालकर कहता है, "सीने से लगाकर घर ले जाना रानी, वरना···।"

उसका चेहरा खिल उठा है—मुरझाए फूलों की तरह पानी की बूँदे पड़ गई हैं जैसे। देसाई उसका हाथ पकड़ता है, दोनों खड़े हो जाते हैं और वैसे ही बैरा को बुलाकर देसाई बिना बिल देखे उसे दस रुपए का नोट देता है, "कीप द चेन्ज" और कुर्सी छोड़कर बाहर आते-आते उसके कन्धे पर हाथ रख लेता है, "शनिवार को खण्डाला का पक्का रहा। और देखो, अपनी माँ को साथ मत ले आना। बस, हम दोनों चलेंगे, ठीक है न !"

मुझे एक झटका-सा लगता है। मैं सोचने लगता हूँ—वह भी एक बिजनेस था, यहाँ भी बिजनेस की बात है। यह सारी दुनिया ही बिजनेस की धुरी पर खड़ी है—एक का दूसरे से बिजनेस, बिजनेस का बिजनेस से बिजनेस और सैनिक भी यदि जान देने जाते हैं तो··· !

एक जोर का झटका लगा। कुर्ला के प्लेटफार्म नम्बर एक पर गाड़ी झटके के साथ रुक गई। मेरे ठीक सामने जो सीधा-सादा युवक सफेद पायजामा और कुर्ता पहने बैठा था, उठकर खड़ा हो गया। ऊनी कोट पहने अपने साथी की पीठ पकड़कर उसने उठाना चाहा

और उसने उठने का प्रयत्न किया तो कोट उसकी पीठ से गिर गया। मैं देखकर दंग रह गया। उसके दोनों हाथ नहीं थे और शायद एक पैर भी नहीं है। फुलपैंट के अन्दर का एक भाग एकदम खोखला है ! मैंने हतप्रभ और विमूढ़ उसे पल-भर देखा और फिर उठकर उसे सहारा दिया। दूसरे मुसाफिरों ने भी हमदर्दी दिखाई और उस व्यापारी के मन में भी दया के भाव जागे। साथ वाले युवक ने कहा, "भाई साहब, ये नेफा से आ रहे हैं, चीनियों ने मुक्त किया है। अस्पताल से डिस्चार्ज हुए हैं। ये मिलिटरी में लेफ्टिनेण्ट थे।"

मैंने पूरे सहारे के साथ उसे गाड़ी के नीचे उतारा और जब गाड़ी चलने को हुई तो उसी युवक ने कहा, "भाई साहब, यह अखबार देंगे आप ?" मैंने बिना कुछ पूछे वह अखबार उसके हाथ में दे दिया। उसने अपने-आप ही कहा, "जो सूची आप पढ़ रहे थे न, उसमें इनका भी नाम छपा है—राम किनारीवाला। स्टाल में मैंने पूछा, वहाँ 'टाइम्स' नहीं था।"

"कोई बात नहीं, आप ले जाइए। " मैंने एक बार आँख भरकर उस अजेय और दुर्दम्य व्यक्ति के चेहरे को देखा, जो अब भी दुखी नहीं था। नीचे उतरकर उसने कहा, "शुक्रिया।"

मैं फिर कुछ नहीं कह सका। गाड़ी सरकने लगी थी और मैं प्लेटफार्म पर खड़ा-खड़ा उसे देखता रहा। जाना मुझे आगे था, पर न जाने क्यों उस गाड़ी में जाने का मन नहीं हुआ।

मेरे सारे मन-मस्तिष्क पर ऐसी गहरी उदासी छा गई थी कि मेरे शरीर की हर नस सूनी और रक्तहीन-सी लगने लगी थी—लगता था समूचे शरीर में झुनझुनी-सी चढ़ गई है। रक्त जम गया है और मैं पूरी तरह ठण्डा हो चुका हूँ, शाम उदास थी, रात गहरी उदास हो गई।

मसहरी

कोहरे में डूबा कैम्पस और खम्पा कबीले का चीनियों की तरह चपटे और पीले चेहरे वाला चौकीदार—लाउ लुहा। दोनों ही सुबह की तरह शरीफ और मासूम थे, हालाँकि लाउ लुहा ने पहले ही दिन कमरे की दीवारों पर नजर दौड़ाते हुए कहा था—"हूजूर, रात को मसहरी जरूरी तान लीजिए।"

उसकी ओर अचम्भे और हैरानी से देखते हुए तब एक ही सवाल उभरकर सामने आया था, कि इतनी सफाई और शराफत से आखिर क्यों अपने को काटकर एक घेरे में बन्द कर लिया जाए। वैसे भी आदमी की अपनी आदत होती है और हर किसी के लिए यह मुमकिन नहीं है कि वह हर किसी चीज को कैद कर सके। लाउ लुहा भला ऐसे तर्क-कुतर्कों को क्या समझे ! हाथ के डण्डे को पटकते हुए उसने अदब के साथ दोहराया था—'हुजूर, शराफत न दिखाइएगा। मसहरी जरूर तान लीजिए, वरना···"

"वरना क्या ?" जब कोई बात अचानक निकलती है तो उसमें जोर होता ही है और गेस्ट हाइस में ठहरने वाला कोई अफसर जोर दिखाए तो देह ताकत की सीमा के बावजूद लाउ लुहा जैसा व्यक्ति काँपे बिना नहीं रहेगा। सालों के अभ्यासी उसके हाथ सलाम की मुद्रा में उठकर नीचे गिरे तो उसने गरदन झुकाकर कहा—"सरकार, छोटे मुँह बड़ी बात होती है, लेकिन यह सच है कि शराफत और ईमानदारी दोनों बेमानी हैं, क्योंकि दोनों का रिश्ता किसी उसूल के साथ नहीं है।" इसके बाद लाउ लुहा चला गया था और जाते-जाते जैसे बन्द मसहरी को खुल जाने का हुक्म भी दे गया था। लेकिन तभी रात-भर कानों में संगीत गूँजता रहा और मसहरी के छिद्रों में कैद नींद के तार पनाह माँगते रहे। लाउ लुहा की बात समय से मान ली होती तो भला सवेरे-सवेरे आईने के सामने आँखों के पपोटे फैले और लाल देखने को मिलते !

नहीं···। अच्छा ही हुआ जो आँखें रात-भर नींद खोजती रहीं, वरना··· ! खुला हुआ कोहरे में ढँका कैम्पस ! गुब्बारों की तरह तैरती हुई आवारा सफेदी का बेरोक-टोक खुली हुई खिड़की के रास्ते कमरे में सीधे घुसते हुए चले आना। इस सफेदी के बीच दुपट्टों की तरह चमकते लालपाती के झाड़। खामोशी को फाड़कर जैसे ये मुखर हुआ चाहते हैं। कल शाम उसी ने मुझे बताया था कि नेपाल से लाकर इन झाड़ों को यहाँ लगाया है। इनकी कोंपलें पहले लाल होती हैं, फिर वही हरे रंग की पत्तियों में बदल जाती हैं। डालियों के छोर पर लगे लाल पत्तियों के झुक्के दूर से नहीं, पास से भी एकदम फूल हैं। बीच में वही पराग का

कोष और बारीक नलियाँ। डेलिया की तरह विस्तार! लेकिन तब भी ये फूल नहीं हैं! इन झाड़ों के फल होते ही नहीं। पत्तियों के लाल रंग के कारण शायद इन्हें लालपाती कहा गया हो। कोहरे में तैरती लाल पत्तियाँ जितनी नाजुक दिखती हैं, उतनी ही शरीफ। लेकिन जब फल ही उनमें नहीं होते तो? शायद लाउ लुहा ठीक कहता था कि शराफत और ईमानदारी दोनों बेमानी होते हैं!

हो सकता है, या हो भी, लेकिन किसी को यूँ करार देना मुझ-जैसे परदेशी के लिए न ईमानदारी है और न शराफत। मैं उस चपटे चेहरे वाले खम्पा को दुआएँ ही दे सकता हूँ कि न वह रातभर जागकर सुबह जल्दी उठता और न यह सब देखने को मिलता। मैं शायद खिड़की के बाहर देखता ही रहता यदि सामने के गेट से एक दुबले और मरियल-से लड़के को अपनी ओर ताकते हुए न देख लेता। उसे देखते हुए मुझे न जाने क्यों ऐसा लगा जैसे यह ऊपर ही आ रहा है और सीधे मेरे कमरे में आ धमकेगा। हुआ भी यही। सोच के दरवाजे बन्द भी नहीं हुए थे कि किसी ने बाहर से घंटी बजाई और जब मैंने दरवाजा खोला तो सच ही उसे खड़ा पाया। उसने चुपचाप एक सफेद कागज मेरी ओर बढ़ा दिया और एक जोर का सलाम फेंकते हुए वह सीढ़ियों के रास्ते नीचे उतर गया।

वह कोरा कागज नहीं, इरा का खत था। महज दो लकीरें—"आज आने में बहुत देर होगी, शायद न भी आऊँ। आप अकेले शहर चले जाइएगा।"

इन लकीरों को पढ़कर मुझे न अचरज हुआ और न क्रोध आया। कल सारा दिन जिस तरह बीता और रात जिस तरह अलग हुए, उससे किसी को भी थकावट हो सकती थी। मेरे पैर आज भी भारी थे, लेकिन मेरी और उसकी स्थिति में अन्तर था। मेरी स्थिति एक टूरिस्ट-जैसी थी और उसके लिए··· ! सारनाथ जाते हुए रास्ते में उसने कहा था—"देखी हुई जगहों को बार-बार देखना भी कितना बोर होता है!"

उसके लिए वह वाकई बोर होने जैसी स्थिति थी। उसने तीन साल पहले पी-एच० डी० के लिए अपना नाम इस यूनिवर्सिटी में रजिस्टर कराया था और तब से यहाँ रह रही है। तीन सालों में काम कितना हुआ इसका पता शायद उसे भी नहीं है। सवाल काम करने का होता है। यदि उसे रिसर्च सीरियस होकर करनी होती तो कब की हो जाती। कल ही उसने बताया था, उसकी दो रूममेट को इसी कन्वोकेशन में पी-एच० डी० मिल चुकी है। अब जो लड़की उसके साथ रहती है, उसने भी बहुत-सा काम कर डाला है। वह अंग्रेजी के आधुनिक नाटकों पर रिसर्च कर रही है। उसे तब लगता था कि फिलॉसफी जैसा विषय लेकर उसने न अपने साथ न्याय किया और न अपने अतीत के साथ। जिस जिन्दगी को भूलने और बाँटने के लिए उसने रिसर्च का नकली चेहरा पहन रखा है, वह शायद उसके अपने लिए ही विवेक में फँसकर प्याज की परतों की तरह और-और खुलता जाता है। तब उसके मन में एक दर्द-सा उठता है। अपनी ही जिन्दगी यदि अचानक शोध का विषय बन जाए तो?

मैं जानता हूँ, इरा को गिरे हुए मन से मेरे साथ सारनाथ जाना पड़ा था। रास्ते-भर वह अपनी सीट से खिड़की के बाहर देखती रही थी। मेरे लिए असहनीय और अजीब-सी स्थिति थी। मुझे लगता था, जैसे मैं कोई निहायत उपेक्षणीय व्यक्ति हूँ या ऐसा व्यक्ति हूँ जिसकी उपस्थिति दूसरे के लिए एक मजबूर नियति है। तंग आकर मैंने एक बार कहा था—"दूर की हर चीज अच्छी लगती है, क्यों न ?"

इससे शायद वह चौंकी थी। उसने तब भी भीतर देखा था, लेकिन तब भी मुझे लगा था जैसे उसकी आधी नजरें खिड़की के बाहर हैं, एक-चौथाई दूसरे मुसाफिरों की ओर, एक चौथाई मेरी ओर। मुझे लग रहा था, दूसरे मुसाफिर मुझसे ज्यादा भाग्यशाली हैं। उन्हें दो अनजानी आँखों का इतना ही हिस्सा मिल रहा है, जितना मुझे सब कुछ जानकर मिला है। मैंने उसका मूड बदलने के लिए कई तरह की बातें की थीं, शायद उन सबके लिए चापलूसी ही सही संज्ञा हो सकती थी। पहली बार जब वह मुझे मिली थी और जिस नजर से उसने मुझे देखा था, मैंने उन नजरों का पूरा जुगराफिया बयान करना शुरू कर दिया था, जैसे अब भी वे नजरें मेरी नजरों के सामने गड़ी हुई हैं और मैं उन्हें पहले की तरह देख रहा हूँ। पहली बार वह गुलाबी साड़ी पहनकर आई थी (हो सकता है, वह हरी रही हो) और उसके किनारों पर सोने का पानी चढ़ा था। उसने अपने बॉब-कट बालों में पीले गुलाब का फूल खोंस रखा था। यह सब सुनकर जब उसे हँसी आई थी तो मैं कितना खुश हुआ था। मुझे लगा था, मिट्टी की एक बेजान मूर्ति अचानक खिलखिला उठी है। उसने तब मेरी याददाश्त की तारीफ की थी और कहा था—"आपने तो फूल का रंग तक याद कर लिया है।"

इसके बाद उसकी बातों में जैसे फूलों का रस उतर आया था। और मुझे याद है, वह तब और भी खुश हुई थी, जब एक जगह बस रुकी थी और उसमें किसी स्कूल के ढेर-से लड़के अपनी यूनिफॉर्म में अचानक घुस गए थे। वे सब खाकी रंग की नेकर और कमीजें पहने थे और बस में खरबूजों की तरह भर गए थे और जब बस चलने लगी थी तो उन्होंने मिलकर एक साथ गाना शुरू कर दिया था—

सुन्दर भाई सुन्दर भाई
मुन्दर भाई मुन्दर भाई
सुन्दर भाई मुन्दर भाई
मुन्दर भाई सुन्दर भाई
दोनों भाई भाई
वाह रे भाई ! वाह रे भाई ! वाह रे भाई !

गाने से कान फटे जा रहे थे, लेकिन उसे मजा आ रहा था। अब मैं उसके चूने की तरह सफेद खिले हुए दाँत देख सकता था। उसकी आधी आँखें मेरे हवाले हो गई थीं। वह उन लड़कों की ओर देख रही थीं, गोकि वे बहुत साधारण परिवारों के रहे होंगे। वे सब मिडिल स्कूल से आगे के छात्र नहीं रहे होंगे। जिस ढंग से वे शोर मचा रहे थे, उससे मुझे लग रहा

था, वे जरूर किसी सरकारी स्कूल के लड़के होंगे, जहाँ हिन्दी जरूर पढ़ाई जाती होगी। यह भी हो सकता है कि अंग्रेजी वहाँ वैकल्पिक विषय हो। मुझे उन पर गुस्सा आ रहा था। एक तो उनमें किसी को सलीके से खड़े होने की तमीज नहीं थी। दूसरे, बाकी मुसाफिरों की परवाह किए बिना वे यूँ चिल्ला रहे थे, जैसे वे आदमी नहीं सूअर के बच्चे हों। लेकिन उसे उनका चिल्लाना जरूर अच्छा लग रहा था। उसका चेहरा धीरे-धीरे उभर आया था और उसकी बड़ी-बड़ी आँखें आसानी से देखी जा सकती थीं। मैंने तब अंदाज लगाया था कि इन आँखों में कितनी रोशनी है! अब तक मैं उसकी परछाईं ही देखता रहा हूँ। उसके गेहुँए चेहरे पर नमी उतर आई थी और वह ज्यादा इतमीनान के साथ बैठकर मेरे साथ का परायापन हटा रही थी।

मैंने तब उससे कहा था—"कहें तो आपका नाम इन लड़कों को बता दूँ। तब देखिए..."

"क्या देखिए, बता दीजिए, क्या कर लेंगे?"

"यह न पूछिए क्या कर लेंगे! आपके 'इरा' नाम के साथ ये लड़के 'गिरा' जोड़ लेंगे और 'भाई' की जगह 'बहन' बदल लेंगे। फिर... !'

"तो मैं आपका भी नाम उन्हें बता दूँगी।"

मैंने तब पास खड़े लड़के का हाथ पकड़ लिया था। मैंने उसकी ओर लौटकर देखते हुए आत्मीय होकर कहा था, "कहो तो इस लड़के से कह दूँ। तुम्हारे भी मन की हो जाए! घाटा तुम्हारा होगा—मेरे साथ तुम्हारा भी नाम जुड़ जाएगा।"

पहले तो उसने इसे गम्भीरता के साथ नहीं लिया था। उसने कह दिया था, "मेरे घाटे की चिन्ता मत कीजिए, अपनी सोचिए। मुझे जानता ही कौन है, लेकिन आपको..."

मैंने उस लड़के को पास खींचकर उसके कान में कुछ कहना शुरू किया था कि वह चीख उठी थी, "ऐसे मजाक अच्छे नहीं। बोर मत करो!"

लड़के को छोड़ते हुए मैं खूब हँसा था। मैंने तो धीरे से उससे पूछा था कि वे लोग किस स्कूल के विद्यार्थी हैं। वैसे भी ऐसी बेहूदी और हल्की हरकत मैं नहीं कर सकता था। लेकिन तब एक बात साफ थी कि सारे विरोधों, मुखौटों और स्थितियों के बावजूद उसे बच्चों से प्यार था। वे कहीं-न-कहीं उसके कागजी मन में स्याही के धब्बे थे और बहुत साफ होकर उभर रहे थे।

आदमी के क्षण कई बार उसे जानकर धोखा देते हैं। एक तो देखी हुई जगहों को बार-बार मेरे साथ देखने-जैसा एहसान मेरे ऊपर छोड़कर उसने मुझे चुनौती दी थी कि मुझमें ताकत हो तो मैं इन देखी जगहों को भी अनदेखी और अनजानी-सी बना दूँ। मैंने अपने मन के भीतर-ही-भीतर यह चुनौती स्वीकार कर ली थी और मैं पहली बार तब कामयाब हुआ था जब बुद्ध विहार के भीतर रंग-बिरंगी झंडियों को देखकर मैंने पूछा—"जानती हो, ये झंडियाँ क्यों लटकी हैं?"

तब उसने उन झंडियों को ध्यान से देखा था। वे खूबसूरत थीं और करीने से लटकी हुई थीं। वह पास जाकर उन्हें देखने लगी थी। उसने कहा था, "नहीं तो ···शायद सजावट के लिए।"

"तब तो तुमने सारनाथ पहले देखा ही नहीं।"

"मैं यहाँ कम-से-कम दस बार आई हूँ। पहली बार··· !"

मैंने रोकते हुए बताया था कि दस बार आना काफी नहीं हैं, बल्कि किसी जगह जाकर उसे अच्छी तरह पहचान लेना, कहीं उससे ज्यादा जरूरी है। मैंने तब बताया था कि वे रंग-बिरंगी धज्जियाँ मनौती का प्रतिकार हैं। किसी ने वहाँ आकर कुछ माँगा होगा और जब उसे वह मिल गया तो उसने ये धज्जियाँ वहाँ चढ़ाई होंगी। उसके लिए यह जानकारी सचमुच नई थी। उसने तब ऐसा भाव दिखाया था, जैसे उसने सचमुच सारनाथ के विहार का एक बड़ा रहस्य जान लिया है। वह यूनिवर्सिटी जाकर होस्टल में लड़कियों को जरूर यह बताएगी और उन्हें चुनौती देगी कि उनमें से किसी ने सारनाथ आज तक नहीं देखा।

पहली विजय पर मैं खुश हुआ था। मैंने कहा था, "कोई मनौती मान लो।" उसने अपनत्वभरी चिढ़न के साथ कहा था, "माँगना ही होगा तो आपके सामने भला क्यों माँगेंगे !"

"तो मैं बाहर चला जाता हूँ।" इतना कहकर मैं बाहर जाने लगा था तो वह डरकर मेरे पास आ गई थी। वह शायद छिपने की कोशिश कर रही थी और जब नहीं छिप सकी थी तो सामने आकर उसने एक अधेड़ महिला से 'विश' किया था। फिर जल्दी से विहार के बाहर चली गई थी। उसके पीछे जाते हुए मैंने पूछा था, "आखिर क्या हुआ ?"

वह झुँझला पड़ी थी। सारनाथ तब उसके लिए देखा हुआ बन गया था। वहाँ उसके लिए सब कुछ बेजान और बदमजा था। उसने बताया था कि वे उसके होस्टल की वार्डन हैं। उनसे बिना परमीशन लिए वह यहाँ चली आई है, लेकिन इससे बड़ी समस्या तब खड़ी होगी जब वे पूछेंगी —"तुम्हारे साथ कौन था ?" तब वह उन्हें क्या जवाब देगी ? वह बहुत देर तक बड़बड़ाती रही थी···न जाने क्यों सभी उसका पीछा करते हैं ! वार्डन को भी आज ही वहाँ जाना था।

वह कह सकती थी कि वे मेरे फ्रेंड थे, लेकिन नहीं··· !

फ्रेंड क्या होता है ? वे समझेंगी मेरा उनके साथ समझौता हो गया। तब वे पूछेंगी··· !

मैं चक्कर खा गया था। ऐसी बेहूदा बातें मेरे दिमाग में आ भी नहीं सकती थीं। मैं सोचने लगा था कि औरतों में जो शक और सन्देह होता है, उसका सम्बन्ध केवल उनके प्रेमियों अथवा पतियों के साथ नहीं है, वह हर किसी के साथ है और हर कहीं है और शायद इस तरह मन में शंकाओं और शिकायतों को पाले बिना किसी भी औरत का जिस्म ही नहीं बनता।

उसका मूड पूरे रास्ते खराब रहा था। खंडहरों के नितांत एकांत कोनों में भी उसे वार्डन

का चेहरा घूमता हुआ नजर आता था। उसका सारा बिहेवियर किसी उभरती हुई एडोलेसेन्स-एज की लड़की की तरह था। लगता था, जैसे वह कुछ समझ पा रही है, कुछ समझने की कोशिश में है और अन्त में शायद वह कुछ समझती ही नहीं। रिसर्च करने वालों की उमर धोखे की नहीं होती। लेकिन उसकी हालत देखकर कई बार मुझे उस पर गुस्सा आता, कई बार तरस आता और बहुत बार दया भी। लगता था, जैसे आज की शाम यूँ ही बीत जाएगी। इससे तो अच्छा होता कि अपने साथ किसी और दोस्त को ले लेता। वह नहीं जानती क़ि उसकी कम्पनी की खातिर मैंने कई बढ़िया दोस्तों से बहाने किए हैं और सच्चाई तो यह है कि बनारस आने का मकसद उसके सिवा और क्या था। मैं न तो ऐसा आस्तिक व्यक्ति हूँ जो बाबा विश्वनाथ के दर्शनों के लिए दौड़कर जाने वालों में शामिल हो सकूँ और न बूढ़ा कि सिर्फ मरने के लिए बनारस आने वालों में गिना जाऊँ।

सारनाथ से लौटते हुए तो मैंने सोचा था कि ऐसी शाम गुजारने से तो अच्छा है कैम्पस में वापस चले जाना और खिड़की में खड़े होकर लालपाती के रंग बदलते वृक्षों को देखना या फिर खम्पा कबीले के पीले चेहरे वाले उस चौकीदार से बातें करना। लेकिन वह शाम तो जैसे गिरवी थी और मेरी हालत उस कर्जदार की तरह हो रही थी, जिस पर इतना ब्याज चढ़ा दिया गया है कि उसकी अदायगी उसकी सीमा के बाहर है। बस से उतरकर हमने क्वालिटी में चाय पी थी और फिर बाहर निकलकर उसने रिक्शावाले को रोककर बिना कुछ कहे उसमें जैसे मुझे बैठने का हुक्म दिया था। थोड़ा आगे चलकर रिक्शावाले ने जब रिक्शा लौटाना चाहा था तो उसने डाँटते हुए कहा था, "सीधे ले चलो।" मेरी हिम्मत नहीं हुई थी कि मैं पूछूँ कि सीधे से उसका क्या अर्थ है और आखिर यह सीधापन कहाँ खतम होगा।

गुदोलिया चौक के आगे उसने रिक्शावाले को बाईं ओर चलने का इशारा किया था और मेरे लिए दाएँ-बाएँ का अर्थ लगाना अब भी कठिन था। उसने तब पूछा था, "लगता है आप पहली बार बनारस आए हैं ?"

"नहीं, और एक बार आ चुका हूँ, लेकिन मैं एक बड़ी कमज़ोरी का शिकार हूँ। मेरे साथ जब कोई एस्कोर्ट होता है तो मेरा दिमाग एकदम निश्चिन्त हो जाता है। मैं न किसी सड़क को याद कर सकता, न किसी जगह को। शहर का जुगराफिया इस कदर खो जाता है कि दिशाओं के सोच में भी भ्रम पड़ने लगता है। इसलिए तुम कह सकती हो कि मैं पहली बार ही आया हूँ।"

"आप बता सकते हैं, हम कहाँ चल रहे हैं ?" उसने जिस तरह मेरी ओर देखकर पूछा था, उससे मेरा सोया उत्साह जाग उठा था। लगता था, फिसलते-फिसलते कोई बचाने आ रहा है। बोर होती शाम सँभलती जा रही है। मैंने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा— "मेरे साथ जब एक रिसर्च स्कॉलर है तो मुझे सोचने की क्या जरूरत है ?"

"आप जानते हैं, मैं रिसर्च क्यों कर रही हूँ ?"

यह भी कोई जानने की बात है ?···मुझे सचमुच उसके इस प्रश्न पर अचरज हुआ था। कोई क्यों पढ़ता-लिखता है, इस बात में भी कोई रहस्य हो सकता है ? मैं जोर से हँसा था। उसे हाथ मारते हुए मैंने कहा था, "लगता है, अपने आसपास रहस्य का परदा डाले चलना तुम्हारी आदत हो गई है। या फिर फिलॉसफी पढ़ते-पढ़ते तुम्हारा दिमाग दिवालिया हो गया है। मैंने सुना है, फिलॉसफी पढ़नेवालों के दिमाग में कोई कीड़ा अपने-आप पैदा हो जाता है और भीतर-ही-भीतर वह दिमाग को कुतरता रहता है और···"

"वे पागल हो जाते हैं, क्यों न ?"

वह अब भी मुसकरा रही थी। उसी तरह मेरी ओर देखते हुए उसने कहा था, "मैं सिर्फ समय काटने के लिए रिसर्च कर रही हूँ।"

उसकी बात सुनकर मैं चौंका था। लेकिन तब आगे कुछ कहने का समय वहाँ नहीं था, क्योंकि हमारा रिक्शा दशाश्वमेध घाट के पास पहुँच चुका था। उसने रिक्शावाले को रोककर उसका किराया दे दिया था। मुझसे आगे चलने का संकेत करते हुए उसने कहा था, "आप भूल गए ? आपने ही तो कहा था कि शाम को बोटिंग करने चलेंगे। आप हमारे मेहमान हैं, फिर हम आपको कैसे नाराज कर सकते हैं ?"

मुझे खुशी हुई थी। मैं सचमुच चाहता था कि बनारस के घाटों को नाव में बैठकर देखूँ। वैसे भी पहाड़ों और नदियों से मेरा लगाव पुराना है। पानी मेरी कमजोरी है। उसमें जो नमी होती है, मुझे हमेशा लगा है, जैसे मेरी रूखी जिन्दगी में उसी ने कहीं-न-कहीं हरियाली दी है।

किश्ती पर सवार होते हुए मेरे पैर काँपे थे तो उसने सहारा दिया था। तब शाम पानी के नीचे उतरकर डूब चुकी थी। चाँद अब भी ऊपर नहीं आया था और दूर एक कोने में किसी झाड़ के साथ लटका हुआ-सा दिखाई दे रहा था। लेकिन गंगा के घाट वीरान नहीं थे। बहाए हुए छोटे-छोटे दीए पानी पर तैर रहे थे और उनकी रोशनी लहरों के साथ मिलकर झिलमिल हो रही थी। शंखों और घंटों की आवाज मंदिरों से आ रही थी और उनके साथ मिलकर आती हुई शहर की आवाजें टूट-टूटकर बिखर रही थीं। घाट के किनारे भीड़ नहीं थी और न पंडों का दिवालियापन पीछे लगा था। इक्के-दुक्के लोग यहाँ-वहाँ खड़े थे और जो खड़े भी थे, वे शायद भँग के नशे में थे, इसलिए सबकुछ देखकर भी जैसे कुछ नहीं देख रहे थे। किश्ती छोटी, लेकिन साफ-सुथरी थी। इस सारे माहौल में उसके साथ अकेले बोट में बैठना खासा रिलीविंग था। सारी थकान कपूर की तरह हवा में उड़कर गायब होती जा रही थी।

नाववाला सामने के घाटों के बारे में बताने लगा था, "साहब, ये है अहिल्याघाट, इसे अहिल्याबाई ने बनवाया था।···ये पेशवाघाट है··· इसे··· !"

"हाँ, मालूम है···' उसने उसे डाँट दिया था, 'चुपचाप नाव चलाते जाओ। हमें सब पता है।"

"लेकिन..." मैं कुछ कहना चाहता था कि वह मेरे पास सरक आई थी। उसने कहा था, "ये लोग टुरिस्ट को डिसीव करते हैं। जानते हों या न जानते हों, जो मन में आता है, बोलते जाते हैं। मैं आपको बताऊँगी।" उसने सामने के दो घाटों के नाम बताए और उनका सारा इतिहास दोहरा दिया। इतने अच्छे ढँग से केवल रिसर्च स्कॉलर ही समझा सकता था। लेकिन इसके बाद उसने मुझसे पूछा था, "क्या यह जरूरी है कि आप इन घाटों के बारे में सबकुछ जानें? जान भी लेंगे तो क्या करेंगे, आपको इस घाटों पर कोई रिसर्च तो करनी नहीं।" मैंने कुछ कहना चाहा था, लेकिन उसने कतई मौका नहीं दिया। वह कहती गई, "देखिए न, मुझे लीजिए। थीसिस क्यों पूरी की जाए यही जिद है। उसके बिना जिन्दगी डूब तो नहीं रही। ये सब बेमतलब की बातें हैं, बेकार की स्नाबरी। फिर पी-एच० डी० लेने या न लेने से फर्क ही क्या पड़ता है। मैं जो हूँ वही तो बनी रहूँगी न? बल्कि रिसर्च पूरी कर लेने में एक और मुसीबत है। आप पूछेंगे—क्या? आपको पूछने की जरूरत नहीं है, मैं ही बताए देती हूँ...।"

मैं जोर से हँस पड़ा था। ऐसी बातों को भला कौन गम्भीर होकर लेगा। समय काटने के लिए वे बुरी नहीं हैं। लेकिन उसने अपनी बात और साफ की थी और कहा था, "आप यकीन मानिए, मैं सच कह रही हूँ। आप उस आदमी की कल्पना कर सकते हैं, जिसे किसी अपराध के जुर्म में कैद की सजा सुना दी गई है और जब उसके छूटने के दिन आते हैं तो वह परेशान होने लगता है। जेल में कम-से-कम खाने को तो मिलता था, बाहर निकलते ही...!"

"कितनी अजीब बातें करती हो! अपने को ऐसी दयनीय स्थिति में रखते हुए शर्म नहीं आती?"

"पहले आती थी"—उसने सामने अँगुली दिखाते हुए कहा था, "कुछ देखते भी जाइए, वरना फिर कहेंगे, कुछ दिखाया ही नहीं।"

मैंने दाहिनी ओर देखा, घाट के किनारे आग जल रही थी और नगाड़ों के एक सुर से बजने की तेज आवाज आ रही थी। अँधेरे में आग की लपटें भयावह लग रही थीं और पानी में पड़ती उनकी छाया मन को थर्रा देती थी। लगता था, खून की नदी में हम् बोटिंग कर रहे हैं!

उसने कहा था, "उधर ज्यादा मत देखिए, मुझे तो डर लगने लगता है, इसलिए मैं अकेले शाम को कभी बनारस घाट देखने नहीं आती।"

वह मेरे और पास सरक आई थी, जैसे उसे सचमुच डर लगने लगा था। उसने अपने हाथ मेरे कंधे पर रख दिए थे और फिर उसने बताया था कि वह हरिश्चन्द्र घाट है। किसी समय इसी जगह राजा हरिश्चन्द्र ने एक डोम के यहाँ नौकरी की थी और अपने बेटे को जलाने के लिए शैव्या से कर के रूप में कफन माँगा था। अब यहाँ मुरदे जलाए जाते हैं और जब शव जलता है तो कुछ लोग नगाड़े पीटकर आवाज करते हैं। ये सब किराए के लोग

हैं।" उसने जोर देकर कहा था—"लोग तो यहाँ मरने के लिए आते हैं और मरने पर यहाँ जश्न मनाया जाता है। कहा जाता है कि जो बनारस में मरता है वह जिन्दगी के आने-जाने से हमेशा के लिए मुक्ति पा लेता है।"

तब हमारी नाव उस घाट को पार कर चुकी थी, लेकिन आग की भयावह लपटें तब भी दूर नहीं हुई थीं। उसने किश्तीवाले से कहा था कि वह किश्ती को थोड़ा ऊपर धारा के बीच में ले चले। नाववाले ने ऊपर की ओर नाव खेनी शुरू कर दी थी। नाव खेते हुए उसने कहा था, "हुजूर, दूसरे छोर में भी देखिए, वह मणिकर्णिका घाट है।"

मैंने लौटकर पीछे देखा था। वहाँ भी उसी तरह कोई शव जलाया जा रहा था। वह सामने ही देख रही थी। उसने कहा था, "इस शहर का भाग्य इन्हीं दो घाटों के बीच बँधा है। इन्हीं के बीच में बाकी सारे घाट हैं। आप ही बताइए, अपने-आपको इस तरह तेज ज्वाला में जलते देखना भला किसे अच्छा लगता है। क्या हम रोज अदृश्य ज्वालाओं में नहीं जलते रहते? इसीलिए मैंने कहा था कि बनारस के घाटों की सारी खूबसूरती सिर्फ मरनेवालों के लिए शेष रहती है।"

उसने फिर अपना सारा दर्शन उँडेल दिया था—"यदि मृत्यु सत्य और सनातन है तो उसे प्रदर्शनी की तरह यूँ क्यों देखा जाए? फिर कम-से-कम उन क्षणों में तो इसकी छाया होनी ही नहीं चाहिए जो आदमी के जीने के क्षण हैं।"

वे सचमुच हमारे जीने के क्षण थे, लेकिन अब मुझे लगता था जैसे दोनों ओर के नगाड़े सारे घाटों में बजने लगे हैं और दोनों ओर की चिताओं की ज्वालाएँ फैलकर एक हो गई हैं। पानी का गहरापन इस भय को और भी गम्भीर बना रहा था। मैंने कहा था, "क्या हम अब वापस नहीं चल सकते?"

"नहीं, अभी तो चाँद निकल रहा है।" उसने ऊपर आसमान में देखा था। सचमुच चाँद अब झाड़ से टूटकर आसमान में औंधा लटकने के लिए धीरे-धीरे ऊपर बढ़ रहा था। हल्की-सी रोशनी नीचे आने लगी थी। उसने बोटवाले से हरिश्चन्द्र घाट के आगे पुल की तरफ चलने को कहा था तो वह हुज्जत करने लगा था। उसने कहा था कि इसके लिए दो रुपए और लगेंगे और वह कह चुकी थी कि दो रुपए मिल जाएँगे, पर किश्तीवाले की समझ में यह बात शायद नहीं आई थी। वह दशाश्वमेध घाट की तरफ नाव लौटाने लगा था। तब वह जोर से चिल्लाई थी, "अबे पिल्ले, सीधे ले चल! पैसा ही लेगा न?"

मैंने तब नाववाले को समझाया था और उसके बाद वह खुश हो गया था, सहसा आमदनी यूँ बढ़ जाए तो किसे बुरा लगेगा। उसने कहा था, "बाईजी का दिमाग तो समझ में ही नहीं आता। सीधे ऐसा कहो न।"

उसने नाव नीचे की ओर मोड़ दी थी। हम दोनों तब गंगा की दूसरी ओर देखने लगे थे। उसने बताया था कि दूसरी ओर दूर-दूर तक फैली रेत है और यदि दिन होता तो वहाँ बैठने में खूब मजा आता। उस तरफ न घाट थे, न घर; केवल अँधेरा था और अँधेरे में घनी

होती हरियाली थी, शायद वह पेड़ों का छाया थी। वह गुनगुनाने लगी थी। निश्चय ही वह मौज में थी और अपने को उस अँधेरे माहौल में मिटा देने के लिए आतुर-सी जान पड़ती थी। उसने जब गाना बंद किया तो मैंने उसकी तारीफ की थी।

और कोई होता तो इस तरह तारीफ सुनकर खुश हो जाता। वह तुनक उठी थी, "रहने भी दीजिए। मैंने गाना कोई आपके लिए तो गाया नहीं था।"

अजीब बात है? यह लड़की है या अहमक! सबकुछ अपने लिए ही करना है तो साथ चाहने का मकसद क्या है? मुझे क्रोध आया था, लेकिन मैं शाम के उस उतरते वक्त को भारी नहीं बनाना चाहता था।

मैं बहुत जोर से हँस दिया था और फिर कहा था, "अपने लिए सबकुछ करना सबसे अच्छी बात है। इससे संतोष मिलता है। है न?"

उसने तब चढ़ती हुई नजरों से मेरी ओर देखा था। वह मेरा मतलब समझ गई थी। मैं उसी तरह उसकी ओर देखे जा रहा था। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें उस अँधेरे में भी बिल्ली की आँखों की तरह चमक रही थीं। उसने एक हाथ से गंगा का पानी चुल्लू में लिया था और मेरी ओर उड़ाते हुए पूछा था, "आपसे एक बात पूछना चाहती हूँ।"

"जरूर पूछिए।"

"आप मुझे क्या समझते हैं?"

मैंने उसके चेहरे को गौर से देखा था। देखना चाहता था कि उस पर उभरे निशानों का क्या अर्थ है! मैं शायद कुछ सोचने भी लगा था। चाहता तो आसानी से कह सकता था कि मैं उसे एक अच्छी-खासी खूबसूरत लड़की समझता हूँ। उसकी सारी सुन्दरता को उपमाओं के माध्यम से कसकर बखान सकता था। लेकिन उस वक्त जिस ढंग से उसने प्रश्न किया था, उसका उत्तर इन माध्यमों से देना अपने इंटेलेक्ट का दीवाला पीटना था और मैं क्या, कोई भी उस वक्त इस कदर पिटने के लिए तैयार नहीं हो सकता था। मैंने तब आसमान की ओर देखा था और निहायत दार्शनिक ढंग से प्रश्न किया था, "क्या तुम गिन सकती हो, आसमान में कितने तारे हैं?"

"यह काम वैज्ञानिकों ने पूरा कर दिया है। आपको पता न हो तो किसी वैज्ञानिक से पूछ लीजिए, वह आपको तारों की सही-सही संख्या बता देगा।"

मैंने झेंपती हुई-सी हँसी में उसके व्यंग्य को पी जाना चाहा था और मौसम की बातें करने लगा था। बातें करते-करते जब मैंने उससे समय पूछा था तो उसे जैसे बिजली का तार छू गया था। उसने मेरी ही कलाई को उठाकर उसमें बँधी घड़ी देखने की कोशिश की थी। उस हल्के-से उजाले में कठिनाई के साथ उसने समय देखा था और फिर बिना मुझसे कुछ कहे किश्तीवाले को हुक्म दिया था कि वह किश्ती को नीचे उतारकर दाहिनी ओर ले जाए और उसे घाटों के बाद के टीले पर लगा दे। वहाँ से यूनिवर्सिटी जाने का सीधा रास्ता है।

उसने मेरी ओर भी देखा था और मुझे लगा था जैसे इसी तरह का कोई आदेश वह

मुझे भी देने जा रही है; लेकिन उसने ऐसा कुछ नहीं किया था, बल्कि चिंता प्रकट की थी और कहा था, "बहुत देर हो गई। हमें आठ बजे के बाद होस्टल से बाहर रहने का हुक्म नहीं है। फिर आज वार्डन ने मुझे आपके साथ देख भी लिया था ...।"

"तो क्या हो गया? तुम कह देना ..."

इसके आगे उसने मुझे बोलने नहीं दिया था। उसने उसी तीखेपन से कहा था, "मैं खूब जानती हूँ, मुझे क्या कहना चाहिए। वह तो मैं कह लूँगी। लेकिन अब सोचती हूँ, मैंने एक गलती कर डाली है। मुझे आपका परिचय उनसे करा देना था।"

नाव नदी के बीच की धारा को छोड़कर अब किनारे की ओर पहुँच रही थी। सामने एक टीला दिखाई देने लगा था। उसके नीचे एक अकेली छोटी नाव बँधी थी। किश्तीवाला पतवार को तेजी से चलाने लगा था। वह सीधे किनारे को देखने लगी थी। उसी ओर देखते हुए उसने कहा था, "आपको आज एक राज की बात बताती हूँ।"

मैं सुनने के लिए सतर्क हो गया था, लेकिन तभी नाव किनारे पर लग गई थी और कूदकर हम जमीन पर उतरे थे। वहाँ एकदम खामोशी थी। टीले के ऊपर एक छोटी-सी कुटी बनी थी। पता नहीं उसके भीतर कोई था या नहीं वहाँ किसी तरह का प्रकाश नहीं था। टीला चढ़ते हुए मैंने पीछे देखा था, खामोश नदी हल्के धुँधलके के बीच बही जा रही थी। सामने मकान थे और फिर अँधेरी सँकरी गलियाँ। इन गलियों से गुजरते हुए उसने बताया था कि कुछ समय पहले इसी तरह सारनाथ में अचानक उसकी वार्डन मिल गई थी। तब वह किसी और आदमी के साथ थी। वह उसी के शहर से आया था और अपने साथ उसके भाई की एक चिट्ठी लाया था। चिट्ठी में भाई ने कोई खास बात नहीं लिखी थी, लेकिन कुछ संकेत जरूर दे दिए थे और उतने संकेत उसके लिए काफी थे। उसे तब अच्छा नहीं लगा था। वह नहीं चाहती थी कि उसका सौदा उसके घरवाले तय करें। लेकिन उसने इसका अंदाज उसे नहीं लगने दिया था। वह हँसते-मुसकराते हुए उसके साथ खँडहरों से गुजर रही थी। तभी अचानक उसका पैर नीचे खिसक गया था। उसे तब उसने पकड़ लिया था और इस तरह गिरने से बचाया था। लेकिन उसकी सारी देह कांप उठी थी। इसलिए अपने को सँभालने के लिए वह उसे पकड़े खड़ी रही थी। तभी उसकी वही वार्डन वहाँ आ धमकी थी और तब वहाँ उन्होंने उससे कुछ नहीं कहा था, लेकिन होस्टल पहुँचते ही डाँट लगाई थी। फिर चार्ज-शीट देने की धमकी भी दी थी और उसके चरित्र पर लाँछन भी लगाया था। तब उसके सामने बचने के लिए एक ही रास्ता था—वह सही-सही बात बता दे। और जब बताना ही है, उसने सोचा था, तो पूरे कन्विनसिंग तरीके से बात क्यों न रखी जाए? इसलिए उसने कह दिया था कि वह उसका होनेवाला पति है और उसके साथ घूमने जाना उसकी मजबूरी थी। उसने अपनी तरफ से यह भी जोड़ दिया था कि अगले महीने ही उनकी शादी हो जाएगी।

इस घटना को बीते कई महीने गुजर गए थे और जब वार्डन को किसी तरह का

निमंत्रण-कार्ड नहीं मिला था और जब उसने एक दिन पूछा था तो उसने कह दिया था कि वह आदमी निकम्मा और बेईमान निकल गया और उससे किसी तरह का समझौता नहीं हो सका।

अपने ही झूठ पर तब वह खूब हँसी थी। हँसते हुए उसने कहा था, "देखा आपने, दोनों बातें मैंने कितनी ठोस ढंग से कही थीं। आप ही बतलाइए, किसी को शक हो सकता था?"

"लेकिन सही बात क्या थी? वह आदमी कौन था?" मैंने जब पूछा था तो उसने अपनी चोटी को अपने ही हाथ से हिलाते हुए कहा था, "आपको क्या करना है? कोई भी हो सकता है! यह भी हो सकता है कि वह सचमुच मुझसे मैरेज करना चाहता हो. लेकिन यह जानकर कि वह एक व्यापारी का लड़का है, मैंने ही इनकार कर दिया हो।"

मैं उसके कहने के अर्थों को समझ रहा था, इसीलिए मैंने कहा था, "तुम्हारे भीतर कितना जहर भरा है। एक बात भी सीधे ढंग से नहीं कह सकती।"

"मुझे व्यापारियों से निहायत चिढ़ है। वे कभी सच्चे प्रेमी नहीं हो सकते। उनका प्यार केवल पैसों के साथ होता है। फिर शादी एक बहुत बड़ा चक्कर है। कई समझौते करने पड़ते हैं। दूसरे का बच्चा बेमतलब खुद पैदा करना होता है.... ।"

यह सारी बात बहुत सहज ढंग से कहकर उसने अपनी सहेली की पूरी कहानी कह डाली थी। जिस साल उसने रिसर्च पूरी की, उसी साल उसकी जबरन शादी कर दी गई। फिर लेन-देन के मामले को लेकर झगड़ा हो गया। उसने इस बात पर जोर देकर कहा कि शहरों में रहकर हम पुरानी-सी लगनेवाली बात को नहीं समझ सकते। अब वह लड़की विवाहित-कुमारी है। पहले से वह एकदम बदल गई है। उसका सिर चक्कर खाता है और इतना पढ़ने-लिखने के बाद भी उसकी हालत दूसरी औरतों से अच्छी नहीं है। वह कहती है कि एक बार शादी हो जाए, तो फिर अकेले रहना अपने-आपके लिए सिरदर्द तो है ही, दूसरों के लिए भी एक काँटा बन जाना है। तब सारी जिन्दगी प्रश्नों के चक्रव्यूह में फँस जाती है। फिर उसमें और अनपढ़ औरतों में कोई भेद नहीं रह जाता और लगता है जैसे उस स्त्री के लिए पढ़ने या पढ़ाने का कोई अर्थ नहीं होता। उसका अर्थ मात्र एक पुरुष होता है और वह लालपाती की तरह सबकी आँखों का काँटा बन जाती है।

उसने मेरी ओर देखकर पूछा था, "इस झाड़ को देखकर आखिर सबको आश्चर्य क्यों होता है? इसीलिए न कि वह एक भ्रम की स्थिति पैदा करता है।"

इसके बाद उसने जैसे कोई सार पा लिया था। उसने कहा था, "इसी से मुझे अपनी रिसर्च पूरी करने में डर लगता है। जिस दिन रिसर्च पूरी की उसी दिन दूसरों के सिरों में दर्द उभरने लगेगा।"

अब कैम्पस का गेट लगभग सामने था और उसकी चिंता बढ़ने लगी थी। उसके पैर धीमे हो गए थे और मालवीयजी की स्टेच्यू के पास रुककर उसने एक लम्बी साँस ली थी। उस साँस में दिन-भर की थकावट उभर आई थी। उसने कहा था, 'अब वार्डन को फेस

करना पड़ेगा।"

"इसमें डर किस बात का है। उनसे बता देना···"

उसने मेरी बात फिर काट दी थी, "मैंने आपसे कहा था न कि मैं खूब जानती हूँ कि कब कौन-सा बहाना बनाना चाहिए। लेकिन आज वह कम्बख्त कुछ पूछेगी ही नहीं। वह भोंडे ढँग से हँसकर एक ही प्रश्न करेगी—क्या तुम्हारे साथ उसका समझौता हो गया? और मैं जानती हूँ कि इसका कोई भी उत्तर उसे संतुष्ट नहीं कर सकता। लेकिन···"

उसने झुककर अपने दोनों हाथ अपने पैरों पर फेरते हुए कहा था, "क्या हम सब मसहरियों में बंद रहने के आदी नहीं हो गए?···अच्छा, गुडनाइट।" उसने हाथ उठाकर 'विश' किया था और फिर मेरी ओर देखते हुए वह बाईं ओर मुड़ गई थी।

खिड़की के बाहर धूप निकल आई थी और सुबह के घने कोहरे के बाद उसकी रोशनी पन्नी के सुनहले कागज की तरह चमकने लगी थी। मैं हाथ में कागज का वह टुकड़ा लिए तारकोल की सपाट सड़क को देखने लगा था। तभी उस अकेली सड़क पर चपटे चेहरेवाला वह खम्पा चौकीदार आता हुआ दिखाई दिया। उसे देखते ही मैंने खिड़की बन्द कर ली, क्योंकि मैं जानता था कि यदि उसने मुझे देख लिया तो वह ऊपर आए बिना नहीं रहेगा। आकर वह फिर फिजूल की बातें करेगा। हो सकता है वह यह भी पूछ बैठे कि कल रात उसने जो कुछ कहा था, गलत तो नहीं था।

एक थकी और उदास लड़की, यानी कुलसुम !

एक सम्हली और सधी लड़की, यानी कुलसुम !

एक खूबसूरत लड़की—न कवि और न लेखक और तब भी हर वक्त 'मूड' की गिरफ्त में बन्द। जी है तो जिन्दगी है। नहीं है जो दुनिया हँसती हो, कुलसुम झुलसी हुई, गिरी हुई और पीलिया के रोगी सी दबी-दबी नजर आएगी। उसके बदलते हुए अन्दाजों का कोई कारण नहीं !

कॉलेज में 'सर' ने उसे अलग बुलाया, तो क्यों बुलाया उसके रहते एक दूसरी लड़की से बातें कीं तो क्यों कीं ? गोया बातें करना था तो उसी से। उसी से बातें करो तो बातें आसमान पर। बॉय फ्रेंड चाहिए ? किसे नहीं चाहिए, किन्तु ऐसा जो, उसकी बजाए। जो वह कहे, सो माने। जब मानने लगे तो उसे लानत भेजे—'आदमी है ! आदमी होकर उल्लुओं की तरह हर कहना मान लेता है !'

एक दिन पूछा, 'कुलसुम, तुमने उल्लुओं को कहना मानते देखा है ?'

बोली, 'न देखा होता तो कैसे कहती, ठहरो… !' वहीं खड़े-खड़े उसने सीटी मारी। दो लड़कों ने लौटकर देखा तो उसने एक को बुलाया और कहा—"दो पान ला दे, उस सिन्धी की दूकान से !"

लड़के ने घूमकर मेरी ओर देखा। फिर अपनी उड़ती नजरें कुलसुम के सारे जिस्म पर से उतारकर वह दौड़ गया। कुलसुम हाथ में दो-तीन पुस्तकें लिए उसी तरह खड़ी रही। अपने तिरछे चेहरे से आँखें चलाते हुए वह मेरी ओर चुनौती भरी मुद्रा में देखती रही और कमर को एक ओर झुकाकर उसके सहारे हवा में झूलती रही। घेरेदार स्कर्ट के ऊपर चुस्त ब्लाउज पहने हँसती फूलती हुई वही लड़की अपनी ओर से आती हुई हवा तक को जैसे काटकर भेज रही थी। उसकी धारें मेरे खुले हुए जिस्म में लगकर दर्द पैदा कर रही थीं। मैं मान गया, वही लड़का क्यों, मैं भी होता तो दौड़कर ऐसी लड़की के लिए पान ला सकता था !

लड़का तीन पान लाया। तीनों उसने कुलसुम के हाथ में पकड़ा दिए। वह अब सीधी खड़ी थी। उसने पूछा, "तीसरा किसके लिए ?"

"मेरे लिए। अपने हाथ से दे दो। मजा आ जाएगा !"

कुलसुम के तेवर बदल गए। उसने तीनों पान फेंक दिए और मेरा हाथ पकड़कर खींचते हुए बोली, "चलो और कहीं खाएँगे।"

लड़का वहीं खडा गाली देता रहा, पर उस पर कोई असर नहीं हुआ। तेजी से चलकर

लड़के के मोड़ से आगे बढ़ने के बाद उसने जोर से साँस ली और खूब खिलखिलाकर हँस पड़ी। बहुत देर तक वह हँसती रही। मुझे लगा वह पागल हुए बिना नहीं रहेगी। उसकी तनी हुई छातियाँ जोर-जोर से वर्जिश कर रही थीं और वह हँसे जा रही थी। सड़क से निकलने वाले कितने लोग थे। कोई सूनी जगह तो थी नहीं (बम्बई में सूनी जगह ही कहाँ है ?) पर उसके लिए कोई नहीं था—जैसे वह अकेली थी !

तीन मिनट बाद उसने हँसी रोकी, वह भी अपने दाँतों से होंठों को दबाकर। मेरी ओर देखकर उसने प्रश्न किया, "क्या समझे ?"

मैंने कहा, "तुम पागल हो··· !"

"हाँ," वह बोली, "लड़कों को इस तरह तँगाने में मजा आता है। पर···" उसने एक दूसरे लहजे में कहा, "लड़का एकदम बुद्धू नहीं था। आदमी लोग का दिमाग भी खूब ! मान लिया।" मैंने प्रश्न भरी मुद्रा में उसकी ओर देखा। उसने कहा, "साले कूँ अक्कल है। तीन पान लाया था ! बोलता था—एक हमकू अपने हाथ से दो !··· लड़की होता न···" उसने एक हाथ से संकेत करते हुए कहा, "एकदम बंडल ! भेजे में कोच्छ नईं, पाना लाता नईं, लाता तो दो ही लाता। लड़की लोग सब मूरख··· !" वह एकाएक रुक गई और अपने बँधे हुए होंठों को हल्का-सा फिराकर बोली, "अपन को छोड़कर !"

पेट्रोल पम्प के पास खड़े-खड़े इतनी बातें हो गईं तो मुझे लगा सड़क पर उड़ती हुई नजरें बढ़ती जा रही हैं। बांद्रा के कसाई घर से निकलने वाले हर आदमी के हाथ में मांस के टुकड़े हैं और नजर में कुलसुम की सिमटती हुई तैरती गोरी देह है ! मैं यह बराबर देख रहा था। मस्जिद से निकलते मुसलमान अल्लाह को भूलकर इस फरिश्ते को देख रहे थे और मेरे लिए यह एक दर्द की बात थी। मैंने कहा, "यहाँ से चलें !"

टैक्सी सामने से निकली तो उसे बुलाकर हम भीतर हुए। कुलसुम बताती रही। उसकी जितनी हॉबी हैं, उनमें एक यह भी है। वह अकसर चौराहों पर खड़ी हो जाती है। खड़े-खड़े लोगों की नजरें ताकती है। ये नजरें एक अन्दाज हैं और इन अन्दाजों ने उसे हर नजर को पहचानने के काबिल बना दिया है। वह अकसर चौराहे से लगे बस-स्टॉप पर घंटों खड़ी रहती है। कहती है—"आदमी लोग भेड़िया का माफिक है। और कुच्छ नईं देखता, जिस्म देखता है !"

मैंने कहा, "अपने जिस्म की बात कर रही हो तब तो सही है ! उसे कौन न देखेगा ?"

कुलसुम ने तुरन्त मेरी नाक दबा दी। बोली, "तुम्हारा बात नईं है। और का है !"

बैंड-स्टैंड आकर टैक्सी रुक गई। उतरकर हमने देखा—ढलते हुए सूरज की रोशनी में समन्दर की लहरें पछाड़ खा रही थीं। मुझे समन्दर हमेशा पसन्द आया है। घंटों किनारे पर बैठा रहा हूँ। समन्दर को ताकते रहो तो लगता है वह अपने आप बढ़ता जा रहा है। उसका उफान ऊपर उठ रहा है और अगले क्षण ही वह मेरे ऊपर आकर रहेगा। तब भय-सा लगने लगता है। मैं अपनी आँखें बन्द कर लेता हूँ। केवल आवाजें रह जाती हैं, मीठी-सी आवाजें, यादों के-से स्वर ! समन्दर के किनारे ही कितनी यादें हैं ! बैंड स्टैंड से लेकर दादर, माहिम और जूहू बीच, फिर बरसोवा और मद आईलैंड ! छुट्टियों का मौसम और चढ़ती हुई, धूप में रेतों पर सोए खुले हुए जिस्म और उनकी हल्की-सी गरमी ! आदमी के तपे हुए

विकृत क्षणों में ऐसा एक क्षण काफी है।

समन्दर के मैंने कई रूप देखे हैं। एक वह है जो अब देख रहा हूँ। सख्त चट्टानों से भरा किनारा और इस किनारे से सिर फोड़ती हुई लहरें। बाईं ओर की नुकीली जगह में दोनों ओर का सिमटता पानी उछाल भरता है। लगता है कमसिन और नादान लड़कियों को ऊपर उछाल-उछालकर कोई खिला रहा है। ऐसी जगह चट्टानों के घेरों में अपनी गर्ल फ्रैंड के साथ बैठने में जो मजा है, कहीं नहीं है। बैंड स्टैंड इसी के लिए जाना जाता है। मैं यहाँ अकेला भी आया हूँ और सामने के एक मकान की छत से खड़े होकर अँधेरे-उजाले में किनारे को देखा है। अँधेरी रात में सफेदी चमकती है। चाँदनी रात में लाल-नीली-पीली साड़ियों और स्कर्टों के किनारे धब्बे की तरह उभरते हैं। दोपहर में चमकते सूरज के साथ दो पास-पास मिले हुए काले सिर दिखाई देते हैं। लगता है सूरजमुखी के किसी भारी-भरकम फूल पर दो भौंरे उड़ते हुए नजर आ रहे हैं।

समन्दर का दूसरा रूप है जुहू का। खुली हुई रेत और नंगे खड़े सीधे नारियल के झाड़। सुबह रेत पर मछलियों की हल्की नीली-सी जेलियाँ और ओस-जैसी नमी। दोपहर की चिलचिलाहट, सूरज जैसे वहीं से उभरा है। और शाम को खामोश उतरती साँझ। नारियल के वृक्षों के पीछे से सूरज गेंद की तरह भागता हुआ आता और सामने के अछोर समन्दर में छलाँगें मारकर डूब जाता है। रेत जितनी नरम और आसान है, बम्बई की तपी हुई जिन्दगी यहाँ आकर उतनी ही अबोध बन जाती है। कितने व्यापार होते हैं यहाँ, सब मौज के लिए चाहे वह नीसादर मिली घटिया शराब की भट्ठी हो, भीगती हुई रात में आवारा घूमती हुई औरतें हों। छुट्टियों के दिन लगे हुए मेले में हँसते-खिलखिलाते जोड़े हों या डूबती साँझ की किसी हल्की-सी आड़ में साँसों को मिलाते हुए नाजुक दौर हों। यह सब वसीयत है, जुहू के दौलतखाने की।

कुलसुम की पसन्दगी का कायल हूँ। इसीलिए मैंने समन्दर की बातें की हैं। समन्दर के यही दो रूप बाकी और किनारों पर फैले हैं। मैं इन दोनों को पसन्द करता हूँ। कुलसुम चौराहे पर खड़े आदमियों को घूरती है, क्योंकि यूँ मेले में मर्द को घूरना औरत की मजबूरी है। आदमी अकेले में ही किसी लड़की को पसन्द करता है, यह उसकी बुद्धिमानी का सवाल है। कुलसुम से यह कह देता तो साँझ बिगड़ जाती, जैसे पान वाला लड़का नाहीं कर देता तो अपने को अभागा मानता।

कुलसुम की दोस्ती दिन और महीनों पार कर चुकी है। हाथ में किताबें लेकर कॉलेज जाने के लिए वह घर से निकलती है। सीधे बांद्रा कॉलेज जाती है। पहला पीरियड अटेंड करती है। फिर... । फिर सारा दिन उसका! बांद्रा में उसकी सहेलियों की कमी नहीं है! उनका साथ हो, फिर बम्बई का कोई कोना दूर नहीं। उसे दोपहर का लंच लेते हुए चर्चगेट के पारसी डेरी फार्म में देखा जा सकता है, कोलाबा चाइनीज रेस्टोरेंट में। वर्ली के बटरोली या विक्टोरिया टर्मिनस के रेलवे-रेस्टोरेंट में। होटल बदलना उसका शौक है, ठीक उसी तरह जैसे वह कपड़े बदलती है। जिन-श्लेक्स और स्कर्ट्स से लेकर साड़ियों तक में कुलसुम देखी जाती है। साड़ियों को तरह-तरह से पहनना दूसरी हॉबी है। पल्लूवाले छोर को कमर के कोने में खोंसकर जब वह अपनी रॉ-सिल्क की साड़ी पहनती है, तो मैं छटपटा

उठता हूँ। यूँ पहनने से उसके कूल्हे उभरते हैं और कलाइयों की गोलाइयाँ साफ नजर आती हैं। अमेरिकी गेहूँ की तरह उसका सफेद जिस्म बादामी साड़ी को फाड़ता-सा नजर आता है। ऐसे किसी वक्त मैंने कुलसुम का साथ जरूर चाहा है! पर उस कमबख्त को तँगाने में जैसे मजा आता है। वह अकसर स्कर्ट पहनकर आती है और न जाने क्यों मुझे उसका खुला हुआ सामने का भारी आवारा उभार पसन्द नहीं आता। वह निहायत बेहया और बेशर्म औरतों की तरह मुझे दिखाई देती है।

बैंड-स्टैंड की उस शाम कुलसुम ऐसे कपड़े पहने थी। मैंने कहा, "तुम वह साड़ी क्यों नहीं पहनकर आती?" वह बोली, "कल जरूर आऊँगी।"

"कल क्यों?...." उसने मेरा प्रश्न पूरा नहीं होने दिया। बोली, "यूँ ही साड़ियाँ पसन्द हैं तो अपनी पसन्द की दो-चार ले दो।" कुलसुम ने खीझते हुए मेरे कन्धों पर हाथ रखे। अपना सिर मेरे सिर से मिलाकर जीभ निकालते हुए वह बोली, "हराम का खाना, खाना नहीं होता, हुजूर! वह पेट भरना है। मजा तो अपने दिए बिल में है। अपनी पसन्दगी की भी कुछ खरीद दीजिए।"

इतना कहकर वह हँस पड़ी। मैंने उसका सिर नीचे दबाते हुए, उसकी पीठ पर हल्के से दो घूँसे लगाए, "चलो, आज ही हो जाए!"

"अभी?....अभी तो यहीं मजा आ रहा है!" कुलसुम लौटकर सीधी लेट गई। उसने अपना सिर गोद में रख लिया और मेरे हाथों को अपने पेट के पास लाकर दबाते हुए बोली, "अरे, इतनी जल्दी सरेंडर कर दिया! कुछ तो.... !"

"नहीं," मैंने अपनी उँगलियाँ दबाते हुए कहा, "तुम्हारा कहना सही है, हराम के खाने में मजा नहीं।"

कुलसुम खूब हँसी। इतनी हँसी कि मेरे गले में अपना हाथ डालकर वह झूले की तरह लटकती रही और उसी ताव में उसने मेरे होंठ तक चूम लिए। मैंने देखा, वह समय ही और था। अँधेरा गड्ढों में आकर भर चुका था और मेरे आसपास से फुसफुसाने की हल्की-सी आवाजें आ रही थीं। लहरें पानी में डूबती गईं, केवल उनके स्वर शेष थे....मन्द स्वर.... ! हम उठे तो पास में ही चूड़ियों की जोर की खनखनाहट हुई। कुलसुम ने मुझे दूसरी ओर खींच लिया, "इस तरह दूसरों को दखल नहीं देते समझे!" मैं गिरते-गिरते बचा। उसी हालत में हम पत्थरों से बाहर आए तो कुलसुम हाँफ रही थी। बोली, "बढ़िया खाना हो जाए!"

हम खाने की तलाश में चल दिए।

गनपत एक सप्ताह बाद मिला। वह परेशान और दुखी नजर आया। उसका चेहरा उतरा हुआ था और उसने दाढ़ी भी कई दिनों से नहीं बनाई थी। वह कुरता और पाजामा पहने था। इस वेश में वह बम्बई के आम 'दलालों' की तरह ही लग रहा था। मुझे उसकी यह शक्ल पसन्द नहीं आई। मैं आम लोगों के साथ रहना पसन्द नहीं करता, क्योंकि अपने को भी आम आदमी नहीं मानता!

मैंने गनपत को डाँट लगाई। वह चुपचाप सब सुनता रहा। मैं डाँटता ही गया तो वह बोला, "सा'ब, हमारा भी सुनेगा!" उसके कहने में बड़ी नरमी थी। उसका कंठ दयनीय और नाजुक लग रहा था। मुझे लगा, जरूर कोई बात है। उसे मैं पास के रेस्टोरेंट में ले

गया। हमने चाय मँगाई। गनपत और परेशान नजर आया। बोला, "सा'ब, धंधा अब पसन्द नईं आता…कैसा-कैसा काम करने को माँगता। साला, रंडी, हरामजादी…मरदों को क्या समझता है!"

गनपत की आँखें हल्की-सी लाल हो गईं। मैं अवाक् देखता रहा। उसने कहा, "सरस्वती को जानता है?"

"हाँ, क्यों नहीं!…क्या हुआ?"

"होगा क्या? साला कहीं से रोग पाल लिया। अब बढ़ गया है। दवा कराने को मँगता तो पैसा नईं। ऐसा रोग वाला औरत के पास कौन जाने कूँ मँगता!"

गनपत चुप हो गया। वह मन लगाकर चाय पीने लगा। मेरे मन में एक अजीब कौतूहल पैदा हो गया। सरस्वती को न जानता तो परेशानी न होती। उसे जानता हूँ। वह आम कोठों की औरतों से अलग है। उसके पीछे जो मजबूरी है, उसके लिए मेरे मन में दया का भाव रहा है। वह काम वही करती है, जो ऐसी आम औरतें करती हैं। परन्तु सरस्वती की मजबूरियाँ अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए हैं। दूसरों के लिए होने का भाव ही मेरे लिए काफी है। मुझे इसीलिए परेशानी होने लगी। मैंने पूछा, "बात क्या है, गनपत! तू आज वाकई परेशान नजर आता है!"

गनपत ने अपनी दोनों हथेलियाँ सिर से लगा लीं और नीचे नजरें झुकाकर बोला, "जिन्दगी में ऐसा काम नईं किया, "सा'ब! जो करते हैं उनके लिए आम बात है, पर…" अपने चेहरे पर हाथ फेरते हुए उसने कहा, "पैसा जो न कराए, सो थोड़ा है!"

एक बात मेरी समझ में आई। गनपत ने जो किया है, पैसों के लिए किया है। वे पैसे सब सरस्वती को चाहिए थे, उसे नहीं, उसकी बीमारी के लिए। गनपत ने बताया कि कल शाम को उसे बम्बई अस्पताल में दाखिल कराके आया है। उसने अस्पताल में उसे अपनी बीवी कहकर दाखिला दिलवाया है। यह न बताता तो उसे दाखिला आसानी से न मिलता। उसे पहले 'सुधारघर' में भेजा जाता।

"वहाँ साला क्या-क्या होता है, हमको नईं मालूम?" गनपत ने दाँत पीसे, "रोज कित्ता छोकरी लोग सुधारघर से लाकर अपने गाहकों को देता है। साला सुपरटैंड घूस खाता है और नवा-नवा लड़की लोग को अपने वास्ते रखता है।"

गनपत ने चाय खत्म की तो बोला, "हम एक और पिएगा, सा'ब।"

"कोई बात नहीं," मैंने कहा। दूसरी चाय तुरन्त आ गई। उसकी गरम चुस्की लेते हुए गनपत ने जो कुछ बताया सब इतना भयंकर और वीभत्स था कि मेरी बुद्धि वहाँ तक दौड़ भी नहीं सकती थी। एकबारगी गनपत के प्रति मेरे मन में विरक्ति हो गई। उसने कहा, "सा'ब, और कहाँ से पैसे देगा। यहाँ का आदमी लोग सीधे काम के वास्ते एक धेला नईं देता। औरत के जिस्म पर सैकड़ों चढ़ा देता। यूँ कुछ नईं देगा।"

गनपत के चेहरे पर उपेक्षा और घुटन का दर्द था। उसका चेहरा काला-सा पड़ गया था और मुझे लग रह था, जैसे भीतर-ही-भीतर कोई उसे काट रहा है। मैं उसे देखता रहा। जानने की अपनी उत्सुकता को दबाते हुए मैंने ठीक यह समझा कि गनपत पहले थोड़ा शान्त हो ले। दूसरा कप चाय पीकर भी शायद उसका मन शान्त नहीं हुआ था। बोला,

"सा'ब, यहाँ से चलें।" मैंने उसकी बात को नकारना ठीक नहीं समझा। न जाने कौन सा दर्द है उसे, मेरे कारण हल्का हो सकता है, तो इससे बड़ी बात नहीं है। गनपत ने इससे पहले ऐसा अवसर नहीं दिया। वह कसाइयों की तरह हमेशा सख्त बना रहा। एक पेशा वह अपना चुका है। अपनाना नहीं चाहता था, परन्तु अब उसी में घिस-पिट गया है कि और किसी बात का भान उसे नहीं होता। ऐसा आदमी कभी यूँ बदले तो जरूर कुछ ऐसा होगा, जो नहीं होना चाहिए था।

मैंने गनपत का साथ दिया। रेस्टोरेंट से उतरकर हम बाहर आए और 'लायन्स गेट' की ओर बढ़ गए। गेट के जरा-सा आगे जाकर देखा, एक शव फुटपाथ पर पड़ा था। उसके ऊपर सफेद चादर थी। सामने दो आदमी खड़े थे। हर आने-जानेवाले से हाथ जोड़कर वे कहते, "भगवान के वास्ते कुछ दो!" मेरे मन में विरक्ति हो गई। वहाँ अच्छा नहीं लगा। वैसे ही मुझे मुरदे से भय लगता है। न जाने क्यों, एक निर्जीव और ठंडी देह मुझे कँपा देती है और एक बार देख लेता हूँ तो महीनों की रातें बेकार हो जाती हैं। वह मुरदा आँखों के सामने अपने पूरे परिवेश के साथ झूलता रहता है, इसलिए यहाँ भी रुकना मैंने ठीक नहीं समझा। परन्तु गनपत ने मुझे रोक दिया। हमने चाल धीमी की तो सामने खड़े दोनों आदमी एक साथ कहने लगे :

"भगवान के वास्ते गरीबों की मदद करो। गरीबों को मरने के बाद भी कफन नहीं मिलता। बेचारा कल फुटपाथ पर मर गया। बायकला पुल के नीचे रहता था। यहाँ आया और यहीं रह गया। न जाने कहाँ का है! कौन है!...ओ धनवालो, थोड़ा-थोड़ा दो तो कम-से-कम मरने के बाद इस गरीब की लाश को ठिकाने से लगाया जाए...हम तो आदमी का धर्म निबाहते हैं। हमारा-इसका साथ क्या? आदमी है यही तो...!"

उनकी बातें सुनकर मुझे दया आई। उन दोनों को मैंने घूरकर देखा। देखकर मैं खड़ा हो गया। बहुत साधारण-से लोग थे वे। गनपत के साथ खड़े कर दिए जाएँ तो बहुत अन्तर नहीं होगा। उनमें एक अधेड़ था, दूसरा जवान। दोनों लाश के सामने घूम रहे थे और अपने हाथ को कभी आसमान की ओर दिखाकर, कभी शव की ओर और कभी अपनी किस्मत को पीटकर जानेवालों का ध्यान खींच रहे थे। जानेवाले विरक्त भाव से कुछ पैसे सफेद चादर पर डाल जाते और 'राम-राम' का नाम लेते आगे बढ़ जाते। वे दोनों 'भगवान' के नाम पर पैसे माँग रहे थे, इसलिए भरोसा हुआ कि लाश किसी हिन्दू की है। मुसलमान होता तो 'अल्लाह' से पैसे माँगता।

लाश के ऊपर की चादर पर काफी पैसे बिखरे पड़े थे। उनके बीच चाँदी का रुपया भी था और एक नोट भी! गनपत चुप खड़ा था। मैंने तुरन्त जेब में हाथ डाला और पाँच रुपए का एक नोट निकालकर उनमें से एक आदमी को दिया। उससे मैंने कहा—"यह लो, इसे यहाँ से उठाओ और जाकर इसका संस्कार कर दो।" "बहुत अच्छा," कहकर उस आदमी ने पाँच रुपए का वह नोट उतने ही विरक्त भाव से लाश के ऊपर फेंक दिया और फिर उसी तरह सामने घूमकर चिल्लाने लगा, "भगवान के वास्ते..."

मैंने गनपत का हाथ पकड़ा और कहा, "चलो!" गनपत थोड़ा आगे गया और बोला, "सा'ब, अभी आया!" मैंने देखा, वह लौटकर उन दोनों आदमियों के पास आया है। उनमें

से अधेड़ आदमी के कान में उसने कुछ बातें कीं और फिर जरा-सा मुसकराकर मेरे पास आ गया। उसका इस तरह मुसकराना मुझे अच्छा नहीं लगा। मैंने पूछा, "गनपत, इन्हें जानते हो ?"

—जो ! क्या नईं जानेगा !

—कौन हैं ये ?

—अपने माफिक आदमी हैं, सा'ब !

—उस मरे हुए आदमी को जानते हो ?

—नईं··· !

—उनसे पूछा था, कौन था ?

—नईं··· !

—क्यो हो गया था उसे ?

—इसका पता तो उन दोनों आदमियों को भी नहीं है !

—फिर ?

हम अब दूर निकल चुके थे। आगे इंडिया गेट था। यहाँ भीड़-भाड़ और चहल-पहल थी। उस घुटन और दर्द को हम पीछे छोड़ आए थे। गनपत ने कहा, "सा'ब, उस मरे हुए आदमी को कोई नईं जानता ! आपसे क्या छिपाना। वह एक लावारिस लाश है, जिसे ये दोनों किसी मरघट से किराए पर ले आए हैं। घंटे-दो घंटे में दस-बीस रुपए बना लेंगे। उसमें से पाँच रुपए मरघट के ठेकेदार को देंगे। लाश म्युनिसिपैल्टी ने भेजी है। उसे यूँ भी मुफ्त जला दिया जाएगा। इस व्यापार में पाँच-पन्द्रह रुपए इन गरीब आदमियों को मिल जाएँगे !"

मुझे क्रोध आ गया। मेरे मन की करुणा काँच के टुकड़ों की तरह टूट गई। मैंने दाँत पीसे। मुझे लगा, गरीबी के नाम पर यह भ्रष्टाचार है ! एक मरे हुए आदमी की यूँ कीमत वसूलना सरासर जुर्म है। मेरे मस्तिष्क में फौजदारी कानून की वे चन्द धाराएँ दौड़ गईं, जिन्हें मैं अपने वकील मित्रों से सुनता आया हूँ। मुझे लगा, मैं पुलिस चौकी जाऊँ और उनकी शिकायत करूँ। तभी यह विचार भी मेरे मन में आया कि मुझे फिर वहाँ पुलिस के साथ जाना होगा और फिर वह लाश देखने को मिलेगी। ऐसा करना मेरे लिए सम्भव नहीं था।

मैंने गनपत की ओर देखा। मेरे चेहरे पर उभरे हुए उपेक्षा और आक्रोश के भावों को शायद वह पढ़ गया। बोला, "सा'ब, आपको गुस्सा आया !"

"हाँ," मैंने कहा, "और तुम उन्हें न जानते होते तो मैं पुलिस में शिकायत भी कर देता !"

गनपत फिर मुसकराया—एक व्यंग्यपूर्ण मुसकान से उसने कहा, "सा'ब, जरूर शिकायत कर दीजिए। मैं भी आपके साथ चलता हूँ।"

मैंने अचरज से गनपत की ओर देखा। उसने कहा, "हाँ !" वह जोर से हँसा। कहने लगा, "सा'ब, आप मेरे दोस्त हैं। और कोई होता तो··· !"

"तो···" मैंने पूछा।

"छोड़िए भी सा'ब। आप जानते नईं"—उसने कहा, "पुलिस क्या करेगा ! अरे, दो

रुपयों का घाटा होगा और क्या ? पुलिसवाला दो रुपए ले लेगा और इन्तजाम भी कर देगा कि लावारिस लाशों को ढोने वाली गाड़ी वहाँ से उस लाश को उठा ले जाए। उनका काम और आसान हो जाएगा।"

"ओफ !" मेरे मुँह से निकला।

"हाँ, सा'ब !" गनपत ने कहा, "हमें भी इसमें दर्द होता सा'ब ! आपसे एक बात कहा था, सरस्वती का बात !"

"हाँ," मैंने कहा, "वह बताओ।" मुझे लगा, विषय का बदलना जरूरी है। हम दोनों गेटवे ऑफ इंडिया की कगार पर जाकर बैठ गए। गनपत ने कहा, "सा'ब, सरस्वती को दाखिल करा दिया। बड़ा बात हुआ। बेचारा सुधर जाएगा। उसका एक बच्चा है। उसी का वास्ते वो जीता है। बोलता है, 'बड़ा होएगा ये तो हमको इस नरक में से बचाएगा।' सरस्वती अच्छा नई हुआ तो मरद लोग उसका पास जाएगा नई, और वो उहाँ से भगा दिया जाएगा। फिर भीख माँगेगा और··· !"

गनपत जरा विचलित हुआ। उसने जोर से अपना थूक लीला। फिर खाँसकर ठुसकी ली और दूर थूक दिया। अपना हाथ उसने कलेजे पर रगड़ा। कहने लगा, "कोछ दिन हुआ, यूँ खाँसी उठता है, साला। तपेदिक हो गिया तो मर जाएगा।"

"नहीं गनपत, तुम्हें कुछ नहीं होगा। तुम तो काफी तन्दुरुस्त हो।" मैंने कहा।

गनपत ने मेरी इस बात की ओर कतई ध्यान नहीं दिया। कहने लगा, "सा'ब, कई साहब लोगों से पैसा माँगा। किसी ने नहीं दिया। सरस्वती का एक बहन और है। फारस रोड पर बँगला नम्बर चालीस में है। हम उसका पास गया। उससे बताया। हम बोला—पच्चीस रुपया दे दे, उसका जिन्दगी सुधर जाएगा। वो साला नफरत दिखाया। नाक सिकोड़कर उसने अपना सारा अंगुलियाँ फोड़ा। कहने लगा—'जा, जा, तू ही सुधार उसका जिन्दगी !'···सा'ब, सगा बहन लोग हैं, दोनों। वो छोटा है ! एक ही चीज था, सा'ब ! अब तो वो भी उतर रहा है। तब भी माल है। खूब कमाता है। शराब पीता है। साहब लोगों के साथ सिगरेट पीता है और कमरे में बंद होकर नंगा नाचता है। ग्राहक घंटे भर को लेता है तो वू यूँ फँसाता है कि दो घंटे ठहरता है। इस तरह खूब पैसा काटता है, सा'ब। सरस्वती तो बेचारा सीधा लड़की है। किस्मत का मारा··· !"

सरस्वती वाकई सीधी लड़की है। उसके लिए मुझे भी हमदर्दी है। मैंने कहा, "गनपत, तू मेरे पास क्यों नहीं आया ? पच्चीस रुपयों की बात थी न, मैं दे देता। तेरे पर भरोसा तो मुझे है ही !"

गनपत केवल हँसकर रह गया। वह इधर-उधर देखने लगा। उसने एक लम्बी साँस ली और कहा, "सा'ब, हम माफी चाहता है। आप एक भला आदमी मिला है, छोड़ना नई माँगता। हम भी कल गलती किएला है। महिम है न सा'ब, उहाँ के मरघट से हम भी एक मुरदा किराए पर लाया था। पाँच रुपिया दिया—दो घंटा का वास्ते। 'क्यू' लगा था वहाँ। मनीजर ने कहा, आपुन दोस्त है न सा'ब जो, इसका लम्बर दो घंटा के बाद आएगा !···सा'ब, हमारा साथ दो दोस्त था। हम उसे उठा लिया। महिम का चौक है न सा'ब, बस-डिपो का पास, वहीं हम भी नाटक किएला होता ! सुब्बे का समेय, साहब लोग जाता रहता। फिर

सा'ब, एक प्रोडूसर निकला। वो है न, क्या कहता फिल्म का नाम 'मछेरन', उसी का प्रोडूसर ! हमको जानता। उसने मोटर रोका और हमको सा'ब तीस रुपिया दिया। दो घंटा में हमने पचास रुपिया कमाया, सा'ब !···पाँच मनीजर को दिया। पाँच रुपिया का हम तीन लोग मिलकर खूब खाना खाया। साले कूँ चिकन, मीट और तंदूरी ! बाकी बचा पैंतालीस। सो सा'ब बम्बई अस्पताल में गिया। जाकर सरस्वती को दे आया। अब वो ठीक हो जाएगा सा'ब।"

गनपत ने बात खत्म की और मेरे चेहरे की ओर घूर-घूरकर देखने लगा। मुझे लगा, वह पूछ रहा है—मैं अब भी बुरा आदमी हूँ ? मैंने कोई बुरा काम किया है ? लावारिस लाशों को यूँ उठाना अपराध है !

गनपत घूरता रहा। उसका यूँ घूरना मुझे बुरा नहीं लगा। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें मेरे पूरे चेहरे को घेर रही थीं। तब भी मुझे भय नहीं लगा। मैंने उन आँखों को देखा। उनमें से कुछ बाहर निकल रहा था। लावे की तरह कोई चीज खिंची हुई बाहर चली आ रही थी। मुझे अचरज हुआ—वे आँसू थे। गनपत रो रहा था। उसने एकाएक अपनी हथेलियों से आँखें ढँक लीं और फफक-फफक कर रो पड़ा। गनपत रोता रहा। मेरे समझाने पर भी रोता रहा। कहता रहा—"सा'ब, हम बहुत गिरा हुआ आदमी है ! बहुत··· ! कल का दिन अजीब ढंग से बीता था।"

गनपत दुखी था और मेरे मन में भय, निराशा, वितृष्णा तथा विरक्ति थी। बम्बई जैसे भरे-पूरे शहर में आदमी कितनी बेलाग जिन्दगी जीता है ! रातभर नींद नहीं आई। आँखों के सामने एक नहीं, दो लाशें तैरती रहीं। नींद की गोलियाँ खाईं, तब भी असर नहीं हुआ। सबेरे-सबेरे नींद लगी और फिर बारह बजे तक सोता रहा।

सोकर उठा तो गनपत बैठा था। वह शनिवार का दिन था और मैंने दफ्तर से छुट्टी ले रखी थी। गनपत को देखकर याद आया, आज कहीं जाना था। ओफ··· ! जल्दी-जल्दी में तैयार हुआ। बाहर आया तो देखा, गनपत 'फिल्म फेयर' की तसवीरें देख रहा था। वह उन तसवीरों में खो गया था और उसे किसी और चीज का भान नहीं था। आज वह सूट पहने हुए था और उस पर उसने खादी की बढ़िया टाई लगाई थी। सहसा यह भरोसा ही नहीं हो सकता था कि यह वही आदमी है, जो कल मेरे साथ था !

मुझे देखकर गनपत खड़ा हो गया। उसका चेहरा खिला हुआ और साफ था। मैंने पूछा, "कब आए, गनपत ?"

"कुछ नईं सा'ब, एक घंटा हुआ।" बहुत विनम्र ढंग से उसने जवाब दिया। मेरी ओर देखकर उसने कहा, "आपको याद है न, वहाँ चलना है !"

मैंने कहा, "हाँ, अभी तैयार होकर आता हूँ।"

नाश्ता करने के बाद हम घर से निकल पड़े। गनपत रास्ते भर बातें करता रहा, "सा'ब, आप इत्ती कहानियाँ कैसे बना लेता ?···हम जो-जो बताता, सब याद रहता आपको, ठीक वैसा ! कमाल का दिमाग है, सा'ब···हम भी कहानी लिखने कूँ चाहता ! हमारा पास बहोत कहानी है। लिखवा देगा, सा'ब ?"

मुझे लगा, गनपत कहानियाँ लिखने लगे तो गड़बड़ हो जाएगा। उसके पास

एक-से-एक बढ़कर प्लाट है। उन सब में वह रचा-बसा है। जो वह लिख सकता है, कोई नहीं लिख सकता। परन्तु मुझे सन्तोष हुआ, वह कहानी लिखना नहीं जानता, अच्छा ही है !

हम दोनों ने एक टैक्सी ली। थोड़ी ही देर में ऑपेरा हाउस के चौराहे पर जाकर उतर गए। पीछे लौटे तो बाईं सड़क पर एक बड़ी बिल्डिंग है। उस पर बोर्ड लगा है—'सी ग्रीन पिक्चर्स'। गनपत ने रुककर एक बार उसे देखा और फिर आगे बढ़ गया। सीढ़ियाँ चढ़कर हम चौथे माले में पहुँचे।

कुछ दिन पहले गनपत ने वचन दिया था, इस जगह को दिखाने का। यह अपने ढंग की जगह है और केवल दोपहर में चलती है। गनपत का कहना है कि कॉलेज़ का छोकरी लोग यहाँ आता है। शाम को कोई नहीं रहता। अपने खाली पीरियड में ये लड़कियाँ यहाँ आती हैं और घण्टे-दो घण्टे ठहरकर पैसे बना लेती हैं। मैंने सीढ़ियाँ चढ़ते हुए गनपत से पूछा, "कितनी लड़कियाँ आती हैं, गनपत ?" उसने बताया, "ज्यादा नईं ! पर कम भी नहीं हैं।"

हम भीतर पहुँच गए। कमरे में पूरा दफ्तर था। सिनेमा के कई बड़े-बड़े पोस्टर। एक टाइपराइटर और उस पर टाइप करती एक लड़की ! लड़की साधारण थी, परन्तु उमर भरी हुई थी। चश्मा लगाए एक आदमी दूसरी टेबल पर बैठा था और एक बूढ़ी औरत दरवाजे से लगी टेबल पर काम कर रही थी। दरवाजे के यहाँ-वहाँ तीन चपरासी थे। पूरा माहौल एक दप्तर का था। अनजान आदमी यहाँ पहुँच जाए तो किसी तरह की गलती में नहीं पड़ सकता।

गनपत को देखकर तीनों मुसकरा दिए। बूढ़ी औरत ने उससे कहा, "हलो··· !"

गनपत ने मुसकराकर कहा, "हलो···कैसा है ?"

"अच्छा है····" उसने निहायत व्यापारी ढंग से उत्तर दिया। उसी समय दो लड़कियाँ सीढ़ियाँ चढ़कर वहाँ आईं। दोनों बुरका डाले थीं। यहाँ आते ही उन्होंने अपने बुरके उतार दिए। अपनी किताबें टाइप करने वाली लड़की के पास रख दीं। उनमें से एक शायद नई थी। पहली बार आई थी। जो पुरानी थी, उसने धीरे से बूढ़ी औरत से कहा, "यह भी आया है ! हमारा साथ पढ़ता है !"

"ठीक है, उस औरत ने जवाब दिया और भीतर इशारा कर दिया। दोनों लड़कियों ने लौटकर मेरी ओर देखा और भीतर चली गईं। मुझे यह पूरा माहौल सरगरम और रहस्यमय-सा लगा। लड़कियाँ अच्छी थीं और उनके चेहरे कमनीय थे।

मैं यहाँ आगे कुछ और सोच नहीं सका, कारण गनपत ने बूढ़ी स्त्री से कुछ बातें करके मेरी ओर इशारा किया। दरवाजे के चपरासी ने बाँस के परदे को हटा दिया और हम भीतर चले गए। पहले कमरे में एक टेबल था और उस पर एक स्त्री बैठी थी। वह अधेड़ उम्र की थी और अपने आप में काफ़ी खूबसूरत थी। अंग्रेजी बोलकर उसने हमारा स्वागत किया। उसके सामने तीन-चार कुरसियाँ थीं। एक ओर सोफा था। यह स्त्री भी गनपत को जानती थी। उठकर वह हमें सोफे के पास तक ले गई। हम तीनों वहाँ बैठ गए।

गनपत ने गोल्ड-फ्लैक का एक पैकेट निकाला और उस स्त्री को सिगरेट दी। फिर पैकेट उसने मेरी ओर बढ़ा दिया। एक सिगरेट उसने भी जलाई और अजीब-सी भाषा में

वह उस स्त्री से बातें करने लगा। भाषा नई नहीं थी। वह हिन्दी और अंग्रेजी का मिक्शचर थी, परन्तु तब भी मेरी समझ के बाहर नहीं थी। कुछ बातचीत करने के बाद गनपत ने चालीस रुपए उस स्त्री को दिए। उसने मुसकराकर रुपए रख लिए। बोली, "जाओ !"

गनपत मुझे आगे के कमरे में ले गया। यह कमरा एयर-कंडीशंड था। बहुत हल्का-सा प्रकाश उसमें था। फर्श पर लाल कालीन बिछा हुआ था और कीमती सोफे वहाँ पड़े थे। पूरा कमरा शान्त और गम्भीर था। उसमें दो लड़कियाँ बैठी थीं और पुस्तकें पढ़ रही थीं। कोई अब तक आया नहीं था शायद। हमें देखकर वे खड़ी हो गईं और अगले कमरे में चली गईं। उसी कमरे से फिर एक लड़की आई। गनपत को देखकर बोली, "अरे, गनपत, तुम इस बार कई दिनों बाद आए !"

"हाँ," उसने कहा, "साहब को लाया हूँ। बड़ा आदमी है। कहानी···" मैंने गनपत को धक्का देकर रोक दिया और बोला, "गनपत मेरा दोस्त है, बस ! हम यहाँ तुम लोगों का दर्शन करने चला आया··· !"

"दर्शन !" लड़की हँसी। वह निहायत मासूम और कोमल हँसी थी। लड़की बढ़िया नॉयलोन की गुलाबी साड़ी पहने थी। उसकी गोरी कलाइयों में सोने की चूड़ियाँ थीं। तब भी उसकी नजरें मुझे साफ नहीं लगीं। लगा, ये नजरें पुरानी हैं और पानी में उबाली जा चुकी हैं। भीतर का रंग इनमें उतर आया है ! गनपत ने उसका हाथ पकड़ा, तो वह कुछ नहीं बोली। उसे उठाकर गनपत दूसरे सोफे पर ले गया और फुसफुसाकर बातें करने लगा। मुझे यह अच्छा नहीं लगा। लड़की वाकई इस लायक नहीं थी कि गनपत जैसा आदमी उसके साथ इस तरह पेश आए। दोनों थोड़ी देर बातें करते रहे। गनपत फिर थोड़ा जोर से बोला, "सा'ब को सब देखने कूँ मागता। अपना खास आदमी है !"

"अच्छा !" लड़की ने वहीं से मुसकराकर मेरी ओर देखा। उसकी बँधी नजरें एकबारगी मुझे काट गईं। उठकर वह मेरे पास आई। बोली, "एक को तो आपने देख लिया !"

"जी···" मेरे मुँह से निकला। उसने कहा, "यह नम्बर एक हुआ ! आगे और देख लीजिए। फिर जिसे चाहें बता दीजिए !"

मेरे उत्तर की राह देखे बिना वह भीतर चली गई। एक चपरासी ने कोकाकोला की दो बोतलें हमारे सामने रख दीं। हम पीने लगे तो दूसरी लड़की आई।

—ओफ··· ! ये लड़की, यहाँ ?

तीसरी आई।

—वाह··· !

चौथी आई।

—परी-लोक है ! एक-से-एक बढ़कर।

मैं चकित रह गया। कोई लड़की इस कमरे के लायक नहीं थी। सड़क पर इनमें से हर लड़की का पीछा किया जा सकता था और हजारों रुपए उनके लिए कम थे। इस कमरे में बैठकर मेरे मन में अब विचार ही कुछ और थे। इनमें से कोई भी लड़की मुझे मिल सकती थी। मैं सहज ही खड़े होकर किसी का भी हाथ पकड़ सकता था ! इसलिए उनमें से हर

लड़की मुझे असाधारण होते हुए भी बहुत साधारण लग रही थी। तब भी मैं खुश था। ऐसी जगह देखना मेरे लिए बड़ी बात थी। मुझे याँद आया, मैंने वार्डन रोड पर एक और ऐसा ही घर देखा था, जहाँ लड़कियाँ मैन्यू पर मिलती थीं। मैन्यू की पूरी इबारत मेरी नजरों में झूल गई...

—ग्रेप स्पेशल

—आरेन्ज टू

—कोकाकोला

—केरट् ज्यूस—एक

—सोडा ज्यादा

—कॉकटेल

इस तरह के बीस नाम थे। उसी मैन्यू के पीछे, उसी क्रम में लिखा था :

—क्वीन मिस रोजी

—मिस कपिला

—मिस साधना

—मिस रानी

—मिस डिसल्वा

—मिसेज पिंकी

आप पहले ऊपर का मैन्यू चुनिए, फिर नीचे का नाम देखिए। तब फोटो पर नजर फेंकिए। सौ रुपयों का एक नोट ढीला कीजिए और पारटी में शामिल हो जाइए।

वह एक अद्‌भुत आनन्द था, परन्तु यह उससे भी अद्‌भुत था। वे लड़कियाँ किसी-न-किसी रूप में व्यापार करती थीं। यहाँ की लड़कियाँ कतई व्यापार नहीं करतीं(!)। जो आज है, सम्भव है, वह महीनों न आए। एक लड़की, दूसरी को लाती है। दूसरी, तीसरी को। थोड़ी देर यहाँ रहती हैं, फिर वापस। इनमें से हर लड़की हमारे आस-पास की है। हमारे अपने घरों की है। उनके बारे में उनके सिवाय और कोई नहीं जानता। मैं सोच रहा था, ढेर-सी बातें मेरे सामने उभर रही थीं और उन्हीं के साथ सातवीं लड़की मुझसे मिलकर भीतर चली गई थी। उसके जाते हुए मैं सोच रहा था कि इनमें ऐसी कोई लड़की नहीं है, जो मेरी पत्नी नहीं बन सकती। कोई प्रस्ताव मेरे पास आता तो वाकई उसे टालना साधारण आदमी के वश सेबाहर की बात थी।

मैं उस कमरे में खो गया था, तभी आठवीं लड़की आई और आते ही उसके और मेरे मुँह से एक साथ 'सी ई ई ई' निकल गई। मैं बार-बार आँखें मींचकर उसे देखने लगा। वह कुलसुम थी। उसका चेहरा फक्क पड़ गया था और लगता था उसका पूरा खून सूख गया है। मैंने उठकर उसका हाथ पकड़ा तो गनपत ने कहा—"मैं जाऊँ?"

गनपत कुछ नहीं समझा था। मैं अबोले उसका हाथ पकड़े खड़ा रहा और कुलसुम को तो जैसे साँप सूँघ गया था, वह जड़ थी! मैंने कोई जवाब नहीं दिया तो गनपत उठकर चला गया। उसके जाते ही हमने महसूस किया कि हम कहाँ हैं।

कुलसुम ने धीरे से पूछा—"तुम यहाँ?"

"और तुम ?" मैंने भी उसी तरह प्रश्न किया। तो उसने कहा, "चलो उस कमरे में।"

बाजू के कमरे में हम गए तो कुलसुम ने भीतर से दरवाजा लगा लिया। मैंने कहा, "तुम यहाँ आती हो ?"

"नहीं," उसने कहा, "तुम नहीं जानते, यहाँ जितनी लड़कियाँ आती हैं, सब कॉलेजों में पढ़ती हैं !"

मैं यहाँ के बारे में जानने आया था। कुलसुम को भावना के आधार पर लेता तो सब खत्म हो जाता। मैंने कहा, "कोई बात नहीं, परन्तु तुमने तो मुझे चुनाव करने ही नहीं दिया !" "मैं चली जाऊँ ?" कुलसुम खड़ी हो गई। "नहीं, अब क्या फायदा ! तुम्हीं क्या खराब हो !" मैंने एक झटका देकर उसे खींचा तो वह 'सी ई ई ई' कर उठी। फिर एकाएक मुसकराकर मेरे बहुत करीब बैठ गई। मुझे खुशी हुई कि कुलसुम ही मिली, यह अच्छा हुआ। यहाँ के कारनामे सही-सही पता लग जाएँगे। और कोई होती तो शरमाती और निहायत व्यापाराना ढंग से पेश आती, क्योंकि मुझे लगा, यहाँ की लड़कियाँ व्यापार करने वाली लड़कियों से अलग हैं। ये किन्हीं और कारणों से आती हैं।

कुलसुम अब व्यवस्थित हो गई थी। बोली, "तुमसे मिलकर खुशी हुई !" मैंने कहा, "इस मिलने के पैसे दिए हैं !" उसने मेरी नाक दबाई, "पर धोखा जो हो गया ! किस्मत इसे कहते हैं। तुम किसके लिए आए थे, मैं किसके लिए आई थी ! बहरहाल, यह एक्सीडेंट है तो खूबसूरत ही !"

कुलसुम अपने को काफी हल्का कर चुकी थी। उसने मजाक किया, "सौदा !"

"नहीं," मैंने कहा, "मेरा परपज वह नहीं था। जो है, वह ठीक ढंग से पूरा होगा !"

—यानी ?

मैंने उसे अधिक 'इम्फार्मल' बनाने के लिए थोड़ी देर मजाक किया। बातों के सिलसिले में यह भुलाने का प्रयत्न किया कि उसके लिए यहाँ आना ठीक नहीं था। वह वाकई इस महसूस के बाहर होती गई और फिर उसने सारी कहानी बता दी। पहले तो वह अपनी ही बात कहती गई। वह पारसी लड़की है। उसके परिवार में उसका भाई है और दो बहनें और हैं। भाई पचास का है। दो बहनें चालीस और पैंतालीस की हैं। सब कुँवारे हैं। न भाई ने शादी की और न बहनों ने। आगे शादी करने का इरादा भी नहीं है। शादी क्यों नहीं करना चाहतीं, इसका कारण कुलसुम को पता नहीं। घर में न पैसे की कमी है न साधनों की। एक बात वह जरूर जानती है और वह मुझे भी मालूम है। पारसी ही एक ऐसी जाति है, जिसका रक्त शुद्ध है। यानी पारसी लड़की न तो इंटरकास्ट विवाह कर सकती है और न खुलकर मुहब्बत। यदि उसने किसी और जाति के लड़के से शादी कर ली, तो वह पारसी नहीं रह सकती। यही कारण है कि पारसियों की संख्या घटती जा रही है। जो कट्टर हैं, वे शादी नहीं करते। मेरे ऐसे कई पारसी मित्र हैं, जो कुँआरे हैं। कम होने के कारण ही उनका अपना ठोस संगठन है। जो ज्यादा पैसे कमाते हैं, वे उसका कुछ हिस्सा अपने 'संघ' को देते हैं। जो कम पैसे कमाते हैं, उन्हें संघ से प्रति माह पैसे मिलते हैं। इसलिए पारसी चाहे बड़ा अफसर हो या क्लर्क, उसकी कमाई में बहुत अन्तर नहीं है। वास्तविक समाजवाद यही है। यदि खून की यह कट्टरता उनमें न हो तो ऐसा सुदृढ संगठन भी नहीं बन सकता। संगठन

छोटे आकारों में ही अधिक सफल होते हैं।

कुलसुम भी कुँआरी है और शायद उसे रहना पड़ेगा। उमर के आवेग में कुँआरापन कितना तीखा चुभता है, सहज कल्पनीय नहीं है। कुलसुम ने बताया, "मेरी बहनें शायद ऐसी ही कुँआरी हैं, जैसी मैं हूँ।" उसने मुसकराकर कहा, "मैं इस जगह पैसे कमाने के लिए नहीं आती। मैं तो मौज के लिए कभी-कभी आती हूँ। जगह शाही और सुरक्षित है। ऐसे-वैसे लोग यहाँ पहुँचते नहीं, सो··· !"

मैंने देखा, उसकी नजरों में शर्म के छाले उभर आए हैं। उसका शरमाता हुआ, झुका-सा लाल चेहरा और भी हसीन हो गया है। वह सिमटते हुए मोम की तरह सुन्दर लग रही है। मैंने अपना दाहिना हाथ फैलाकर उसे और पास खींच लिया। यह अच्छी बात है कि उसे पैसों की जरूरत नहीं है।

"परन्तु सभी ऐसी नहीं हैं," उसने कहा, "इनमें कई तरह की लड़कियाँ हैं। किसी का बाप सेक्रेटेरिएट में मामूली क्लर्क है। किसी का बाप मिल में मजदूरी करता है। किसी का बाप है ही नहीं, भाई है। भाई साधारण-सी नौकरी में है। और···और ये सब कॉलेज में पढ़ती हैं, जहाँ से फैशन शुरू होते हैं !"

"अमीरों की लड़कियाँ ही फैशन करें, यह कैसे बरदाश्त हो सकता है !" उसने प्रश्नभरी दृष्टि से मुझे देखा, "और फैशन के लिए पैसे चाहिए! वह भी घरवालों से छिपकर। क्योंकि उनके घर गिरे हुए नहीं हैं। वे सब कुलीन हैं··· !"

कुलसुम की बातें सुनकर मेरी नजरें एकबारगी बम्बई की सरपट दौड़ती लोकल ट्रेनों में से गुजर गईं। जारजेट, नॉयलोन और लेटेस्ट मॉडेल की साड़ियाँ पहनने वाली लड़कियाँ क्या इसी तरह पैसा कमाती हैं? मैं कई लड़कियों को जानता हूँ। कई का जिक्र पहले कर चुका हूँ। मैंने नलिनी की कहानी सबसे पहले बताई थी। उसे भी मैंने रोज साड़ियाँ बदलते देखा है। एम० बी० एस० कम्पनी में काम करने वाली उस सिन्धी लड़की को मैं नहीं भूल सकता, जो कुरला से मेरे साथ रोज लोकल ट्रेन पर चढ़ा करती थी। बोरीबन्दर में उतरकर उसका कितनी बार पीछा किया है। साँचे में ढला हुआ-सा शरीर, रोज बदलती हुई चुस्त साड़ियों में हर बार एक नए रंग में उभरा है। उसकी गोल काजल लगी आँखें जैसे हमेशा बँधी रही हैं। एक बार उससे भी यूँ ही डिब्बे में पहचान हो गई। तब पता लगा कि लड़की निहायत मामूली घर की है और एम० बी० एस० कम्पनी में पी० बी० एक्स ऑपरेटर है। वह सारा घर चलाती है, तब भी रोज साड़ियाँ बदलती है। मेरे दिमाग में यह बात जाने-अनजाने घूमती रही है कि मैं जहाँ चार-पाँच बुशर्टों से अधिक नहीं रख सकता, वहाँ ये लड़कियाँ इतनी साड़ियाँ कहाँ से रख लेती हैं। मैं तब भूल गया था कि मैं लड़की नहीं हूँ। लड़की होना ही अपने आप में काफी है।

एकबारगी ढेर-से चित्र मेरे सामने से गुजर गए। उनसे दौड़ती नजरें जब ठहरीं तो मैंने देखा, कुलसुम मेरे पास सिमटी-सी बैठी है। इतनी खूबसूरत लड़की साथ हो, तो मन को बाँधकर रखना चाहिए। व्यर्थ इधर-उधर दौड़ाना बेकार है। गनपत का कहना सही है कि—दोस्त वही जो पास हो।

कुलसुम बैठी-बैठी कसमसा रही थी और बातें किए जा रही थी। मैंने पूछा कि अपनी

जरूरतें पूरी करने के लिए तुम यहीं क्यों आती हो ? उसने तुरन्त कहा, "यह जगह बहुत सेफ है। बेकार फ्लर्ट नहीं करना पड़ता। जो थोड़े पैसे मिलते हैं, उनसे दोस्तों को पारटी देती हूँ। वे मुझे बहुत रईस समझती हैं और मेरी बड़ी इज्जत करती हैं। मेरे साथ पढ़ने वाली सारी लडकियाँ मेरे हाथ जोडती हैं और आगे-पीछे घमती हैं।"

कुलसुम के बातों से पता चला कि गड़बड़ी यहीं है। आगे-पीछे घूमने वाली लड़कियाँ खुद भी औरों को घुमाना चाहती हैं। तब वे कुलसुम जैसी लड़कियों को 'कॉन्फीडेंस' में लेती हैं। उनके साथ यहाँ चली आती हैं। इसके पहले जिन्दगी से विरक्ति की बातें होती हैं। यह देह मिट्टी है। बेकार है। किसी भी दिन छोड़कर जा सकती है। इसलिए जो दिन साँसों के हैं, वही अपने हैं। पूर्वजों ने संस्कृत में कहा है : 'जितने दिन जियो, सुख से जियो, ऋण लेकर घी पियो, क्योंकि इस भस्मीभूत देह का पुनरागमन नहीं होता। देह के साथ बँधे हुए जाले मोहभ्रम के हैं। उन्हें तोड़कर उसका उन्मुक्त भोग करना चाहिए। इस भोग के बाद बनती हुई दुनिया को भी रोकने के उपाय हैं।' और कुलसुम ने बताया कि सभी तरह के 'काउन्टरसेपटिक' यहाँ प्रयोग में लाए जाते हैं। 'सी ग्रीन' के मालिक, जो अपनी प्रेयसी-बीवी के सहारे इसे चलाते हैं, इन चीजों को मुफ्त दिया करते हैं! इसलिए कोई परेशानी नहीं है। वैसे एक लेडी डाक्टर भी 'अटैच' है। कुछ गड़बड़ी हो ही जाए तो भी कष्ट नहीं। एक और बड़ी बात है। इसके अलावा और काम तो यहाँ वाकई होते हैं। चित्रों की एजेंसी है और वह ठाठ से चलती है। 'दूसरे व्यापार' के लिए गुण्डों को नहीं पाला जाता। 'सी-ग्रीन' के मालिक की पाँच 'लड़कियाँ' हैं और वे पाँचों अलग-अलग कॉलेजों में पढ़ती हैं। वहाँ अपनी सहेलियों को बिना यह बताए कि उनका उस जगह से कोई सम्बन्ध है, वे उन्हें तैयार करती रहती हैं। माया का घेरा टूटने पर और यह भान हो जाने पर कि देह मिट्टी है, पाप नाम की कोई चीज नहीं है, वह मात्र हमारे मन का भ्रम है, कोई भी लड़की आने में हिचकेगी नहीं, जबकि साथ भी ठीक हो! उसके बाद जो 'प्रेस्टिज' आसपास मिलती है, कम नहीं है।

कुलसुम से काफी देर बातें होती रहीं। फिर उसी ने कहा, "क्या केवल बातें होंगी! आज तो तुमने पैसे दिए हैं ?"

"वे तो वसूल हो गए"—मैंने कहा, "उनका ब्याज हमेशा मिलता रहेगा!"

कुलसुम समझ गई थी। बोली, "बड़े उस्ताद हो!"

मैंने मजाक किया, "उस्तादी तुम्हीं ने तो सिखाई है!"

इसी तरह के कई हल्के-से मजाक होते रहे। फिर थोड़ी देर कमरे में शान्ति रही। कुलसुम की उभरती हुई आकांक्षाओं को समझना जरूरी था। न समझा जाता तो गलती होती। फिर तय हुआ कि कहीं चलकर 'लंच' खाया जाए। बिल कुलसुम ही चुकाएगी। हम कमरे से बाहर निकलने को हुए तो उसने रोककर कहा, "तुम्हारे साथ इस वक्त चलना सम्भव नहीं है। यहाँ के कुछ नियम हैं। उन नियमों का पालन न करें तो निकाल दी जाएँ। आधा घंटे बाद मैं आऊँगी...गेलार्ड में मिलेंगे।"

हम बाहर निकले तो बड़े कमरे में गनपत बैठा था। गनपत ने उठकर कुलसुम से हाथ मिलाए। दोनों ने मुसकराकर अनबोले बातें कीं। मुझे ताज्जुब हुआ। गनपत कुलसुम को

भी खूब जानता है। मुझे लगा कि यह आदमी नहीं, कोई फरिश्ता है। इससे बम्बई का कोई कोना अनदेखा नहीं बचा है। गनपत की आँखों के परदे 'एक्सरे' की एक मशीन हैं, जिसके सामने हर लड़की साफ है ! कपड़े पहने रहकर भी वह नंगी है।

हम बाहर निकले तो धूप बहुत तेज थी। सामने की सड़क भीड़ से भरी थी। लंच का समय था और ढेर-सी लड़कियाँ होटलों में जा रही थीं। पढ़ने वाली भी और नौकरी करने वाली भी ! मुझे लगा, इनमें कोई लड़की कुलसुम की सीमा से बाहर नहीं है। हर लड़की एक अलग कुलसुम है। मेरे मन में यह विचार मजबूत हुआ कि नाम चाहे जो हो, ये लड़कियाँ जरूर हैं। लड़कियाँ—एक ताकतवर तराजू और कमजोर तलवार !

हम आगे बढ़े तो क्वींस रोड के पास फिर एक लाश हमने पड़ी देखी। मन उतर गया। उसके सामने गेरुआ कपड़े पहने दो साधू थे। वे भी पैसे माँग रहे थे। मेरे मन में आग लग गई। वहीं से हमने टैक्सी ली और गनपत के मना करने के बावजूद हम 'एसप्लेनेड' पुलिस स्टेशन पहुँच गए। हमने इन लावारिस लाशों की कहानी बताकर रिपोर्ट लिखवाई और फिर हम सीधे 'गेलार्ड' पहुँच गए। रिपोर्ट लिखवाने के बाद मन हलका हुआ। लगा एक बड़े कल्याण का काम अनजाने में हो गया है।

गेलार्ड में काफी देर ठहरे रहे। कुलसुम एक घंटे बाद आई। पता चला कि एक और साहब आ गए थे और वहाँ के 'कोड ऑफ कण्डक्ट' के मुताबिक चाहने वाले को मना करना सम्भव नहीं था। तब भी उसने बताया कि वह चकमा देकर आई है। बोली, "हम भी 'मूड' का मालिक है। गड़बड़ करेगा तो नईं जाएगा वहाँ··· !"

गनपत ने खुश होकर लंच लिया। बाद में कुलसुम ने ही पच्चास रुपए का बिल पे किया। मैंने आज आपत्ति नहीं की। पैसा तो मेरा ही था। उसने कहा कि पाँच रुपए बचे हैं। अभी कॉलेज जाएगा, फिर घर। इतने के लिए काफी होंगे। पता लगा, दस रुपए 'सी-ग्रीन' में टैक्स के रूप में कटं गए।

गेलार्ड से बाहर निकले तो गनपत ने हमारा साथ छोड़ दिया। उसे कहीं और जाना था। कुलसुम को हमने तैयार किया कि कॉलेज का नाम आज वह छोड़ दे, जो रोमानी मूड बना है, उसका हम आनन्द लें। वह तैयार हो गई। 'ईरोज' में हमने पिक्चर देखी—'दि वर्ल्ड ऑफ बोंग' !

इस चित्र से समय खूब बीता। हम खुशनसीब थे—सारे माहौल हमदर्द और हमसाए थे ! जिन्दगी में ऐसे दिन रोज नहीं आते।

शाम को हम विदा हुए। कुलसुम को टैक्सी पर बिठाते हुए मेरी नजर 'ईवनिंग न्यूज' पर पड़ी। मैंने लड़के को बुलाकर अखबार देखा। उसमें खबर थी कि एक अनजाना साधू धूप में गश खाकर गिर गया और क्वींस रोड में मर गया।

मेरे हाथ से टैक्सी का दरवाजा छूट गया। वह बंद हुआ तो टैक्सी रवाना हो गई। कुलसुम ने 'टा··· टा ···टा' किया, पर मेरा मन उतर गया था। मैं दुखी था। मैंने 'एसप्लेनेड' में शिकायत क्यों की ? यह दुनिया बहुत बड़ी है, बहुत लम्बी है ! यहाँ सभी सच्चे नहीं हैं, तो सभी ढोंगी कैसे हो सकते हैं !

□□

राजेन्द्र अवस्थी

स्वतंत्रता के बाद की हिन्दी कहानी ने जितने प्रयोग किए हैं, शायद ही किसी अन्य भारतीय कथा-साहित्य में हुए हों। राजेन्द्र अवस्थी उन्हीं प्रयोगधर्मी कथाकारों में शीर्ष श्रेणी के कथा-शिल्पी हैं। भाषा, भाव, शैली और वस्तु-विन्यास तथा कथानक के चुनाव में उनका विशिष्ट स्थान है।

राजेन्द्र अवस्थी की अब तक पचास से अधिक कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं। उपन्यास, कहानी, निबंध, यात्रा-वृत्तांत के साथ-साथ उनका दार्शनिक स्वरूप है जो शायद ही किसी कथाकार में देखने को मिलता है। श्री अवस्थी विश्व-यात्री हैं। दुनिया का कोई ऐसा देश नहीं जहां अनेक बार वे न गए हों। वहां के सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन के साथ उनका पूरा समन्वय रहा है।

राजेन्द्र अवस्थी को शीर्षतम सम्मान प्राप्त हो चुके हैं। अनेक राज्य सरकारों के सर्वोच्च पुरस्कार भी मिले हैं। देश-विदेश में उनकी ख्याति और वहां से प्राप्त सम्मान उन्हें हिन्दी जगत में विशिष्ट स्थान से समादृत करने के लिए पर्याप्त हैं।

अवस्थीजी को भारत और विदेशों के कुछ विश्वविद्यालयों से 'डॉक्टर ऑफ लिट्रेचर' की मानद उपाधि मिल चुकी है। अब तक 35 से अधिक शोधार्थी उन पर शोध कर चुके हैं।

'कादम्बिनी', 'सारिका', 'नंदन' और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के पूर्व संपादक।

सम्प्रति : स्वतंत्र लेखन एवं सामाजिक कार्य ।